उपनिषद्-मन्दाकिनी

*

देवदत्त शास्त्री

किताब महल [होलसेल डिविजन] प्राइवेट लिमिटेड

रजिस्टर्ड आफिस : ५६-ए जीरो रोड, इलाहाबाद

कलकत्ता * बम्बई * दिल्ली * जयपुर * हैदराबाद * पटना

दो शब्द

*

आठ वर्ष पूर्व मैंने उपनिषद् साहित्य का अनुशीलन लिखा था, जिसे किताब महल ने 'उपनिषद्-चिन्तन' के नाम से प्रकाशित किया था। अनुशीलन के साथ ही प्रमुख और प्रामाणिक माने जाने वाले ग्यारह उपनिषदों का हिन्दी अनुवाद भी उसी समय प्रस्तुत किया गया था, किन्तु उस अनुवाद के छपने का अवसर अब आया है।

उपनिषद् साहित्य के संबध में मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है। यह साहित्य अध्ययन, अनुशीलन की वस्तु है, अपनी मौलिक विशेषता के कारण विश्व साहित्य में इसका सर्वोपरि स्थान है। यह साहित्य जितना बौद्धिक चिन्तनसम्पन्न एवं गम्भीर है, उतना ही विचार-भिन्नताओं से भी सम्पृक्त है। दिव्य भावों और विचारों से सम्पन्न इस आध्यात्मिक दिव्य साहित्य में आसुरी भावों और विचारों का भी समावेश है। ऐसे भावों और विचारों को छान्दयोग्य उपनिषद् ने 'असुर उपनिषद्' की संज्ञा दी है।

उपनिषद् साहित्य जीवन-साहित्य है। जीवन को पवित्र और विचारों को उन्नत बनाने तथा मनोबल एवं आत्मबल बढ़ाने का यह सहज साधन है इसमें अध्यात्म के साथ जीवनोपयोगी प्रक्रियाएँ एवं सृष्टि तत्व तथा ज्ञान-विज्ञान का सुन्दर विश्लेषण है। आशा है यह हिन्दी अनुवाद सर्व साधारण के लिए उपनिषद्-मर्म समझने में सहायक सिद्ध होगा।

—देवदत्त शास्त्री

उपनिषद्-क्रम

१

ईशावास्य-उपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन-संहिता में चालीस अध्याय हैं। अन्तिम चालीसवें में 'ईशावास्यम्' आदि मंत्रों द्वारा बहुत ही उत्कृष्ट ब्रह्म निरूपण किया गया है। यही अन्तिम अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' कहलाता है। 'ईशावास्यम्' से प्रारम्भ होने के कारण इसका यह नाम पड़ा। इसमें ब्रह्म का निरूपण इतनी मार्मिकता से किया गया है, कि इस उपनिषद् को अन्य उपनिषदों में प्रथम स्थान दिया गया है।

शान्ति पाठ

ॐ। वह पूर्ण है, यह पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण निष्पन्न होता है। पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लें तो भी पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। (तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

हरिः ॐ। संसार में जो कुछ और जितना जीवन है, वह सब ईश्वर से भरा हुआ है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें ईश्वर का निवास नहीं है। समस्त चर-अचर जगत् में केवल ईश्वर की ही सत्ता समायी हुई है। सब का स्वामी एक परमात्मा ही है—ऐसा समझ कर तुम्हें अपना सब-कुछ उसी परमात्मा को समर्पण करना चाहिए, और जो कुछ मिले उसे भगवान् का दिया हुआ प्रसाद

समझ कर ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् हर समय अपने हृदय में यह भावना रखनी चाहिए कि मेरा अपना कुछ नहीं है, जो कुछ भी है वह सब भगवान् का है। किसी के भी धन के प्रति इच्छा मत रखो।

ऐसी भावना रखने वाला आदमी किसी भी भोग्य वस्तु पर आसक्त नहीं होगा। किसी चीज को अपनी नहीं मानेगा—सभी चीजें उसकी ही रहेंगी, सब कुछ उसे मिलता रहेगा। जितना उसे मिलेगा उसी से वह अपने को सन्तुष्ट और सम्पन्न समझेगा। पराये धन, वैभव को देखकर ईर्ष्या नहीं करेगा और न किसी के धन को लेने की कभी इच्छा ही करेगा।

जो आदमी आलस्य और निकम्मेपन की जिन्दगी बसर करने की कामना रखता है, वही दूसरों के धन की इच्छा किया करता है। इसलिए तुम्हें चाहिए कि संसार में रहते हुए कर्म करते-करते ही सौ वर्ष तक जीने की कामना रखो। निष्क्रिय बनकर बिना कर्म करके जीवन की इच्छा रखना जीवन के साथ विश्वासघात करना है। तात्पर्य यह कि भगवान् ने हमें जैसा जीवन दिया है—निरंतर कर्म करते हुए जीना चाहिए। तुम्हारे जैसे शरीरधारी के लिए यही मार्ग है। इसके अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। यह निश्चय समझ लो कि आदमी से कर्म नहीं लिपटता बल्कि कर्म-फल प्राप्त करने की वासना लिपटती है। कर्म-फल की इच्छा करने पर जीवन भारस्वरूप बन जाता है; समस्त पापों की जड़ भी यही है। जान में या अनजान में लोग फल वासना को ग्रहण किया करते हैं।

जो लोग भगवान् को भूलकर भोग-विलास में फँसे रहते हैं, कर्त्तव्य और कर्म को छोड़कर आलस्य की जिन्दगी बिताते हैं, वे इसी जीवन में घोर नरक में वास करते हैं। तात्पर्य यह कि आत्म-

ज्ञान से शत्रुता रखने वाले व्यक्ति आत्मघाती होते हैं। मरने के बाद वे घोर अन्धकार से घिरी हुई आसुरी योनि में जन्म लिया करते हैं।

तुम्हें यह समझना चाहिए कि ईश्वर की शक्ति और सत्ता असीम है। उसके बारे में कोई तर्क नहीं किया जा सकता है। तुम्हारे तर्कों से वह सीमित हो जाएगा। यही एक आत्म तत्त्व है जो अचल और अविचल होकर भी मन से भी अधिक वेगवान् है। देवता उसे पकड़ नहीं सकते बल्कि देवों को ही उसने पकड़ रखा है। वह खड़ा रहकर दूसरे दौड़ने वालों को पिछड़ा देता है। प्रकृति माता की गोद में खेलने वाला प्राण उसी की सत्ता से संचालित होता है।

वह हलचल करता है, वह हलचल नहीं करता। वह दूर है, वह पास है। वह इन सब के भीतर है, वह इन सब के बाहर है। तात्पर्य यह कि चर और अचर रूप से परमात्मा की व्याप्ति सर्वत्र है। दूर और पास का मतलब काल और अवकाश है। ये दोनों असीम माने जाते हैं, लेकिन फिर भी ये दोनों परमात्मा की व्याप्ति—व्यापकता के अन्दर समाये हुए हैं।

जिस प्रकार अपनी सन्तान की रग-रग पर माता का स्नेह समाया रहता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति आत्मा ही में सब जीव और सभी जीवों में आत्मा का निवास समझता है, वह फिर किसी से ऊबता नहीं है। अर्थात् वह व्यक्ति किसी के प्रति घृणा-द्वेष के भाव नहीं रखता। क्योंकि जब तुम्हारे हृदय में यह भावना हो जाएगी कि भीतर-बाहर, पास-दूर, चर-अचर रूप से सर्वत्र भगवान् ही भगवान् भरे हुए हैं, तब तुम्हारे अन्दर अपने-पराये भेद का अवकाश ही नहीं रह जाएगा।

जिसकी दृष्टि सभी जीवों में एक ही आत्मा का दर्शन करेगी, जो निरन्तर एकत्व की भावना रखेगा—ऐसे विज्ञानी पुरुष को मोह कहाँ, शोक कहाँ ?

आत्म तत्व को समझने वाला ऐसा व्यक्ति उस आत्म तत्व को जिसका कोई रूप नहीं है, इसलिए इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले दोषों और गुणों से सर्वथा अछूता, शुद्ध, पापरहित—चारों ओर से घेर कर बैठ गया। वह कवि (क्रान्तदर्शी) व्यापक, मनीषी और स्वतन्त्र हो गया। उसने अनन्त काल तक टिकने वाले सभी अर्थों को भली भाँति सम्पादन कर चुका।

निवृत्त और प्रवृत्त ये दोनों अविद्या और विद्या के अंग हैं। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् विद्यारहित अविद्या और अविद्यारहित विद्या अनर्थकारी बन जाती है, इसलिए आत्म-तत्व को जानने वाला व्यक्ति इन दोनों को एक साथ अपनाता है। केवल एक का सहारा लेना अन्धकार में डूबना है। जो व्यक्ति अविद्या में डूब गए वे घोर अन्धकार में डूब गए और जो विद्या में डूब गए वे उनसे भी अधिक घोर अन्धकार में डूब गए। इसलिए तुम्हारे लिए तो उभय दोषरहित और उभय गुणसम्पन्न आत्मनिष्ठा ही अभीष्ट होनी चाहिए।

आत्म तत्त्व को विद्या से भिन्न ही कहा गया है, और अविद्या से भी भिन्न कहा गया है। जिन धीर पुरुषों से हमने ऐसा सुना है, उन्होंने ही उसका दर्शन कराया है। तात्पर्य यह कि आत्म तत्व विद्या और अविद्या दोनों से परे है। क्योंकि जानने और न जानने इन दोनों से आत्मज्ञान निराला है।

विद्या और अविद्या इन दोनों के सहारे जो आत्म तत्व को जानते हैं, वे उस आत्मतत्व के द्वारा अविद्या से मृत्यु को पार कर विद्या से अमृत को प्राप्त करते हैं। तात्पर्य यह कि आत्मज्ञान की

ओर झुकाव होने से मनुष्य अविद्या के सहारे अनात्म विषयों से बुद्धि को हटाकर सहज ही मृत्यु-सागर को पार कर जाता है और फिर विद्या के सहारे वह आत्मचिन्तन कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसलिए आत्मज्ञान ही सर्वोच्च है।

विकास और निरोध इन दोनों के साथ जो आत्म तत्व को समझते हैं, वे उसी आत्म तत्व के सहारे निरोध से मृत्यु को पार करके विकास से अमृत को प्राप्त करते हैं। तात्पर्य यह कि नये दोषों को न लिपटने देना तथा पुराने दोषों को निकाल कर बाहर कर देना ही मृत्यु को पार करने की कुंजी है तथा विकास से व्याप्त विश्व-प्रेम का अभ्यास करने से अमृत (मोक्ष) प्राप्त होता है।

वित्तमोह के सुनहले ढक्कन से सत्य का मुँह ढका हुआ है। हे परमात्मा मुझ सत्य-धर्म के उपासक को दर्शन कराने के लिए उसे तू खोल दे। सारांश यह कि हे ईश्वर मुझे सत्य रूप आत्मा का दर्शन करा, प्रार्थना करने के लिए सत्य स्वरूप ईश्वर और आचरण करने के लिए सत्य रूप धर्म का मैं साक्षात्कार करूँ।

हे परमात्मा, इस संसार का पोषक तू ही है और इसका एक मात्र निरीक्षक भी तू ही है। तू नियंत्रण भी करता है और प्रवर्तन भी करता है। तू सभी को अपनी सन्तान समझ कर सब का पालन करता है। पोषण करने वाली अपनी रश्मियों के समूह को खोलकर ओर उन्हें एकत्र करके मुझे दिखा। तेरा तेजोमय, कल्याण-कारी रूप मैं देख रहा हूँ। जो परात्पर पुरुष कहलाता है, वह मैं हूँ।

हे वायुरूप ईश्वर, तुम अन्तर्यामी हो मेरे प्राणों को चलाने वाले हो, मैं चाहता हूँ, कि मेरे प्राण उस चैतन्यमय अमृत तत्त्व में लीन हो जायँ। मेरे भौतिक शरीर की राख बन जाए। हे दृढ़-संकल्पमय जीव, भगवान् का स्मरण कर, उसका किया हुआ

स्मरण कर, हे मेरे जीव, स्मरण कर, अपने संकल्पों को छोड़कर उनका किया हुआ स्मरण कर।

तात्पर्य यह कि मरने के बाद मृत शरीर को जलाकर राख कर दिया जाए, जिससे जीवात्मा को उससे मोह न रह जाए और मरने के बाद प्राण आदि सूक्ष्म तत्त्व देवतत्त्वों में समा जायँ। ईश्वर के चिन्तन से मन के सारे संकल्प नष्ट हो जाएँ और जीवात्मा परमात्मा से मिल जाए।

हे पथप्रदर्शक, प्रकाशमान् परमात्मा, तू ही अग्नि रूप से हमारे शरीर में वास कर चेतना प्रदान करता है, इसलिए हे प्रभो, जब तक हममें चेतना है हमें प्रशस्त पथ पर रख। हमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते से न ले जा। विश्व में गुँथे हुए सभी तत्त्वों को तू जानता है, इस-लिए हमें सरल मार्ग से परम आनन्द की ओर ले चल। टेढ़े रास्ते पर जाने से लगने वाले पाप से तू हमें दूर हटा दे, प्रभो हमारी बारंबार यही विनम्र प्रार्थना है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

२

केनोपनिषद्

सामवेद की तलवकार शाखाये ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। तलवकार ब्राह्मण के नवें अध्याय को 'तलवकारोपनिषद्' कहा जाता है। 'ब्राह्मणोपनिषद्' और 'केनौपनिंषद्' भी इसके दो नाम और हैं। इस उपनिषद् का प्रारम्भ 'केन' शब्द से होने के कारण इसे 'केनोपनिषद्' कहा जाने लगा। इनमें चार खण्ड हैं। प्रथम दो खण्डों में ब्रह्म का निरूपण है। शेष तीसरे और चौथे खण्डों में ब्रह्म का महत्व है।

शान्ति पाठ

हे ईश्वर मेरे समस्त अंग, वाणी, नेत्र, कान आदि सभी इन्द्रियाँ, सभी प्राण शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज-सब पुष्टि और वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषदों में बताये गए सर्वरूप ब्रह्म के स्वरूप को मैं कभी भी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा परित्याग न करे। उनके साथ मेरा अटूट संबंध बना रहे। उपनिषदों में बताए गए जितने धर्म हैं, वे सब उस परमात्मा में लगे हुए मुझमें प्रकाशित होते रहें मुझमें निरन्तर बने रहें। हे ओंकार रूप परमात्मा तीनों प्रकार के तापों की शान्ति हो। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

: केनोपनिषद्

खण्ड १

शिष्य गुरु से पूछता है—किसकी सत्ता की स्फूर्ति पाकर और किससे संचालित होकर यह अन्तःकरण विषयों की ओर झुकता है—उन तक पहुँचता है। किससे नियुक्त होकर सर्वश्रेष्ठ प्राण चलता है। किसके द्वारा यह वाणी क्रियाशील बनती है, लोग बोलते हैं। और वह कौन-सा प्रसिद्ध देव है, जो आँखों और कानों को अपने-अपने विषयों के अनुभव में प्रवृत्त करता है।

गुरु कहते हैं—मन, प्राण आदि सभी इन्द्रियों का—समस्त संसार का जो परम कारण है जिससे ये सब उत्पन्न हुए हैं, जिसकी शक्ति पाकर ये सब अपना-अपना काम करते हैं। जो इन सब का ज्ञाता है वही परब्रह्म परमात्मा ही इन सब का प्रेरक और संचालक है। उसे जानकर ज्ञानी लोग जीवनमुक्त होकर अमर-पद प्राप्त करते हैं।

ध्यानपूर्वक सुनो, उस परब्रह्म तक न तो नेत्र आदि ज्ञान इन्द्रियाँ पहुँच सकती हैं और न वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ और न मन ही, इसलिए मन और इन्द्रियों द्वारा कोई कैसे बता सकता है, कि 'ब्रह्म ऐसा है'। ब्रह्मज्ञान की ऐसी उपदेश-पद्धति न तो हमने किसी से सुनकर समझी है और न हम स्वयं अपनी बुद्धि से ही समझ पाते हैं। हमने तो जिन महापुरुषों से इस गूढ़ तत्त्व को सुना है, जिनसे इस तत्व ज्ञान का उपदेश प्राप्त किया है, उन्होंने तो यही बताया है, कि परमात्मा जड़ और चेतन दोनों से भिन्न है। ब्रह्म जाने हुए, जानकारी में न आने वाले पदार्थों से भिन्न है और मन, इन्द्रियों द्वारा न जाने गए या जानकारी में न आने वाले से भी ऊपर है। ऐसी स्थति में उस ब्रह्म तत्त्व को वाणी के द्वारा व्यक्त करना बिल्कुल असम्भव है।

वाणी के द्वारा जो कुछ ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा जाता है और तद्नुसार जो उपासना की जाती है वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है। क्योंकि ब्रह्मतत्त्व वाणी से बिल्कुल परे है। उसके बारे में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है, कि जिसकी शक्ति के किसी एक अंश से वाणी को बोलने की शक्ति मिली है जो वाणी का ज्ञाता, प्रेरक, प्रवर्तक है वही ब्रह्म है।

जिसे कोई अन्तःकरण के द्वारा नहीं समझ सकता। बल्कि जिससे मन मनुष्य का जाना हुआ हो जाता है, उसी को ज्ञानी लोग ब्रह्म कहते हैं। मन और बुद्धि के द्वारा जाने-जाने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं—वह ब्रह्म नहीं है।

जिसे कोई इन आँखों ने नहीं देख पाता, बल्कि जिससे नेत्रों से ही अपने विषयों को देखने की शक्ति मिलती है, उसे ही तुम ब्रह्म समझो। नेत्रों द्वारा दिखायी पड़ने वाले जिस दृश्य वर्ग की लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

जिसे कानों द्वारा कोई सुन नहीं सकता, बल्कि जिससे कानों को ही श्रवण-शक्ति मिली है। उसे ही तू ब्रह्म समझ। श्रोत्र इन्द्रियों के द्वारा जानने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं—वह ब्रह्म नहीं है।

जो प्राण के द्वारा चेष्टायुक्त न होकर स्वयं प्राण को चेष्टा प्रदान करता है, उसे ही तू ब्रह्म समझ प्राणों की शक्ति से चेष्टायुक्त दिखायी पड़ने वाले जिन तत्त्वों की लोग उपासना करते हैं—वह ब्रह्म नहीं है।

खण्ड २

शिष्य को सावधान करते हुए गुरु बता रहे हैं, कि हमारे द्वारा संकेत से बताये गए ब्रह्मतत्त्व को सुनकर यदि तू यह

समझता है, कि मैं उस ब्रह्म को समझ गया हूँ, तो यह निश्चित है, कि तूने ब्रह्म के सम्बन्ध में बहुत कम समझा है; क्योंकि पर-ब्रह्म का जो आंशिक रूप तू है और उसका जो आंशिक रूप देवताओं में है, वह सब मिल कर भी थोड़ा ही है। इसलिए मैं तेरे जानते हुए ब्रह्म-तत्व को मैं विचारणीय मानता हूँ।

इस पर अपने विचार प्रकट करते हुए शिष्य कहता है—भगवन्, मैंने ब्रह्म को भली-भाँति समझ लिया है, यह मैं नहीं मानता हूँ और न यही मानता हूँ कि मैं ब्रह्म को जानता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ, फिर भी मेरा यह जानना वैसा नहीं है जैसा किसी ज्ञाता का किसी जानने योग्य वस्तु के जानने का होता है। मेरा यह जानना उससे सर्वथा विलक्षण है, इसलिए मेरा यह कहना कि मैं उसे नहीं जानता—ऐसा नहीं और जानता हूँ। ऐसा भी नहीं; तथापि मैं जानता हूँ। मेरे इस कथन के रहस्य को हम शिष्यों में से वही समझ सकता है, जो वस्तुतः ब्रह्म को जानता है।

गुरु-शिष्य के इस प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष श्रुति के वचनों द्वारा इस प्रकार बताया गया है—जो यह मानते हैं, कि ब्रह्म जाना नहीं जा सकता, उसे वह जानते हैं। जो यह मानते हैं, कि ब्रह्म को मैं जानता हूँ-वह नहीं जानता क्योंकि जिन्हें जानने का अभिमान हो गया है, उन्हें यह ब्रह्म तत्व बिना जाना हुआ-सा है। और जिन्हें जानकार बनने का अभिमान नहीं है वस्तुतः वही ब्रह्म तत्व को जानते हैं। तात्पर्य यह कि भगवान् का साक्षात्कार उन्हीं को होता है, जिन्हें जानने का अभिमान नहीं होता।

ऊपर बताए गये संकेत द्वारा उत्पन्न ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है, क्योंकि इससे अमृत स्वरूप परमात्मा को मनुष्य प्राप्त करता है, अन्तर्यामी परमात्मा से परमात्मा को जानने की शक्ति प्राप्त

करता है और उस ज्ञान से अमृत रूप परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है।

यदि इसी मनुष्य शरीर में ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय तो बहुत ही अच्छा है। कदाचित् इस शरीर के रहते हुए ब्रह्म-ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ तो महान् विनाश समझना चाहिए। यही सोचकर बुद्धिमान आदमी हर प्राणी को ब्रह्म समझकर इस लोक से जाने के बाद अमर पद प्राप्त करते हैं।

खण्ड ३

भगवान् ने देवासुर संग्राम में देवताओं को शक्ति प्रदान की, जिससे उन्होंने असुरों पर विजय पायी। यह विजय भगवान् ने देवताओं को निमित्त बनाकर स्वयं प्राप्त की थी, परन्तु देवता इसे न समझ पाए उन्होंने भगवान् की शक्ति और महिमा को अपनी समझ लिया। उन्हें इस बात का अभिमान हो गया कि हम बड़े शक्तिशाली हैं अपनी शक्ति से ही हमने असुरों को हरा दिया है।

देवताओं के इस मिथ्याभिमान को भगवान् ताड़ गए, उन्होंने सोचा कि अगर ऐसा ही अभिमान इन देवताओं में बना रहा तो इनका दिव्यत्व नष्ट हो जाएगा और ये पतित हो जायँगे। इसलिए उनकी भलाई के लिए ही भगवान उनके सामने दिव्य यक्ष का रूप धर कर प्रकट हुए। उस यक्ष के अद्भुत रूप को देखकर देवता चकरा गए, उनकी समझ में ही नहीं आता था कि यह दिव्य यक्ष क्या है। वे उसे पहचान न सके।

वे सब भयभीत हो गए और उसका परिचय जानने के लिए व्यग्र हो उठे। उन्होंने सोचा कि अग्निदेव परम तेजस्वी हैं, वेदार्थ के तत्वज्ञ हैं, सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता हैं—सर्वज्ञ हैं, इसीलिए उनका नाम 'जातवेदा' है—इसलिए उन्हें ही इसका पता लगाने

के लिए भेजना चाहिए। यह तय कर सब ने अग्निदेव से प्रार्थना की कि आप जाकर पता लगाइए कि यह यक्ष कौन है? अग्निदेव को भी अपनी बुद्धि-शक्ति का पूरा अभिमान था, उन्होंने तपाक से कहा कि अभी पता लगाता हूँ।

दौड़ते हुए अग्निदेव यक्ष के पास पहुँचे। अपने समीप अग्नि को खड़ा देखकर यक्ष बोला—तुम कौन हो? यह सुनकर अग्नि मन ही मन सोचने लगे—कि मेरे अमित तेज से तो सभी परिचित हैं, यह कौन है, जो मुझे पहचानता भी नहीं। उन्होंने तुनुक कर कहा—मैं सर्वत्र विख्यात अग्नि देव हूँ, मेरा ही गौरव-शाली नाम 'जातवेदा' है।

तब यक्ष रूपी परमात्मा अनजान बनकर बोले—अच्छा आप अग्निदेव हैं और सब को जानने से ही आप का नाम 'जातवेदा' पड़ा है, बड़ी अच्छी बात है, कृपया यह तो बताइए कि आप में कौन-सी शक्ति है? आप क्या कर सकते हैं? बड़े गर्व से अग्नि ने कहा—मैं क्या कर सकता हूँ—पर आप जानना चाहते हैं, अरे मैं चाहूँ तो सम्पूर्ण दृश्य जगत् को एक क्षण में राख का ढेर बना दूँ।

यह सुनकर यक्ष भगवन् ने अग्नि के सामने एक सूखा तिनका डालकर कहा—आप तो सब कुछ भस्म करने की अमित शक्ति रखते हैं, थोड़ी-सी शक्ति इस छोटे से तिनके को जलाने में तो लगा दें। अग्नि ने इसे अपना अपमान समझा और कोपकर के झट उस तिनके के पास पहुँचकर उसे जलाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी किन्तु उसमें आँच भी नहीं लगी। ब्रह्म ने अपनी दाहक शक्ति अग्नि से खींच लिया था, इसलिए तिनका कैसे जलता, लेकिन घमण्डी अग्नि को यह बात मालूम न हो सको। घमण्ड से चूर होकर उसने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग कई बार उस

तिनके को जलाने में लगायी किन्तु वह ज्यों का त्यों रहा। तब वह लज्जित होकर देवताओं के पास लौटकर बोला—भाई, मैं नहीं जान सका कि यह दिव्य यक्ष कौन है ?

तब देवताओं ने वायु देवता से कहा कि वायु देव, आप जाकर पता लगाइए कि यह कौन है। वायु भी कम घमण्डी नहीं थे, उन्होंने कहा कि अच्छा अभी पता लगाकर आता हूँ।

यह कहकर वह तुरन्त उड़कर यक्ष भगवान् के पास पहुँच गए। अपने समीप वायु को खड़ा देखकर यक्ष ने पूछा—आप कौन हैं भगवन्! वायु ने भी बड़े गर्व से कहा—मैं वायु हूँ। मेरा ही गौरवशाली, रहस्यपूर्ण नाम 'मातरिश्वा' है।

तब यक्ष रूप भगवान् ने अनजान बनकर वायु से भी पूछा—महाराज, आप तो वायु देवता हैं, और अन्तरिक्ष में बिना किसी आधार के विचरण करने वाले हैं, इसीलिए आप का नाम मातरिश्वा है। भला यह तो बताइए कि आप में क्या शक्ति है—आप क्या कर सकते हैं। वायु ने भी अग्नि की तरह बड़े गर्व से कहा—आप मुझे क्या समझते हैं, मैं चाहूँ तो सारे भूमण्डल को उड़ाकर अधर में लटका दूँ।

वायु की ऐसी गर्वोक्ति सुन सर्वशक्तिमान, यक्ष रूप परमात्मा ने वही सूखा तिनका उनके सामने भी रखकर बोले, ठीक है देव, थोड़ी सी शक्ति लगाकर इस तिनके को आप उड़ाने का कष्ट करें। वायु देवता ने इसे अपना अपमान समझा। वे कुपित होकर तिनके के पास जाकर लगे उसे उड़ाने। सर्वशक्तिमान परमात्मा ने उसी समय उनके अन्दर से अपनी शक्ति खींच ली, वे उछलते-कूदते ही रह गए किन्तु तिनका को हिला भी न सके। हारकर चुपचाप देवताओं के पास जाकर बोले, मैं तो अच्छी तरह नहीं समझ सका कि यह यक्ष कौन है।

अग्नि और वायु को असफल लौटे हुए देखकर देवताओं ने स्वयं देवराज इन्द्र को भेजने का निश्चय कर उनसे निवेदन किया कि—देवराज, आपही समर्थ हैं, आपके अतिरिक्त और दूसरा कोई भी इस यक्ष का पता नहीं लगा सकता अतः कृपापूर्वक जाने का कष्ट करें। अच्छा कहकर देवराज इन्द्र यक्ष के पास पहुँचे। ज्योंही वह वहाँ पहुँचते हैं, कि उनके देखते-देखते यक्ष रूप भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए। समस्त देवताओं से अधिक अभिमान इन्द्र में था इसलिए भगवान् ने उन्हें बात करने का भी अवसर नहीं दिया।

यक्ष के अन्तर्धान हो जाने पर इन्द्र वहीं खड़े रहे लौटे नहीं। इतने में उन्होंने देखा कि जहाँ पर यक्ष देव थे, वहीं पर भगवती उमा देवी प्रकट हो गयी हैं। उन्हें देखकर इन्द्र उनके पास चले गये। बड़ी विनम्रता से इन्द्र बोले—भगवती, आप देवाधिदेव महादेव की स्वरूपा शक्ति हैं। अतः आपको सब कुछ पता है, कृपा करके मुझे बताइए कि यह दिव्य यक्ष जो अभी अन्तर्धान हो गया—कौन है। किसलिए यहाँ आया था।

खण्ड ४

इस प्रकार देवराज इन्द्र के पूछने पर भगवती उमा ने कहा—जिस दिव्य यक्ष को तुम देख रहे थे वह साक्षात् भगवान् थे। असुरों पर तुमने जो विजय प्राप्त की है, वह उन्हीं की शक्ति से। तुम लोग तो केवल निमित्त मात्र थे। लेकिन अज्ञानता के कारण तुम लोगों ने इसे अपनी विजय मान ली। तुम्हारे इस मिथ्या-भिमान को दूर करने के लिए, तुम्हारा कल्याण करने के लिए ही भगवान् यक्ष का रूप धरकर प्रकट हुए थे। अग्नि और वायु का गर्व चूर कर तुम्हें ज्ञान देने के लिए उन्होंने मुझे प्रेरित किया।

है। इसलिए तुम अपनी स्वाधीन शक्ति और सत्ता का अभिमान अपने अन्दर से निकाल दो। यह निश्चय समझो कि तुम्हारी जो शक्ति और महिमा है वह भगवान् की बदौलत। भगवती के समझाने पर देवताओं को ज्ञान हुआ कि उनके सामने यक्ष का रूप धारण कर साक्षात् ब्रह्म प्रकट हुए थे।

इसीलिए अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवताओं में श्रेष्ठ समझे जाते हैं, क्योंकि इन्हीं तीनों ने ब्रह्म का संस्पर्श प्राप्त किया था। परब्रह्म का दर्शन, परिचय और उनके साथ बातचीत करने का सर्वप्रथम सौभाग्य इन्हीं तीन देवताओं को मिला था और इन्होंने ही सबने पहले इस सत्य को समझा कि हम लोगों ने जिनका दर्शन किया, जिनसे वार्तालाप किया और जिनकी शक्ति पाकर असुरों पर विजय पायी वह साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही थे।

अग्नि और वायु ने ब्रह्म के दर्शन किये, उनसे बातचीत भी की लेकिन उन्हें ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान न हो सका। भगवती उमा द्वारा देवराज इन्द्र को ही सब से पहले ब्रह्म-तत्व का ज्ञान मिला, इसलिए सभी देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ समझे जाने लगे।

जब किसी के हृदय में ब्रह्म-प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा जाग उठती है, तब भगवान् उसकी अभिलाषा को तीव्रतम बनाने के लिए अपने स्वरूप की झाँकी के दर्शन बिजली की चमक अथवा आँखों की झपकी के समान दिखाकर छिप जाया करते हैं। इस आधिदैविक उदाहरण द्वारा बड़े रहस्यमय ढंग से ब्रह्म-तत्व का संकेत किया गया है। शब्दों का अर्थ तो हर कोई अपने ढंग से लगा सकता है, लेकिन इसका अनुभव ज्ञानी संत ही कर सकते हैं।

इसी विषय को आध्यात्मिक उदाहरण से समझाते हुए बताया गया है, कि जब हमारा मन ब्रह्म के समीप जाता हुआ-सा प्रतीत

होता है, तथा उस ब्रह्म को हर समय प्रीतिपूर्वक स्मरण करता है। उस समय वह मन अतिशय व्याकुल बन जाता है। उसमें ब्रह्म को प्राप्त करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाती है।

वह परमानन्द परमात्मा सभी को अत्यन्त प्यारा है। हर प्राणी किसी न किसी रूप से उसे चाहते हैं, उसको प्यार करते हैं। इसी-लिए वे सुख के रूप में खोजते हुए दुःख रूप विषयों में भटकते रह जाते हैं उसे पा नहीं सकते। इसलिए साधक को चाहिए कि हर प्राणी में, हर वस्तु में भगवान् की सत्ता समझकर सब को प्यार करे, सभी में ईश्वर का साक्षात्कार करे। ऐसा करने से संसार के सभी प्राणी उसे अपना आत्मीय समझने लगेंगे, उसको हृदय से प्यार करेंगे।

इसके बाद शिष्य ने प्रार्थना करते हुए कहा—गुरुदेव, उपनिषद् (ब्रह्म विद्या) का उपदेश कीजिए। गुरुने कहा—वत्स, हमने तुम्हें ब्रह्म विद्या का उपदेश दे दिया है। तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर में हमने जो उत्तर दिये हैं वे सब ब्रह्म विद्या के ही उपदेश थे—यह निश्चय समझो।

उस ब्रह्म विद्या के तप, दम, कर्म ये तीन आधार हैं। चारों वेद उसके अंग हैं। सत्य स्वरूप परमात्मा उसका अधिष्ठान है। इसलिए ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा रखकर जो आदमी वेदों के अनुसार तत्त्व चिन्तन करता हुआ तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और निष्काम भाव से साधन करता है, वही ब्रह्म विद्या के सार—परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

उपर्युक्त ढंग से बतायी गयी ब्रह्म विद्या को जो कोई जान लेता है—तदनुसार साधन में प्रवृत्त हो जाता है, वह समस्त पाप समूहों को नष्ट करके स्वर्ग से भी श्रेष्ठ अनन्त, अविनाशी परमधाम में प्रतिष्ठित हो जाता है—सदा के लिए स्थित हो जाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

३

कठोपनिषद्

कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत 'कठोपनिषद्' है। इसमें दो अध्याय और उन अध्यायों में ६ वल्लियां हैं। इसमें बालक नचिकेता और यमराज के संवाद के रूप में परमात्मतत्व के रहस्य का विवेचन बहुत हो विशद और मार्मिक हुआ है।

शान्ति पाठ

ॐ। परमात्मा हम दोनों आचार्य और शिष्य की रक्षा एक साथ करें। हम दोनों का पालन करें। एक ही साथ हम दोनों ज्ञान सम्बन्धी सामर्थ्य प्राप्त करें। जो कुछ हम दोनों पढ़ें वह तेजस्वी हो और किसी से भी द्वेषभाव न रखें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

अध्याय १ वल्ली १

परम्परागत यह कथा प्रसिद्ध है, कि वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस ने सांसारिक फलों की कामना रख कर विश्वजित यज्ञ में अपना सब धन दान दे डाला था। उसके एक पुत्र था, जिसका

नाम नचिकेता था। जिस समय यज्ञ कराने वाले ऋत्विजों, पुरोहि
और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देने के लिए गौएँ लायी जा रही थं
उसी समय बालक नचिकेता में श्रद्धा के भावों का उदय हुआ
वह सोचने लगा—

'जिन में जल पीने, घास चरने की शक्ति क्षीण हो गयी है, उ
दूध देना बन्द कर चुकी हैं, बुढ़ाई के कारण जो बच्चे भी नहीं पैद
कर सकती हैं, ऐसी बूढ़ी गौओं को दक्षिणा में देने वाला यजमा
निश्चय ही आनन्दरहित लोक में निवास करता है।'

यह सोचकर बालक नचिकेता अपने पिता वाजश्रवा
बोला—पिता जी, आप मुझे किसको देंगे ? दो बार, तीन बार यह
बात दुहराने पर पिता को क्रोध आ गया और वह बोले—'मैं तु
मृत्यु को दूँगा।' यह सुनकर नन्हा-सा बालक नचिकेता सोचने लग
कि 'मैं अनेक पुत्रों और शिष्यों में प्रमुख रूप से सदाचरण करत
हूँ। मध्यम कोटि के बहुतेरे शिष्य अथवा पुत्रों में मध्यम वृत्ति
रहता हूँ। अधम व्यवहार मुझ में छू तक नहीं गया है, फिर भ
पिता जी ने मुझे यमराज को दे दिया है। ऐसा कौन-सा प्रयोज
है, जो मुझे यम को देकर पिताजी सिद्ध करना चाहते हैं। संभवत
किसी स्वार्थ या प्रयोजन की कामना न रखकर क्रोधवश पिताज
ने ऐसा कहा है, लेकिन फिर भी पिता का वचन मिथ्या न हो'—
यह सोचकर नचिकेता ने अपने पिता से—जो अपनी नासमझ
पर पश्चात्ताप कर रहे थे—कहा।

पिताजी, पश्चात्ताप न करें, आपके पूर्वज जैसा व्यवहार कर
रहे हैं, उस पर विचार करें, उन्हीं के पग-चिन्हों पर चलने क
कोशिश करें। इस समय जो श्रेष्ठ सज्जन लोग शिष्ट आचरण क
रहे हैं. हैं, उन्हें भी देखिए, उन पर विचार कीजिए। प्राचीन का
के तथा वर्तमान काल के जितने महानुभाव रहे हैं या हैं, उनमें

किसी ने भी अपनी बात को अपने कथन को मिथ्या नहीं किया है। यह काम तो दुर्जनों का है जो यह नहीं समझते कि अपने आचरण को मिथ्या बनाकर कोई अजर-अमर नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य तो खेती की तरह पकता है—जीर्ण होकर मरता है और मर कर खेती की तरह फिर पैदा होता है। इसलिए असार संसार में थोड़ी-सी जिन्दगी के लिए असत्य आचरण करना कोई लाभदायक काय नहीं है—आप खेद न करें। यमराज के पास मुझे भेजकर सत्य की रक्षा करें।

इस प्रकार नचिकेता के समझाने पर उसके पिता ने उसे यमराज के यहाँ भेज दिया। यमराज कहीं बाहर गये हुए थे, इसलिए यमपुरी पहुँच कर नचिकेता जब तक यम नहीं लौटे तीन रात्रि तक वहाँ बिना कुछ खाये-पिये टिका रहा। यमराज के लौटने पर उसके परिवार और मंत्रि-परिषद् के सदस्यों ने यमराज से कहा—

हे वैवस्वत, ब्राह्मण अतिथि के रूप में स्वयं अग्नि देवता ही घर में प्रविष्ट होता है। उस अग्नि की ज्वाला को मानो शान्त करने के लिए ही सद्गृहस्थ लोग आसन, जल आदि उसे दिया करते हैं। इसलिए इस ब्राह्मण अतिथि की आवभगत के लिए जल ले आइए। इसे भोजन कराइए। क्योंकि जिस गृहस्थ के घर में ब्राह्मण-अतिथि बिना भोजन किए निवास करता है, उस मन्दमति गृहस्थ पुरुष की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छाएँ, उनके द्वारा प्राप्त होने वाले फल, सत्यप्रिय वाणी और उससे होने वाले फल, यज्ञ, दान आदि से प्राप्त होने वाले फल और बग़ीचा लगवाने, तालाब, कुआँ खुदवाने से होने वाले फल तथा पुत्र और पशु आदि सभी को वह नष्ट कर देता है।

इस प्रकार समझाये जाने पर यमराज तुरन्त नचिकेता के पास जाकर उसका यथोचित स्वागत किया और बोला—ब्राह्मण अतिथि!

तुम्हें नमस्कार करता हूँ। मेरा कल्याण हो। तुम पूज्य अतिथि होकर भी तीन रात्रि तक बिना भोजन किये ही मेरे घर में पड़े रहे, अतः एक-एक रात के लिए एक-एक करके मुझसे तीन वर माँग लो।

नचिकेता ने कहा—यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं प्रथम वर यही माँगता हूँ कि—

मेरे यहाँ चले आने पर मेरे पिता—जिनका यह संकल्प शान्त हो गया है, कि 'न जाने मेरा पुत्र यमराज के यहाँ जाकर क्या करेगा—प्रसन्न और क्रोधरहित हो जायँ। हे यमराज, आपके भेजने पर जब मैं पुनः मृत्यु लोक में जाकर अपने घर पहुँचूँ तो मेरे पिता मुझे पहचान लें, उन्हें यह ज्ञान हो जाय कि मेरा वही पुत्र नचिकेता लौट कर आ गया है।

यमराज ने कहा ठीक है, तुम्हारे पिता अरुण-पुत्र उद्दालक की बुद्धि और स्मरण-शक्ति जैसे पहले तुम्हारे प्रति स्नेहयुक्त रही है उसी प्रकार अब भी जब तुम मुझसे प्रेरित होकर उनके पास जाओगे—रहेगी। तुम्हें मृत्यु के मुख से लौटा हुआ समझकर वे शेष रात्रियों में सुखपूर्वक सोएँगे। उनका सारा क्रोध भूल जाएगा।

नचिकेता बोला—मृत्युदेव, स्वर्ग लोक में तो कुछ भी भय नहीं है। रोग, शोक का नाम भी नहीं है और न वहाँ आप का ही कुछ वश चलता है। स्वर्ग में रहने वाले लोग जरा और मृत्यु से भयभीत नहीं हैं इसीलिए वे अजर और अमर कहलाते हैं। भूख, प्यास के बन्धनों से मुक्त वहाँ के निवासी आनन्दमय जीवन बिताते हैं।

ऐसी स्थिति में हे मृत्यु देवता, मुझे स्वर्ग प्राप्त करने के साधन-भूत अग्नि को बताइए क्योंकि आप उसे अच्छी तरह जानते हैं

और मैं भी श्रद्धालु हूँ। वह कौन-सी अग्नि है, जिसे चयन करने वाले लोग अमरता प्राप्त करते हैं—इसी अग्नि विज्ञान को मैं दूसरे वर द्वारा माँगता हूँ।

यमराज बोले—मैंने वर देने की प्रतिज्ञा की है, इसलिए हे नचिकेता, स्वर्ग प्राप्त कराने वाली अग्नि को मैं तुम्हें बताता हूँ। एकाग्रचित्त होकर समझ लो; क्योंकि उसे भली भाँति समझाने वाला विशेषज्ञ मैं ही हूँ। मैं कहता हूँ भली भाँति समझो। जो स्वर्ग लोक को प्राप्त कराने वाला है और विराट् रूप से संसार का आधार बना हुआ है उस अग्नि को तू बुद्धिमान पुरुषों की बुद्धि-स्थित समझ।

इस प्रकार यमराज ने स्वर्ग प्राप्त कराने वाली अग्नि को तथा उसके चयन करने में जैसी और जितनी ईंटें होती हैं तथा जिस विधि से उसका चयन किया जाता है आदि सभी बातें नचिकेता को समझा दिया और नचिकेता ने भी यमराज से जो कुछ सुना और समझा था ज्यों का त्यों वहीं उसे सुना दिया। इससे सन्तुष्ट होकर मृत्यु फिर बोला—

प्रिय नचिकेता ! तुम्हारी बुद्धि और धारणा-शक्ति से मैं प्रसन्न हूँ इसलिए तीन वरों के अलावा एक और अपनी ओर से यह दे रहा हूँ कि यह अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगी और तू यह शब्द करने वाली विचित्र वर्ण की रत्नमाला को धारण कर।

कर्म की प्रशंसा करते हुए यमराज फिर बोले—जिसने तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन किया है, उसे त्रिणाचिकेत कहते हैं। माता, पिता और आचार्य इन तीनों से सम्बन्ध प्राप्त कर त्रिणाचिकेत जन्म और मृत्यु को पार कर जाता है तथा ब्रह्म से उत्पन्न हुए, ज्ञानवान् और स्तुति करने योग्य देव को जान कर

आत्मभाव से देखकर अपनी बुद्धि से प्रत्यक्ष होने वाली अत्यन्त शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

नाचिकेत अग्नि के चयन में कितनी और कौन सी ईंटें होनी चाहिए, किस प्रकार चयन करना चाहिए। इन तीनों बातों को समझ कर जो त्रिणाचिकेत विद्वान् अग्नि का चयन करता है, उसका साधन करता है वह अधर्म, अज्ञान और राग-द्वेष आदि मृत्यु के बन्धनों का मृत्यु से पूर्व ही त्याग करके शोक, मोह आदि मानसिक क्लेशों से मुक्त होकर विराट् में मिल जाता है।

हे नचिकेता, दूसरे वर से जो तुमने माँगा उसे मैंने स्वर्ग के साधनभूत अग्नि को बतलाकर तुम्हें दे दिया। लोग अब इसे तेरे ही नाम से नाचिकेत अग्नि कहा करेंगे। अच्छा तीसरा वर भी माँग लो।

नचिकेता बोला—मृत्युदेव, मर जाने के बाद मनुष्य के विषय में अनेक धारणाएं और शंकाएँ बतायी जाती हैं। कोई तो कहता है, कि मर जाने के बाद शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि के अलावा आत्मा का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से रहता है। किसी का कहना है कि आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है। ऐसी स्थिति में न तो कोई अनुमान ही किया जा सकता है, न तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण ही है। इसलिए आपसे शिक्षित होकर मैं इसे भली भाँति समझना चाहता हूँ। यही मैं अन्तिम तीसरा वर माँगता हूँ।

नचिकेता की ऐसी बात सुनकर यमराज ने—इस बात की परीक्षा लेने के लिए यह बालक मोक्ष के साधन आत्म-ज्ञान का अधिकारी है या नहीं—कहा—

यह आत्मतत्त्व का विषय है। बहुत पहले देवताओं को भी ऐसा ही संशय हुआ था। साधारण मनुष्यों के लिए यह तत्त्व सुनने

पर भी अच्छी तरह जानने योग्य नहीं है। क्योंकि आत्मा नाम का धर्म बहुत ही सूक्ष्म है। अतः हे नचिकेता, कोई दूसरा वर माँगो। यह ठीक है, कि मैंने तुम्हें वचन दिया है, लेकिन जैसे कोई धनी किसी कर्जदार को दबाता है उसी प्रकार तुम मुझ पर दबाव मत डालो। इस वर को तुम मेरे लिए छोड़ दो।

लेकिन दृढ़निश्चयी नचिकेता टस से मस न हुआ और बोला—हे मृत्यु, इस विषय में देवताओं को अवश्य सन्देह हुआ होगा और आपका कहना भी ठीक है, कि इसे साधारण मनुष्य सरतला से नहीं समझ सकते। इसलिए इस विषय की ओर मेरा और भी अधिक आकर्षण बढ़ रहा है। मुझे यह विश्वास है, कि इस धर्म का वक्ता आपके समान और कोई दूसरा हो नहीं सकता और न इसके समान कोई दूसरा वर ही हो सकता है। क्योंकि और सभी वर तो अनित्य फलों को देने वाले होते हैं।

नचिकेता की यह बात सुनकर यमराज उसे प्रलोभन देते हुए बोले—सुनो नचिकेता, इस वर के बदले में तुम मुझसे सौ वर्ष तक जीते वाले पुत्र-पौत्र माँग लो। बहुत से पशु, हाथी और घोड़े माँग लो; विशाल भूमण्डल का राज्य माँग लो तथा स्वयं जितने वर्ष तक जीना चाहते हो उतने वर्ष का दीर्घ जीवन माँग लो। लेकिन इस वर को छोड़ दो।

यही नहीं इस वर के तुल्य जो भी वर तुम उचित समझो माँग लो। चिर काल तक रहने वाला धन और चिरस्थायी जीविका माँग लो। अधिक क्या कहूँ नचिकेता, इस विशाल भूखण्ड में तू राजा बनकर उत्तरोत्तर समृद्धि को प्राप्त हो। मैं तुझे समस्त दैवी और मानुषी कामनाओं को इच्छानुसार भोग करने की शक्ति देता हूँ।

मृत्युलोक में जो भी दुर्लभ भोग हैं उन सब को तू खुलेदिल से माँग ले, मैं देने के लिए तैयार हूँ। यहाँ रथ और बाजोंसहित

अनेक ऐसी सुन्दरी स्त्रियाँ हैं जिन्हें मनुष्य कभी प्राप्त नहीं कर सकते। मैं इन्हें तुझे दे दूँ तो इनसे अपनी सेवा करा, लेकिन हे नचिकेता मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न मुझसे मत पूछ।

इस प्रकार के प्रलोभन दिए जाने पर भी नचिकेता ने अक्षुब्ध अगाध सरोवर की भाँति निश्चल होकर कहा—

मृत्युदेव, आपने जिन भोगों और ऐश्वर्यों को बताया है वे तो क्षणिक हैं, उनके अस्तित्व का क्या ठिकाना, आज हैं कल नहीं रहेंगे। आपकी ये अप्सरायें मनुष्य की सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देती हैं। जीवन का भी क्या ठिकाना। दीर्घ जीवन लेकर मैं क्या करूँगा जब कि ब्रह्मा की ही आयु की एक सीमा हुआ करती है। इसलिए आप रथ, बाजेगाजे, घोड़े, हाथी आदि समस्त ऐश्वर्य और भोगों को अपने ही पास रखें, मुझे इनक जरूरत नहीं है।

किसी भी मनुष्य को धन और ऐश्वर्य से तृप्त कहीं नहीं देखा गया है। मनुष्य लोक में धन की प्राप्ति आज तक किसी को तृप्त नहीं कर सकी। आपके दर्शन हो जाने से जब कभी मुझे धन की लालसा होगी तो उसे भी प्राप्त कर लूँगा। मुझे यह भी विश्वास है कि जब तक आप यमराज के पद पर रहेंगे तब तक हम जीवित रहेंगे। क्योंकि आप के सम्पर्क में आकर आपका दर्शन कर कोई भी मनुष्य दरिद्र और अल्पायु कैसे हो सकता है? इसलिए आत्म-विज्ञान संबंधी वर ही मुझे चाहिए और कुछ भी नहीं।

क्योंकि अजर और अमर कहे जाने वाले देवताओं के लोक में पहुँच कर मनुष्य लोक का ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो शारीरिक सुखों और भोगों को क्षणभंगुर समझता हुआ बहुत दिनों तक जीवित बने रहने में सुख मानेगा। इसलिए मुझे आप मिथ्या भोगों के प्रलोभन में न फँसा कर मेरा अभीष्ट वर प्रदान करें।

हे मृत्युदेव, मरे हुए जीव के सम्बन्ध में लोग 'है या नहीं' का जो सन्देह रखते हैं तथा महान् परलोक के विषय में निश्चित विज्ञान है वह मुझे बताने की कृपा करें। आत्म तत्त्व सम्बन्धी यह वर जो अति गूढ़ है इसके अतिरिक्त और कोई वर नचिकेता को नहीं चाहिए।

वल्ली २

इस प्रकार नचिकेता की योग्यता और जिज्ञासा की परीक्षा लेने के बाद यमराज ने कहा–श्रेय (विद्या) और है तथा प्रेय (अविद्या) और है। इन दोनों के प्रयोजन भिन्न हैं, फिर भी इन्हीं के द्वारा सब लोग अपने कर्त्तव्यों से बँधते हैं। इन दोनों में जो श्रेय को ग्रहण करता है उसका कल्याण होता है और जो प्रेय का वरण करता है वह पुरुषार्थ से च्युत हो जाता है। श्रेय और प्रेय दोनों आपस में एक दूसरे से मिले हुए-से मनुष्य को प्राप्त हुआ करते हैं। जो पुरुष बुद्धिमान होता है, वह भली भाँति विचार करके उन दोनों-को अलग अलग कर लेता है। विवेकी लोग प्रेय के सामने श्रेय को अंगीकार करते हैं। इसके विपरीत जो अल्पमति होते हैं, जिनमें विवेक-शक्ति का अभाव रहता है वे भौतिक सुखों को देने वाले प्रेय को ही स्वीकार करते हैं।

हे नचिकेता, धन, सन्तान, वाहन, अप्सरा आदि प्रिय भोग पदार्थों को सारहीन समझकर तूने उन्हें त्याग दिया है। बार-बार प्रलोभन दिये जाने पर भी तू उन भोगों में आसक्त नहीं हुआ जिन पर अविवेकी आदमी आँख मूँद कर डूब जाया करते हैं।

विद्या और अविधा में दोनों प्रकाश और अन्धकार के समान परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाली और विपरीत फल देने वाली हैं। तुझे अनेक भोगों ने आकृष्ट नहीं किया है, इसलिए मैं तुझे विद्या

(ज्ञान) का अधिकारी और इच्छुक ,समझता हूँ। लेकिन जो संसारी जीव अज्ञानी होते हैं वे अविद्या के भीतर रहकर अपने आप को बहुत बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान और पंडित समझते हैं। ऐसे मूर्ख उसी प्रकार से पथभ्रष्ट हुआ करते हैं, जैसे एक अन्धा पुरुष अगुवा बनकर अन्य अन्धों को ले जाकर गढ़े में गिरा देता है।

धन के मोह से अन्धे बने हुए अविवेकी और प्रमादी को परलोक का साधन नहीं सूझता। 'संसार ही सब कुछ है परलोक कोई चीज नहीं है'—ऐसा समझने वाले लोग बारम्बार मृत्यु के वशीभूत हुआ करते हैं। लेकिन तुम्हारी तरह विवेकी और श्रेय के इच्छुक बिरले ही हुआ करते हैं।

आत्म तत्व का ज्ञान बहुतेरे व्यक्तियों को तो सुनने को भी नहीं मिलता है। ऐसे भी अनेक अभागे हैं, कि ऐसा ज्ञान सुनकर भी उनके गले से नीचे नहीं उतरता है। इसी तरह आत्मतत्व का उपदेश देने वाला वक्ता भी हजारों में कोई एक ही हुआ करता है और ऐसे ज्ञान को सुनकर ग्रहण करने वाला भी अनेक में से कोई एक ही होता है। क्योंकि जिसे आत्मतत्त्वदर्शी आचार्य ने उपदेश दिया है ऐसा आत्मतत्वज्ञ भी बिरला ही है।

जिस आत्मज्ञान के सम्बन्ध में तुम्हारी जिज्ञासा है, इसे साधारण बुद्धि मनुष्य का बार-बार समझाने पर भी नहीं समझ सकता। क्योंकि तर्क बुद्धि वाले व्यक्तियों द्वारा अस्ति (है), नास्ति (नहीं है), कर्ता (बनाने वाला) अकर्त्ता (कुछ भी न करने वाला) शुद्ध (माया, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि से रहित), अशुद्ध (दोषों, विकारों से भरपूर) आदि अनेक प्रकार से चिन्तन किया जाता है। लेकिन अभेद दर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किए गए इस आत्मा में 'है या

नहीं है'—इस प्रकार के तर्कों की कोई गति ही नहीं रहती; क्योंकि आत्मा सम्पूर्ण विकल्पों, कुतर्कों की गति से रहित है।

इसलिए हे नचिकेता, तुझमें शास्त्रज्ञ और तत्वज्ञ आचार्य द्वारा बतायी गयी जो यह बुद्धि पैदा हुई है, वह कोरे तार्किक के तर्कपूर्ण उपदेशों से प्राप्त नहीं हो सकती। प्रियवर, तू निःसन्देह सत्यसन्ध है। तेरे ही समान पूछने वाला हमें फिर मिले।

जिस धन और खजाने के लिए प्रार्थना की जाती है, वह कर्म फल रूप निधि अनित्य है, सदा रहने वाली नहीं है—ऐसा मेरा ध्रुवविश्वास है। क्योंकि अनित्य (नाशवान) साधनों के द्वारा नित्य (अविनाशी) परमात्मा रूप निधि नहीं प्राप्त की जा सकती है। मैंने स्वयं नाचिकेत अग्नि का चयन किया था। उन्हीं अनित्य पदार्थों से ही मैंने यमराज पद का अधिकारी बनकर स्वर्ग जैसे नित्य स्थान को प्राप्त किया है।

हे नचिकेता, तूने बुद्धिमान होकर सांसारिक भोगों की अवधि, जगत् की प्रतिष्ठा, यज्ञफल की अनन्तता, अभय की मर्यादा, हर प्रकार की सिद्धियों और ऋद्धियों की विस्तीर्ण गति तथा प्रतिष्ठा को देखकर भी उसे बड़े धीरज के साथ छोड़ दिया है। बुद्धिमान और विवेकी लोग कठिनाई से दिखायी पड़ने वाले, गूढ़ स्थान में प्रविष्ट हुए, बुद्धि में स्थित, गहन-स्थान में स्थित पुरातन देव को अध्यात्म द्वारा जानकर हर्ष-शोक को त्याग दिया करते हैं।

सुनो नचिकेता, समस्त वेद जिसके पद का वर्णन करते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के तप साधक बने हुए हैं, जिसकी इच्छा से मोक्ष चाहने वाले ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, उस पद को मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ—यही वह 'ॐ' पद है।

यह 'ॐ' अक्षर ही अपर ब्रह्म है, यही पर ब्रह्म है। इसे जानकर जो जिसकी इच्छा करता है वही उसका हो जाता है। इसलिए यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही पर आलम्बन है। इस साधन को जानकर साधक परब्रह्म में लीन होकर ब्रह्म के समान ही पूजनीय बन जाता है।

यह आत्मा न मरती है, न पैदा होती है। जो वस्तु पैदा होती है और मरती है, उसी में समस्त विकार हुआ करते हैं, इसलिए आत्मा निर्विकार है। कभी लुप्त न होने वाले चैतन्य रूप स्वभाव के कारण यह आत्मा मेधावी है। यह अजन्मा है, नित्य है, इसका कभी नाश नहीं होता है, इसलिए यह प्राचीन होकर भी नवीन है। शरीर में रहकर भी आत्मा आकाश के समान निर्लिप्त है।

ऐसी आत्मा को न जानकर जो केवल शरीर को ही आत्मा समझते हैं तथा जो दूसरे किसी के प्रति यह विचार रखता है कि मैं इसे जान से मार डालूँगा अथवा मारा जाने वाला यह समझता है, कि मैं मार डाला गया—वस्तुतः यह लोग आत्मा के स्वरूप को नहीं समझते। क्योंकि आत्मा तो निर्विकार है, वह न मर सकती है, और न उसे मारा जा सकता है।

मोक्ष चाहने वाले लोग समझते हैं कि यह आत्मा अणु से भी अणुतर अर्थात् सूक्ष्म है, तथा महान् से भी महत्तर है। यह जीव की हृदय रूपी गुफा में बैठी हुई है। कामना रहित पुरुष अपनी इन्द्रियों की प्रसाद से आत्मा के महत्व को पहचानकर शोकरहित हो जाता है।

यह आत्मा अचल होकर भी दूरात्म है, शयन करता हुआ भी सभी ओर गतिशील है। हर्ष से युक्त और हर्ष से रहित ऐसी आत्मा को मेरे सिवा और कौन जान सकता है। जो मनुष्य आदि

शरीरों में शरीररहित, नाशवानों में अविनाशी, महान् और सर्वव्याप आत्मा को जान लेता है, वह बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता।

यह आत्म ज्ञान वेद शास्त्रों के अध्ययन से नहीं प्राप्त होता, न ग्रन्थों के भाव, अर्थ ग्रहण करने की धारणा शक्ति से ही जाना जाता है और न केवल बहुश्रुत होने से ही मिल सकता है। साधक जिस आत्मा के लिए प्रार्थना करता है उस आत्मा से ही यह प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् निष्काम पुरुष को आत्मा के द्वारा ही आत्मा की प्राप्ति होती है।

इसके अलावा दूसरी बात यह है, कि जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ चंचल हैं, जिसका चित्त अशान्त है वह भी आत्मा को केवल आत्म ज्ञान द्वारा नहीं प्राप्त कर सकता है।

समस्त धर्मों को धारण करने वाले और सभी के रक्षक होने पर भी ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दोनों वर्ण जिस आत्मा के भोजक हैं तथा सब का हरण करने वाला होने पर भी मत्यु जिसके भोजन में शाक के समान है ऐसी आत्मा को कौन अज्ञ पुरुष जान सकता है?

वल्ली ३

शुभ कर्मों द्वारा प्राप्त मानव-शरीर में परम ब्रह्म का निवास स्थान हृदय है। उसमें बुद्धि रूपी गुफा में छिपे हुए श्रेय और प्रेय सत्य का पान करते हैं। ये दोनों धूप-छाँह की भाँति आपस में भिन्न हैं—ऐसा ब्रह्म ज्ञानी लोग कहते हैं। यही बात तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन करने वाले और पंचाग्नि से सम्पन्न गृहस्थ भी कहा करते हैं।

यज्ञ करने वालों के लिए नाचिकेत अग्नि शोक-सागर के पार पहुँचा देने वाला पुल है। संसार सागर से पार होने की इच्छा रखने वालों के लिए वही अभय-पद है। इसलिए उस अविनाशी परब्रह्म परमात्मा को जानने और प्राप्त करने में भी हम समर्थ हों।

हे नचिकेता, तुम जीवात्मा को तो रथ पर बैठने वाला स्वामी समझो और शरीर को रथ जानो। इस शरीर-रथ को चलाने वाला सारथी बुद्धि है तथा मन घोड़ों की रास है। ज्ञानी लोग इन्द्रियों को इस रथ के घोड़े मानते हैं, तथा सभी विषयों को घोड़ों के विचरने का स्थान समझते हैं। शरीर, इन्द्रिय और मन इन सबके साथ रह कर जीवात्मा भोग किया करता है।

जो व्यक्ति अविवेकी और चंचल मन होता है, उसकी इन्द्रियाँ असावधान सारथी के बिगड़ैल घोड़ों की भाँति कभी वश में नहीं रहा करती हैं। लेकिन जो विवेकी, स्थिर चित्त होता है, उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथी के सधे हुए घोड़ों की भाँति सदैव वश में रहा करती हैं।

जो व्यक्ति अविवेकी, असंयत चित्त और अपवित्र होता है, वह उस परमपद को नहीं प्राप्त कर सकता और बार-बार संसार में जन्मता और मरता रहता है। लेकिन विवेकी, संयतचित्त और पवित्र व्यक्ति उस परम पद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से लौटकर फिर जन्म नहीं लेता।

जो आदमी बुद्धिरूप विवेकशील सारथी से सम्पन्न होकर मन रूपी लगाम को वश में रखता है वह संसार यात्रा को समाप्त कर परब्रह्म परमात्मा के परम पद को प्राप्त हो जाता है।

बात यह है, कि इन्द्रियों से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषय बड़े बलवान् होते हैं, और इन विषयों से अधिक बलवान मन होता है, मन से भी बलवान् बुद्धि हुआ करती है और इन सभी से महाबलवान् आत्मा है। जीवात्मा से भी परम बलवान् भगवान् की माया है, भगवान् की अव्यक्त माया से भी श्रेष्ठ स्वयं परमात्मा है। बस, परमात्मा से बढ़कर कुछ नहीं है। वही सब की चरम सीमा और परम अवधि है।

वही परमात्मा आत्मा बनकर सभी जीवों में निवास करता है। माया के परदे में छिपा होने के कारण वह दिखायी नहीं पड़ता हैं। केवल सूक्ष्म तत्वों को समझाने वाले तत्वज्ञानी लोग अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसे देख पाते हैं।

इसीलिए बुद्धिमान साधक को चाहिए वह पहले वाणी आदि इन्द्रियों को मन द्वारा वशीभूत करे। उस मन को ज्ञान स्वरूप बुद्धि में लय करें, ज्ञान स्वरूप बुद्धि को महान् आत्मा में विलीन करे और उस आत्मा को सत्‌चित् आनन्द-स्वरूप परमात्मा में विलीन कर दे।

अतएव हे संसार के मनुष्यों, उठो, जागो, श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उस परमात्मा को जान लो क्योंकि त्रिकालदर्शी ज्ञानी लोग तत्व ज्ञान के मार्ग को छुरे की धार के समान तेज एवं दुस्तर समझते हैं।

जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों से रहित है, नित्य, अविनाशी, आदि-अन्तहीन, असीम, आत्मा से भी श्रेष्ठ और सर्वथा सत्यतत्व है, उस परमात्मा को जान कर मनुष्य मृत्यु के मुख से सर्वदा के लिए छूट जाता है।

नचिकेता को यमराज द्वारा दिए गए इस ज्ञान उपदेश को जो पढ़ता है, सुनता है और मनन करता है, वह ब्रह्मलोक में

जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो मनुष्य शरीर और मन से पवित्र होकर इस संवाद को ब्राह्मणों की सभा में सुनाता है; अथवा श्राद्धकाल में भोजन करने वालों को सुनाता है वह अनन्त, अविनाशी फल प्राप्त करता है।

अध्याय २ वल्ली १

स्वयम्भू परमात्मा ने सभी इन्द्रियों को बहिर्मुखी ही बनाया है, इसलिए लोग बाहर की ओर ही देखते हैं, अपने अन्दर स्थित आत्मा को नहीं देख पाते। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो अमरपद पाने की इच्छा रखकर नेत्र आदि इन्द्रियों को बाहरी विषयों से हटाकर अन्तरात्मा को देख पाये हैं।

लेकिन जो मूर्ख बाहरी भोगों में ही रीझे रहते हैं, वे सब जगह व्याप्त मृत्यु के जाल में फँस जाते हैं, इसके विपरीत बुद्धिमान् मनुष्य विवेक द्वारा नित्य अमर पद को जानकर सांसारिक क्षणिक भोग सुखों में आसक्त नहीं होते हैं।

हे नचिकेता, जिसके अनुग्रह से लोग शब्द, रूप, स्पर्श, गन्ध और स्त्री-प्रसंग आदि विषयों का अनुभव करते हैं और जिसके अनुग्रह से यह भी जानते हैं कि यहाँ क्या शेष रह जाता है वह वही परमात्मा है, जिसके विषय में तुमने मुझसे पूछा था।

जागते हुए और सोते हुए दोनों अवस्थाओं में मनुष्य जिससे देखता है, उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, सभी में निवास करने वाले आत्मा को जान लेने पर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं किया करते।

जो मनुष्य कर्मों के फल देने वाले, सबको जीवन देने वाले, तीनों काल में शासन करने वाले इस परमात्मा को अपने समीप समझता

है, तब वह कभी किसी की निन्दा नहीं करता—यही वह परमात्मा है, जिसके विषय में तुमने मुझ से पूछा था।

जो जल से पहले हिरण्यगर्भ रूप में उत्पन्न हुआ था, सब से पहले तप से उत्पन्न हुआ था, जीवधारियों की हृदय-गुफा में प्रवेश कर जो सभी जीवात्माओं के साथ निवास करता है, उस परमात्मा को जो बुद्धिमान पुरुष देखता है—वही ठीक देखता है। नचिकेता, वही वह ब्रह्म है, जिसके विषय में तुमने प्रश्न किया था।

प्राणों और प्राणियों के सहित जो देवमयी अदिति उत्पन्न हुई है तथा जो हृदय रूपी गुफा में प्रवेश करके वहीं निवास करती है, उसे जो पुरुष देख लेता है, वही यथार्थ में देखता है। यही वह ब्रह्म है, जिसके बारे में तुमने प्रश्न किया था।

जैसे गर्भिणी स्त्री के द्वारा शुद्ध अन्न-जल आदि आहार और नियमित संयम करने से स्वस्थ और परिपुष्ट बालक गर्भ के अन्दर छिपा रहता है और यथासमय श्रद्धा, प्रीति एवं प्रसव-वेदना रूप मन्थन के द्वारा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अधर और उत्तर अरणि (यज्ञ में मथकर आग निकालने वाली अरणि लकड़ी के ऊपर और नीचे का भाग) के अन्दर अग्नि देवता छिपे रहते हैं जो एकाग्रता श्रद्धा द्वारा की गयी स्तुति से अरणि-मन्थन द्वारा प्रकट हुआ करते हैं। इसके बाद हवन-सामग्री द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करते हैं। यही अग्निदेव सर्वज्ञ परमेश्वर के रूप हैं। नचिकेता, जिन्हें तुम पूछ रहे तो वह यही ब्रह्म है।

जहाँ से सूर्य उदय होकर जहाँ अस्त होते हैं, सभी देवता उसी में समर्पित हैं। उस परमात्मा को कोई भी नहीं लाँघ सकता—यह वही ब्रह्म है जिसके विषय में तुमने मुझ से पूछा था।

जो परमात्मा यहाँ है वही वहाँ (परलोक में) भी है, जो वहाँ है वही यहाँ (इस लोक में) है। जो मनुष्य परमात्मा को अनेक की भाँति समझता है, वह बारंबार जन्मता और मरता है।

यह परमात्मतत्त्व शुद्ध मन से प्राप्त किये जाने योग्य है, इस संसार में एक परमात्मा के सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिए जो पुरुष इस संसार में परमात्मा को अनेक भाँति से समझता है, वह बार-बार पैदा होता है और मरता है।

परमपुरुष परमात्मा शरीर के मध्य भाग हृदयाकाश में अंगुष्ठ मात्र परिमाण से स्थित है। जो तीनों काल का शासन करने वाला है, उसे जान लेने पर मनुष्य किसी की निन्दा नहीं करता। यह वही परमात्मा है, जिसे तुमने पूछा था।

अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष परमात्मा धुवाँरहित ज्योति के समान है। भूत, भविष्य और वर्तमान पर शासन करने वाला वही परमात्मा आज है और वही कल है। यह वही नित्य सनातन ब्रह्म है, जिसे तुमने पूछा था।

जैसे ऊँचाई पर बरसा हुआ पानी पहाड़ के विभिन्न स्थानों में चारों ओर फैल जाता है, उसी प्रकार विभिन्न धर्मों से युक्त देवता, राक्षस और मनुष्य आदि को परमात्मा से अलग देखकर उनकी उपासना करने वाला मनुष्य उन्हीं के पीछे दौड़ता है।

लेकिन वही वर्षा का निर्मल जल यदि निर्मल जल में ही बरसता है तो वह उसी क्षण निर्मल जल ही होता है। न तो उसमें कोई विकार पैदा होता है और न वह बिखरता है। इसी प्रकार हे गोतम-वंशीय नचिकेता, जो इस बात को अच्छी तरह जान गया है कि जो कुछ भी है वह सब परमात्मा ही है—उस संसार के सभी भोगों से अनासक्त मुनि की आत्मा ब्रह्म को प्राप्त होती है।

मनुष्य के शरीररूपी नगर में दो-दो आँख, दो कान, नाक के दो छिद्र, एक मुख, ब्रह्मरन्ध्र, नाभि, गुदा और मूत्रेन्द्रिय ये ग्यारह द्वार हैं। यह सरल, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, अजन्मा परमात्मा की नगरी है। सर्वपरिपूर्ण और सर्वत्र समभाव रहते हुए भी भगवान् अपनी इस राजधानी (मनुष्य देह) में राजा की भाँति निवास करते हैं—ऐसा समझ कर जो मनुष्य अपने शरीर-नगर के स्वामी परमात्मा का ध्यान आदि साधन करता है, वह कभी भी शोकग्रस्त नहीं होता। शोकरहित होने से सांसारिक बन्धनों से छूट कर वह मुक्त हो जाता है।

जो परम पवित्र परम धाम में रहने वाला स्वयं प्रकाश परमात्मा है वही अन्तरिक्ष में विचरने वाला वसु नामक देवता है। वही अतिथि रूप में गृहस्थों के घरों में पहुँचते हैं। वही यज्ञ-वेदी की ज्योतिर्मय अग्नि तथा उसमें आहुति देने वाले होते हैं। वही परमात्मा मनुष्य रूप में स्थित हैं, वही मनुष्यों से श्रेष्ठ पितर देवता आदि रूप में स्थित हैं। वही आकाश और सत्य में प्रतिष्ठित हैं, वही जल में मछली, शंख, सूती आदि रूपों में प्रकट होते हैं। वही पृथ्वी में वृक्ष, लता, गुल्म, अन्न, औषधि के रूप में प्रकट होते हैं। वही सत्कर्म और उसके फल के रूप में तथा पर्वतों में नद-नदी के रूप में प्रकट होते हैं। वे सभी दृष्टियों से सभी की अपेक्षा श्रेष्ठ महान् और परम सत्य तत्व हैं।

शरीर के अन्दर प्राण, अपान आदि वायु तत्व की जो क्रियाएँ हुआ करती हैं, उन क्रियाओं को संचालित करने वाली उनमें क्रिया-शीलता पैदा करने वाली परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा ही शरीर के अन्दर रह कर प्राण-वायु को ऊपर चढ़ाते हैं और अपान वायु को नीचे गिराते हैं। उस सर्वश्रेष्ठ उपासना करने योग्य परमात्मा की सभी देवता उपासना करते हैं।

जीवात्मा का स्वभाव है एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को अपनाना। जब वह एक शरीर को छोड़कर निकल जाता है, तब उसके साथ इन्द्रियाँ और प्राण भी चले जाते हैं, उस समय देखने में उस मृत शरीर में कुछ भी नहीं शेष रह जाता, लेकिन सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म उस समय भी उसमें व्याप्त रहता है। यही वह ब्रह्म है जिसके सम्बन्ध में तुमने पूछा था।

हे नचिकेता, निश्चय ही एक दिन मरने वाले मनुष्य आदि जितने प्राणी हैं, वे न तो प्राण की शक्ति से जीवित रहते हैं और न अपान की शक्ति से ही। इन्हें जीवित रखने वाला केवल जीवात्मा है। प्राण और अपान वायु ये दोनों जीवात्मा के आश्रित रहते हैं। बिना जीवात्मा के ये एक क्षण भी शरीर में नहीं रह सकते। जीवात्मा के चले जाने पर ये भी इन्द्रियों के साथ शरीर से चले जाते हैं। हे गोतम वंश में उत्पन्न नचिकेता! अब मैं तुम्हें बताऊँगा कि आदमी के मर जाने के बाद जीवात्मा का क्या होता है, वह कहाँ जाता है, किस प्रकार रहता है, और यह भी बताऊँगा कि उस सर्वव्यापी परब्रम्ह परमात्मा का क्या स्वरूप है।

सुनो नचिकेता, अपने-अपने शुभ कर्मों के अनुसार, शास्त्र-ज्ञान, गुरु-ज्ञान, सत्संग, शिक्षा, कारोबार आदि साधनों के द्वारा मनुष्य देख कर, सुन कर, पढ़ कर जो अनुभव करता है, उसी के आधार पर उसके भाव बनते हैं, उसके अन्दर वासना बनती है। जैसी जिसकी वासना हुआ करती है, उसी के अनुसार कोई प्राणी मरने के बाद वीर्य के साथ माता की योनि में प्रवेश कर दूसरा शरीर धारण करते हैं। इनमें जिनके पाप और पुण्य समान होते हैं वे मनुष्य का, जिनके पुण्य कम और पाप अधिक होते हैं, वे स्थावर भाव अर्थात् जड़, वृक्ष आदि योनि को प्राप्त होते हैं।

जो जीवात्माओं के कर्म के अनुसार उन्हें नाना प्रकार के भोगों को देने वाला तथा उनकी यथायोग्य व्यवस्था करने वाला प्रलय-काल में सब का ज्ञान लुप्त हो जाने पर भी अपनी महिमा से नित्य जाग्रत रहता है। जो स्वयं ज्ञानमय है, उसका ज्ञान सदैव समान रहता है। वही यह ब्रह्म है, वही 'विशुद्ध परमतत्व है। उसी को अमृत तत्त्व और परमानन्द कहा जाता है। समस्त लोक उसी के आश्रय में रहते हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। उसके नियमों को कोई बदल नहीं सकता—उल्लंघन नहीं कर सकता। समस्त चराचर उसके शासन में है। कोई भी उसकी अपार महिमा को नहीं समझ सकता। यही है वह ब्रह्म—जिसके सम्बन्ध में तुमने पूछा था।

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक ही निराकार अग्नि है उसमें कोई भेद नहीं है, लेकिन जब वह साकाररूप से प्रज्वलित होती है तब उन आधारभूत वस्तुओं का जैसा रूप होता है, वैसा ही आकार उस निराकार अग्नि का भी दिखायी देने लगता है। इसी प्रकार समस्त प्राणियों में एक ही परमात्मा निराकार रूप से निवास करता है। वह सब में समभाव से व्याप्त है। उसमें कोई भेद नहीं है। लेकिन फिर भी वह परमात्मा भिन्न-भिन्न प्राणियों में उन-उन प्राणियों के अनुरूप अनेक रूपों में प्रकाशित होता है।

जिस प्रकार एक ही वायु अलक्ष्य रूप से समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, लेकिन प्रकट में भिन्न-भिन्न वस्तुओं के संयोग से उन-उन वस्तुओं के अनुरूप गति और शक्ति वाला दिखायी देता है। उसी प्रकार सभी प्राणियों में रहनेवाला एक अन्तर्यामी परमात्मा भिन्न-भिन्न प्राणियों के संबंध से भिन्न-भिन्न रूप और शक्ति वाला दिखायी पड़ता है। इतना ही नहीं वह परमात्मा उन सब के बाहर भी अनन्त, असीम एवं विलक्षण रूप से स्थित है।

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक नेत्र सूर्य है। उसका प्रकाश प्राणिमात्र की आँखों का सहारा है। उसके प्रकाश की सहायता से लोग अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे काम करते हैं, लेकिन सूर्य उनके नेत्र द्वारा किये जाने वाले दुष्कर्मों से तनिक भी लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सबके अन्दर निवास करने वाले भगवान् एक हैं, उन्हीं की शक्ति से प्राणी शक्तिशाली होता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा नाना प्रकार के शुभ-अशुभ कर्म करता है। तदनुरूप फल भोगता है। परन्तु वे पाप-पुण्य परमात्मा पर लिप्त नहीं होते। क्योंकि वह सब में रहते हुए सर्वथा असंग हैं।

जो परमात्मा अन्तरात्मा बना हुआ सबके अन्दर निवास करता है, जो अद्वितीय है, समस्त चराचर को अपने वश में रखता है। वही सर्वशक्तिमान् अपने एक ही रूप को अपनी माया से बहुत प्रकार का बना लेता है। जो ज्ञानी पुरुष ऐसे परमात्मा को सदैव अपने हृदय के अन्दर स्थित देखते हैं, उन्हीं को शाश्वत परमानन्द मिलता है—दूसरों को नहीं।

जो समस्त नित्य चेतन जीवात्माओं के भी नित्य चेतन आत्मा हैं, जो एक होकर भी अनन्त जीवों के भोगों को कर्मानुसार निर्माण करते हैं, ऐसे सर्वशक्तिमान भगवान को जो ज्ञानी अपने हृदय के अन्दर ही देखते हैं, उन्हें ही परम शान्ति मिलती है। दूसरों को नहीं।

ज्ञानी लोग उस परमानन्द और परम शान्ति को ही परमब्रह्म मानते हैं। जिसे मन और वाणी से नहीं बताया जा सकता है, उस परमानन्द स्वरूप परमात्मा को मैं प्रत्यक्ष रूप से कैसे जानूँ, क्या वह प्रत्यक्ष प्रकट होता है अथवा उसकी अनुभूति होती है, उसका ज्ञान किस प्रकार होता है?

उस स्वयं ज्योतिर्मय, सर्वोपरि आनन्दमय परब्रह्म के समीप यह सूर्य नहीं प्रकाशित होता। सूर्य का आंशिक तेज उसके असीम तेज के सामने उसी प्रकार विलीन हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश में जुगनू की चमक। चन्द्रमा, नक्षत्र और बिजली भी वहाँ नहीं चमकते तब फिर इस लौकिक अग्नि की बात ही क्या?

उस परमब्रह्म के प्रकाशित होने पर ही सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है।

वल्ली ३

जिसकी जड़ बना हुआ परमात्मा ऊपर (सर्वश्रेष्ठ) है और जिसकी मुख्य डाल ब्रह्मा तथा छोटी-मोटी डालें देव, पितर, मनुष्य, पक्षी आदि क्रम से नीचे हैं। ऐसा यह ब्रह्माण्ड रूप पीपल का वृक्ष सनातन काल से है। कभी प्रत्यक्ष रूप से और कभी अप्रत्यक्ष रूप से अपने कारण स्वरूप ब्रह्म में नित्य निवास करता है, इसीलिए सनातन है। इसका जो मूल कारण है, जिससे यह उत्पन्न होता है, जिससे सुरक्षित है और जिसमें विलीन होता है वही दिव्य तत्त्व है, वही ब्रह्म है, उसी को अमृत कहते हैं, तथा सब लोग उसी के आश्रित रहते हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। नचिकेता, वह यही तत्त्व है, जिसके बारे में तुमने पूछा था।

जो कुछ भी देखा, सुना और कहा जाता है और जो कुछ जगत् है, वह परब्रह्म से ही प्रादुर्भूत हुआ है। उस प्राण स्वरूप परमात्मा में ही चेष्टा करता है, इस उठे हुए वज्र के समान महान् भयंकर परमात्मा को जो जानते हैं वे जन्म और मृत्यु से छूटकर अमर हो जाते हैं।

इसी के भय से अग्नि तपता है, इसी के भय से सूर्य तपता है तथा इसी के भय से इन्द्र, वायु और पाँचवें मृत्यु देवता अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं।

यदि मृत्यु से पहले ही साधक, परमात्मा का साक्षात् कर सके तब तो ठीक है, अन्यथा अनेक युगों और कल्पों तक अनेक लोकों और योनियों में जन्म लेने के लिए उसे विवश होना पड़ता है।

जैसे स्वच्छ दर्पण में सामने आयी हुई वस्तु दिखायी पड़ती है, उसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मा के दर्शन हुआ करते हैं। जैसे स्वप्न से वस्तु धुँधुली दिखायी पड़ती है, उसी प्रकार पितृलोक में परमात्मा के अस्पष्ट दर्शन होते हैं। जैसे जल में परछाईं दिखायी पड़ती है, उसी प्रकार गन्धर्व लोक में परमात्मा के दर्शन होते हैं। किन्तु ब्रह्मलोक में तो छाया और धूप की तरह आत्मा और परमात्मा के रूप पृथक्-कपृथ दिखायी देता है।

शब्द, स्पर्श आदि विषयों के अनुभव-स्वरूप अलग-अलग कार्य करने के लिए भिन्न-भिन्न रूप में पैदा हुई इन्द्रियों की जो अलग-अलग सत्ता है और जो उनका उदय हो जाना तथा लय हो जाना-रूप स्वभाव है, उसे जान कर धीर पुरुष शोक नहीं करता।

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि उत्तम है, बुद्धि से ऊँचा उनका स्वामी जीवात्मा है और जीवात्मा से अव्यक्त शक्ति उत्तम है। अव्यक्त से वह व्यापक, निराकार परमपुरुष श्रेष्ठ है, जिसे जान कर जीवात्मा मुक्त हो जाता है और अमृत स्वरूप, आनन्द-मय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

इस परमात्मा का वास्तविक रूप साधारण मनुष्य अपनी इन आँखों से नहीं देख सकता। जो भाग्यवान् श्रद्धा-सम्पन्न मन से उसका चिन्तन करता है, विशुद्ध हृदय से उनके दिव्य-स्वरूप का

ध्यान करता है, वही विशुद्धात्मा बुद्धिरूप नेत्रों से परमात्मा के दिव्य रूप को देख सकता है। इस परमात्मा को जानने वाला अमृत (अमर) बन जाता है।

जब मन के सहित पाँचों इन्द्रियाँ अच्छी तरह निश्चल हो जाती हैं, और बुद्धि भी निश्चेष्ट बन जाती है; उस स्थिति को योगी लोग परमगति कहते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिरता का ही नाम योग है—ऐसा योगी लोग मानते हैं, क्योंकि उस समय साधक प्रमादरहित हो जाता है। परन्तु यह योग उदय और अस्त होने वाला है इसलिए परमात्मा की प्राप्ति के लिए साधक को निरन्तर योगयुक्त रहना चाहिए।

वह परमात्मा मन, वाणी और नेत्रों द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता, क्योंकि वह इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। लेकिन वह है अवश्य, जो कोई उस ब्रह्म को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा रखते हैं उन्हें वह अवश्य मिलता है। इस बात पर जिसका विश्वास ही नहीं है, उसे वह कैसे मिलता है?

इसलिए साधक को चाहिए कि पहले वह परमात्मा की सत्ता पर विश्वास करे, फिर इसी विश्वास से उन्हें स्वीकार करे और उसके पश्चात् तत्त्व चिन्तन द्वारा निरन्तर उसका ध्यान करके उन्हें प्राप्त करे। जब साधक इस निश्चित विश्वास से भगवान् को स्वीकार कर लेता है—कि वह अवश्य हैं—तब परमात्मा का तत्वरूप अपने-आप उसके सामने प्रत्यक्ष हो जाता है।

मनुष्य का हृदय लौकिक पारलौकिक अनन्त कामनाओं से सदैव भरा रहता है। यही कारण है, कि वह परमात्मा की प्राप्ति का उपाय सोच ही नहीं पाता। कामनाओं की अभिलाषा के सामने परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा भी उसमें उत्पन्न ही नहीं होती। इस प्रकार की ये सब कामनाएँ जब साधक के हृदय से

नष्ट हो जाती हैं, तभी वह मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और इसी मनुष्य-शरीर ही में वह परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है।

जब मनुष्य के हृदय की अहंता और ममता की गाँठें बिल्कुल कट जाती हैं, उसके सब प्रकार के संशय नष्ट हो जाते हैं और परमात्मा की सत्ता पर उसे दृढ़ विश्वास हो जाता है, तब वह इसी मानव-देह से ही ईश्वर का साक्षात्कार करके अमर हो जाता है। बस नचिकेता, वेदान्त का इतना ही निचोड़ है।

अन्तर्यामी, परब्रह्म परमात्मा हृदय के अनुरूप अंगुष्ठ मात्र रूप से सदा सब के हृदय में निवास करते हैं लेकिन फिर भी आदमी उन्हें देख नहीं पाता। जो प्रमाद छोड़ कर उनकी प्राप्ति के लिये निरन्तर साधन किया करते हैं, उन्हें चाहिए कि वे शरीरस्थ परमात्मा को उसी तरह विलक्षण और पृथक् समझें जैसे साधारण लोग सींक को मूंज से पृथक् समझते हैं। इसी प्रकार वह शरीर और आत्मा के भीतर रहने वाला परमात्मा उन दोनों से सर्वथा विलक्षण है। वही विशुद्ध अमृत है, वही विशुद्ध अमृत है।

इस प्रकार यमराज के द्वारा दिए गए उपदेश को तथा उनके द्वारा बतायी गयी समस्त विद्याओं और योग की विधियों को प्राप्त कर नचिकेता जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त, विकार रहित एवं विशुद्ध होकर ब्रह्म को प्राप्त हो गया।

दूसरा जो कोई भी इस आध्यात्मिक विद्या को इसी प्रकार जान लेता है वह भी निर्विकार, विशुद्ध होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

४

प्रश्नोपनिषद्

अथर्ववेद की पैप्लाद शाखा के अन्तर्गत 'प्रश्नोपनिषद्' है। इसमें महर्षि पिप्पलाद ने ६ ऋषियों के ६ प्रश्नों के उत्तर क्रमश: दिये हैं जो ब्रह्म विवेचन से संबंधित हैं। प्रश्नों के कारण ही इसे 'प्रश्नोपनिषद्' कहा जाता है।

शान्ति पाठ

हे देवगण, भगवान् का आराधन करते हुए हम लोग दोनों कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। हमारे शरीर के अंग-अंग सुदृढ़ हों। हमें ऐसी आयु मिले जो परमात्मा के काम आ सके। उनके अनुकूल रहने से हमारी सारी इन्द्रियाँ सन्मार्ग में लगी रह सकती हैं। यशस्वी इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, विघ्न विनाशक गरुड़, और बुद्धि के स्वामी बृहस्पति ये सभी देवता भगवान् का दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सभी हमारे कल्याण का पोषण करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के तापों की शान्ति हो।

प्रथम प्रश्न

परम्परागत यह प्रसिद्ध है, कि भरद्वाज के पुत्र सुकेशा, शिविकुमार सत्यकाम, गर्ग गोत्र में उत्पन्न सौर्यायणी; कोसल

निवासी आश्वलायन, विदर्भ निवासी भार्गव, और कत्य के प्रपौत्र कबन्धी—ये छह वेदपरायण, ब्रह्मनिष्ठ ऋषि परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रख बाहर निकले। ब्रह्म की खोज करते हुए ये सब यह समझकर कि पिप्पलाद ऋषि ब्रह्म के विषय में सब कुछ बता देंगे—जिज्ञासु के वेश में हाथ में समिधा लिये हुए उनके पास पहुँचे।

ब्रह्म की जिज्ञासा लेकर उन्हें अपने पास आए हुए देखकर पिप्पलाद ऋषि ने कहा—तुम लोग तपस्वी हो, तुमने ब्रह्मचर्य व्रत रखकर वेद-वेदांगों का अध्ययन किया है, फिर भी मेरे आश्रम में एक वर्ष तक रहकर तपश्चर्या करो। इसके बाद जो इच्छा हो प्रश्न करना। यदि तुम्हारे पूछे हुए विषयों का ज्ञान मुझे होगा, तो निश्चय ही मैं उन्हें भली भाँति तुम्हें समझाऊँगा।

ऋषि के आदेशानुसार उन लोगों ने एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक उसी आश्रम में तपस्या की। इसके बाद सब मिलकर ऋषि के पास गए। उनमें से कबन्धी ने श्रद्धा और विनयपूर्वक पिप्पलाद मुनि से पूछा—भगवन्, जिससे समस्त चराचर जीव विविध रूपों में पैदा होते हैं, जो उन जीवों का परम कारण है—वह कौन है ?

पिप्पलाद बोले, प्रिय कबन्धी, वेदों में यह बात प्रसिद्ध है, कि समस्त जीवों के स्वामी परमात्मा को सृष्टि के आरम्भ में जब प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई तो उन्होंने संकल्प रूप तप किया। उस तपस्या से उन्होंने रयि और प्राण का जोड़ा पैदा किया। उन्हें उत्पन्न करने का उद्देश्य यह था कि दोनों मिलकर मेरी विविध प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे।

यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् रयि और प्राण इन दोनों तत्वों के समन्वय से बना है। प्रत्यक्ष दिखायी देने वाला यह सूर्य ही प्राण है और यह चन्द्रमा ही रयि है। पृथ्वी, जल, तेज यह सब

आकार वाले और आकाश तथा वायु जो आकाररहित हैं—ये सब रयि हैं। इसलिए देखी और जानी जाने वाली सभी वस्तुएँ रयि हैं।

रात के बाद जब सूर्य उदय होकर पूर्व दिशा में अपना प्रकाश फैलाता है, उस समय वहाँ के प्राणियों की जीवनी शक्ति का सूर्य की किरणों के साथ सम्बन्ध होकर उसमें नवीन चेतना आ जाती है। इस प्रकार जिस दिशा में जहाँ-जहाँ सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है, वहाँ के प्राणियों को नइ स्फूर्ति देता है। इसीलिए सूर्य ही समस्त प्राणियों का प्राण है।

प्राणियों के अन्दर स्थित वैश्वानर नाम की जो उदराग्नि अन्न पचाया करती है वह सूर्य का ही अंश है। इसलिए सूर्य ही है। तथा जो प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान—इन पाँच रूपों में विभक्त प्राण है, वह भी इस सूर्य का ही अंश है, अतः सूर्य ही है।

किरण-जाल से घिरा हुआ प्रकाशमान और प्रतप्त यह सूर्य संसार के समस्त रूपों का केन्द्र है। सभी रंग, रूप और आकृतियाँ इसी से प्रकाशित होती हैं। यह सविता ही सब का उत्पत्ति-स्थान है। यही सब को जीवन-ज्योति का मूल-स्रोत है। समस्त जगत् का प्राण बना हुआ सूर्य एक ही है। यह सहस्र किरणों वाला सूर्य हमारे सैकड़ों प्रकार के व्यवहार सिद्ध करता हुआ उदय होता है। सम्पूर्ण सृष्टि का जीवनदाता प्राण ही सूर्य रूप में उदय होता है।

बारह महीनों का यह संसार रूप काल ही मानों सृष्टि के स्वामी परमेश्वर का स्वरूप है। उत्तरायण और दक्षिणायन इसके दो अयन हैं। दक्षिणायन में छह मास तक सूर्य जो दक्षिण की ओर घूमता है वे इसके दक्षिण अंग हैं और उत्तरायण के छह महीने उसके उत्तर अंग हैं। उनमें उत्तर अंग तो प्राण

है और दक्षिण अंग रयि है । जो लोग यज्ञ, दान, स्वाध्याय आदि सत्कर्म सकाम भाव से करते हैं वे चन्द्रमा के लोक को प्राप्त होते हैं। वे ही बार-बार आकर इस संसार में जन्म लिया करते हैं। इसलिए सन्तान की कामना वाले ऋषिगण दक्षिण मार्ग को प्राप्त होते हैं । निःसन्देह यही रयि है। जो पितृयान नाम का मार्ग है ।

जो श्रद्धा और अध्यात्म विद्या के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक तपस्या करते हुए सूर्य रूप ब्रह्म की खोज करते हैं, वे उत्तरायण मार्ग से सूर्य लोक को जीत लेते हैं। यह सूर्य ही प्राणों का केन्द्र है। यह अमर और भयरहित है। यह परमगति है, इससे पुनः लौटकर नहीं आते। इसलिए वह बार-बार जन्म लेने से रोकता है। इसी बात को स्पष्ट करने वाला यहाँ आगे का श्लोक है—

जो लोग इस सूर्य को पाँच चरणों वाला सब का पिता, बारह आकृतियां वाला, जल का उत्पादक और स्वर्ग लोक से भी ऊपर के लोक में स्थित बतलाते हैं । तथा वे दूसरे अनेक लोग विशुद्ध सात पहियों वाले और छह आरों वाले रथ में बैठा हुआ एवं भली-भाँति जानने वाला—ऐसा बतलाते हैं ।

महीना ही प्रजापति है, उसका कृष्ण पक्ष रयि और शुक्ल पक्ष प्राण है। इसलिए कल्याण की कामना वाले ऋषि शुक्ल पक्ष में यज्ञ, दान आदि कर्म करते हैं, और दूसरे सकाम भाव से यज्ञ आदि करने वाले कृष्ण पक्ष में किया करते हैं।

दिन और रात का जोड़ा ही प्रजापति है, उसका दिन ही प्राण है। रात ही रयि है। जो दिन में स्त्री प्रसंग करते हैं, वे लोग निःसन्देह अपने प्राणों को क्षीण करते हैं। तथा जो मनुष्य रात में स्त्री-सहवास करते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है ।

अन्न ही प्रजापति है, क्योंकि इसी से वह वीर्य उत्पन्न होता है, जिससे सम्पूर्ण चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं।

जो कोई उस प्रजापति व्रत का अनुष्ठान करते हैं, वे जोड़े को उत्पन्न करते हैं। जिनमें तप और ब्रह्मचर्य है तथा जिनमें सत्य प्रतिष्ठित है। उन्हीं को यह ब्रह्मलोक मिलता है।

जो झूठ, कपट, माया और कुटिलता से रहित हैं, उन्हीं को यह विशुद्ध, विकाररहित ब्रह्मलोक मिलता है।

द्वितीय प्रश्न

इसके बाद विदर्भ निवासी भार्गव ऋषि ने पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया—भगवन्, प्रजा को कितने देवता धारण करते हैं, उनमें से कौन-कौन इसे प्रकाशित करते हैं। उन सब में अत्यन्त श्रेष्ठ कौन है?

महर्षि पिप्पलाद बोले—वैसे तो सब का आधार स्वरूप आकाश देवता ही है, परन्तु उसमें उत्पन्न वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के चारों महाभूत भी शरीर को धारण करते हैं। इन्हीं से स्थूल शरीर की रचना हुई है। वाणी आदि पाँच कर्म इन्द्रियाँ, नेत्र, कान आदि ज्ञान इन्द्रियाँ एवं मन आदि अन्त:करण ये चौदह देवता इस शरीर के प्रकाशक हैं। ये देवता देह को धारण और प्रकाशित करते हैं। इसीलिए प्रकाशक देवता कहे जाते हैं। ये सब देह के प्रकाशक बनने से गर्व में चूर होकर आपस में कहने लगे कि हमने इस शरीर को आश्रय देकर ग्रहण कर रखा है।

तब उन सब में श्रेष्ठ प्राण बोला—तुम लोग मोह में न पड़ो, मैंने ही अपने इस स्वरूप को पाँच विभागों में विभक्त कर इस शरीर को आश्रय देकर धारण किया है। यह सुनकर भी उन्हें विश्वास न हुआ।

तब प्राण अभिमानपूर्वक मानो उस शरीर से बाहर निकलने लगा। उसी के साथ अन्य सब भी बाहर निकलने लगे और उसके लौटने पर सब देवता भी लौट कर उस शरीर में ठहर गए। तब जैसे मधुमक्खियों का राजा छत्ते से उड़ने लगता है और उसी के साथ बैठी हुई अन्य मक्खियाँ भी उड़ चलती हैं। उसके बैठ जाने पर सब की सब बैठ जाती हैं। यही दशा इन सब यज्ञ आदि।देवताओं की है। अतः वाणी, नेत्र, कान, और मन आदि सब प्रसन्न हो प्राण का स्तुति करने लगे। यह प्राण ही अग्नि रूप से तपा करता है। यही सूर्य है। यही मेघ, इन्द्र और वायु है। यही देवता पृथ्वी और जीवों का समुदाय है। सत् और असत् तथा उससे भी श्रेष्ठ जो अमृत रूप परमात्मा है वह भी यही प्राण है।

जैसे रथ के पहिये की नाभी में लगे हुए और नाभी के ही आश्रित रहते हैं. उसी प्रकार ऋग्वेद की सारी ऋचाएँ, यजुर्वेद के सब मंत्र, समूचा सामवेद तथा उनके द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञ आदि शुभकार्य करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि ये सब प्राण के आधार पर ही आश्रित हैं।

हे प्राण तू प्राणियों का ईश्वर है, तू ही गर्भ में विचरने वाला और माता-पिता के अनुरूप संतान के रूप में जन्म लेने वाला है। ये सब जीव तुझे ही भेंट समर्पित करते हैं। तू ही अपान आदि सब प्राणों के सहित सब के शरीर में स्थित हो रहा है।

हे प्राण तू देवताओं के लिए उत्तम अग्नि है। पितरों के लिए उत्तम स्वधा है। अथर्वाङ्गिरस आदि ऋषियों के द्वारा अनुभव किया गया सत्य तू ही है।

हे प्राण, तू तेज से सम्पन्न इन्द्र, रुद्र और रक्षा करने वाला है, तूही अन्तरिक्ष में भ्रमण करता है। तूही समस्त तारागणों का स्वामी सूर्य है।

हे प्राण, तू सब प्रकार के तेज से सम्पन्न तीनों लोकों का स्वामी इन्द्र है। तू ही प्रलयकाल में सबका संहार करने वाला रुद्र है तू ही सब की भली-भाँति रक्षा करने वाला है। तू ही पृथ्वी और आकाश के बीच भ्रमण करने वाला वायु है। और तू ही अग्नि, सूर्य, चन्द्र तथा तारागण आदि ज्योतियों का स्वामी है।

हे प्राण, जब तू अच्छी तरह पानी बरसाता है, उस समय तेरी यह सम्पूर्ण प्रजा यह आशा करती हुई कि जीवन निर्वाह के लिए यथेष्ट अन्न उत्पन्न होगा—आनन्द में मग्न हो जाती है।

हे प्राण तू संस्कार रहित होकर भी सर्वश्रेष्ठ ऋषि है। हम लोग तेरे लिए भोजन को देने वाले हैं और तू उसे खाने वाला है। समस्त जगत् का श्रेष्ठ स्वामी तू ही है। हे आकाश में घूमने वाले वायुदेव, तू हमारा पिता है।

हे प्राण, जो तेरा स्वरूप, वाणी, कान नेत्र, आदि सभी इन्द्रियों और मन; अन्तःकरण आदि सभी में व्याप्त है, उसे तू करुणामय बना ले—यही हमारी प्रार्थना है।

प्रत्यक्ष जगत् और स्वर्ग में जो कुछ भी स्थित है, वह सब प्राण के अधीन है। हे प्राण तू हमारी रक्षा माता-पिता की भाँति कर। हमें श्री, ऐश्वर्य और बुद्धि प्रदान कर।

तृतीय प्रश्न

इसके बाद कोसल निवासी आश्वलायन ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा—भगवन, यह प्राण किससे उत्पन्न होता है, इस शरीर में कैसे

आता है। अपने को किस प्रकार विभाजित कर स्थित होता है? किस प्रकार शरीर से बाहर निकलता है, किस प्रकार बाहरी संसार को धारण करता है। किस प्रकार मन और इन्द्रिय आदि शरीर के भीतर रहने वाले जगत् को धारण करता है। यही मेरा प्रश्न है।

महर्षि पिप्पलाद बोले—ऋषि आश्वलायन, तुम बहुत ही कठिन प्रश्न पूछ रहे हो। लेकिन तुम वेदों के विशेषज्ञ हो, इसलिए मैं तुम्हें इन प्रश्नों का उत्तर समझा रहा हूँ।

यह प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है, जैसे छाया पुरुष के अधीन रहती है, उसी प्रकार यह प्राण परमात्मा के अधीन रहता है। यह इस शरीर में मन द्वारा किए गए संकल्प से आता है।

जिस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट भिन्न-भिन्न गाँवों, नगरों, मंडलों और प्रदेशों का प्रबंध योग्य अधिकारियों को नियुक्त करके करता है, उसी प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ प्राण भी अपने अंग रूप अपान, व्यान आदि को शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों में कार्य करने के लिए नियुक्त कर देता है।

यह प्राण, गुदा और उपस्थ स्थान में अपान को नियुक्त रखता है, स्वयं मुख और नासिका द्वारा विचरता हुआ आँखों और कानों में स्थित रहता है। शरीर के मध्य भाग में समान वायु को नियुक्त करता है। यह समान वायु ही प्राणाग्नि में हवन किए हुए अन्न को समस्त शरीर में यथायोग्य समभाव से पहुँचाता है, उससे दो आंखें, दो कान, दो नाक के छेद और एक जीभ—ये सातद्वार उत्पन्न होते हैं। उस रस से परिपुष्ट होकर ही ये अपना-अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं।

यह जीवात्मा हृदय प्रदेश में निवास करता है, उसमें एक सा नाड़ियों का समुदाय है। उनमें प्रत्येक नाड़ी में सौ-सौ शाखाएँ

हैं। प्रत्येक नाड़ी की शाखा की बहत्तर-बहत्तर हजार प्रतिशाखाएँ होती हैं। इन्हीं में व्यान वायु विचरण किया करता है।

उपर्युक्त ७२ करोड़ नाड़ियों के अतिरिक्त एक और नाड़ी सुषुम्ना है, जो हृदय से निकलकर ऊपर मस्तक में गयी है। उसके द्वारा उदानवायु शरीर में ऊपर की ओर विचरण करता है। भाग्य-वान्, पुण्यात्मा मनुष्यों को यह उदान वायु अन्य सब प्राण और इन्द्रियों सहित इस शरीर से निकालकर स्वर्गलोक ले जाता है। पापात्माओं को कुत्ता, सुअर आदि की योनियों में अथवा रौरव-नरक में ले जाता है। जिनके पाप-पुण्य का हिसाब बराबर रहता है, उन्हें फिर मनुष्य योनि में ले जाता है।

इतना निश्चित रूप से समझ लो कि सूर्य ही सबका बाह्य प्राण है। यही नेत्र सम्बन्धी प्राण पर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। पृथ्वी में अपानवायु की शक्ति का प्रतिनिधि देवता मनुष्य के अपान वायु को स्थिर किए रहता है। पृथ्वी और स्वर्ग के बीच जो आकाश है, वह समान है और वायु ही व्यान है।

अग्नि और सूर्य की जो गर्मी है वही उदान का बाह्य स्वरूप है। वह शरीर के बाहरी अंगों को ठंडा नहीं होने देता और शरीर के भीतर की गर्मी को स्थिर रखता है। जिसके शरीर से उदानवायु निकल जाता है उसका शरीर ठंडा पड़ जाता है। शरीर की गर्मी शान्त होते ही उसमें रहने वाला जीवात्मा मन में विलुप्त हुई इन्द्रियों को साथ लेकर उदान वायु के साथ-साथ दूसरे शरीर में चला जाता है।

मरते समय जीवात्मा का जैसा संकल्प होता है, उसका मन अन्तिम समय में जिस भाव का चिन्तन करता है, उस संकल्प के सहित मन, इन्द्रियों को साथ लिए हुए यह मुख्य प्राण में स्थित

हो जाता है। वह मुख्य प्राण उदान वायु से मिलकर मन और इन्द्रियों के सहित जीवात्मा को उस अन्तिम संकल्प के अनुसार यथा-योग्य भिन्न-भिन्न लोक अथवा योनि में ले जाता है?

जो विद्वान प्राण के इस रहस्य को समझ लेता है और समझ कर हर प्रकार से उसे सुरक्षित रखता हैं, उसकी उपेक्षा नहीं करता उसकी वंश-परम्परा कभी नष्ट नहीं होती, क्योंकि उसका वीर्य अमोघ हो जाता है। वह अमर हो जाता है। इस विषय पर निम्नलिखित श्लोक है—

जो मनुष्य प्राण की उत्पत्ति के रहस्य को जानता है, उसके निवास स्थान और उसकी व्यापकता को जानता है तथा बाहर कहाँ रहता है, भीतर कहाँ रहता है इस रहस्य को और आध्यात्मिक, आधिभौतिक पाँचों भेदों के रहस्य को भली-भाँति समझ लेता है वह अमृत स्वरूप परमानन्द ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

पाँचवाँ प्रश्न

इसके बाद गार्ग्य ऋषि ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा कि—भगवन्, जिस समय आदमी गाढ़ी नींद में सोया रहता है, उस समय शरीर में रहने वाली इन्द्रियों में से कौन इन्द्रियाँ सोती हैं। कौन-कौन जागती रहती हैं। स्वप्न वस्था में स्वप्न की घटनाओं को कौन-कौन देखा करती हैं। निद्रा अवस्था में सुख का अनुभव किसको होता है और सभी इन्द्रियाँ किसके आश्रित हैं।

इस प्रकार गार्ग्य मुनि द्वारा जीवात्मा और परमात्मा का तत्त्व पूछने पर महर्षि पिप्पलाद बोले—हे गार्ग्य, जिस प्रकार सूर्यास्त के समय सूर्य की सभी किरणें एक होकर उसी तेजः पुंज में समा जाती हैं, उसी प्रकार गाढ़ी नींद के समय सब की सब इन्द्रियाँ अपने

से श्रेष्ठ इन्द्रिय मन में समा जाती हैं। उस समय जीवात्मा न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न स्वाद लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न चलता है, न मलमूत्र का त्याग करता है और न मैथुन का सुख भोग करता है।'

उस समय मनुष्य के शरीररूप नगर में केवल पाँच प्राण रूप अग्नियाँ ही जागा करती हैं। निद्रा को यज्ञ का रूप देते हुए प्राण को अग्नि रूप बतलाकर पिप्पलाद ऋषि कहते हैं कि—अपान प्राण गार्हपत्य अग्नि है, व्यान अन्न पचाने वाली दक्षिणाग्नि है। गार्हपत्य अग्नि से उठाकर जो ले जायी जाती है, वह आह्वनीय अग्नि है। उठाकर ले जाए जाने के कारण ही प्राण रूप है।

ऊर्ध्वश्वास और अधःश्वास मानो ये दोनों आहुती हैं। जो इन दोनों को सब ओर पहुँचाता है वह 'समान' कहलाता है वही हवन करने वाला 'होता' कहलाता है। यह मन ही यजमान है। यज्ञ का अभीष्ट फल ही उदान है। यह उदान ही इस मनरूप यजमान को प्रतिदिन निद्रा के समय में ब्रह्मलोक भेजता है अर्थात् हृदय रूपी गुफा में ले जाता है।

स्वप्नावस्था में जीवात्मा अपनी विभूति का अनुभव करता है, जो बार-बार देखा हुआ है, उसी को बार-बार देखता है। बार-बार सुनी हुई बातों को बार-बार सुनता है। अनेक देशों और दिशाओं में प्राप्त किए हुए विषयों को बार-बार अनुभव में लाता है। देखे हुए और न देखे हुए, सुने हुए और न सुने हुए अनुभव किए हुए और अनुभव न किये हुए, विद्यमान और अविद्यमान को भी देखता हैं, सारी घटनाओं को सोचता और अनुभव करता है। स्वयं सब कुछ बनकर देखता है।

यह मन जब उदान वायु में अभिभूत हो जाता है, उस समय

जीवात्मा स्वप्नों को नहीं देखता, उस समय मनुष्य के शरीर में जीवात्मा की इस सुषुप्ति के सुख का अनुभव होता है।

गार्ग्य, पाँचवीं बात जो तुमने पूछी है उसे भी समझो—हे प्रिय, जिस प्रकार बहुत-से पक्षी अपने निवास वृक्ष पर आकर आराम से बसेरा लेते हैं, ठीक उसी प्रकार पृथ्वी आदि तत्वों से लेकर प्राण तक सबके सब परमात्मा में सुखपूर्व आश्रय पाते हैं।

पृथिवी और उसकी सूक्ष्म गन्ध, जल और उसका रस, तेज और उसका तन्मय का रूप, वायु और उसका स्पर्श, आकाश और उसका शब्द, नेत्र और उससे दिखायी देने वाली वस्तुएँ, कान और उससे सुनायी पड़ने वाली वस्तुएँ, नाक और उससे सूँघी जाने वाली वस्तुएँ, जीभ और उस का स्वाद, त्वचा और उससे स्पर्श होने वाली वस्तुएँ, वाणी और उससे बोले जाने वाले शब्द, दोनों हाथ और उसके ग्रहण की जाने वाली वस्तुएँ, उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) और उसका विषय, गुदा और उससे परित्याग की जाने वाली वस्तु, दोनों पैर और उनके गन्तव्य स्थान, मन और उसने मनन की जाने वाली वस्तु बुद्धि और उससे जानी जाने वाली वस्तु अहंकार और उसका विषय, चित्त और उसके चिन्तन में आने वाली वस्तु, प्रभाव और उसका विषय, और प्राण और प्राण द्वारा धारण की जाने वाली वस्तु ये सभी परमात्मा के आश्रित हैं।

यह जो कुछ देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, सूघने वाला, स्वाद लेने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला तथा कर्म करने वाला, विज्ञान-स्वरूप जीवात्मा है, वह भी अवि-नाशीपरमात्मा में भली-भाँति स्थित है।

यह निश्चय पूर्वक कह रहा हूँ, कि जो कोई भी मनुष्य उन छाया रहित, शरीर रहित, रंग-रूप रहित, विशुद्ध, अविनाशी परमात्मा को जान लेता है, वह परम अक्षर परमात्मा को ही प्राप्त

हो जाता है। हे सोम्य, जो कोई भी ऐसा है, वह सर्वज्ञ और सर्व रूप बन जाता है। इस विषय में निम्नांकित श्लोक है—

सब के परमकारण परमात्मा ही समस्त प्राणों, सभी जीवों सभी इन्द्रियों और आत्मा के आश्रय हैं। हे सोम्य, उस अक्षर, अविनाशी परमात्मा को जो जान लेता है, वह सर्वज्ञ, स्वरूप परमात्मा में लीन हो जाता है। इस प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

पाँचवा प्रश्न

इसके बाद सत्यकाम ने ओंकार के विषय में प्रश्न करते हुए जिज्ञासा प्रकट की कि—जो मनुष्य जिन्दगी भर ओंकार की उपासना करता है, उसे क्या फल मिलता है, उसे कौन-कौन से लोकों की प्राप्ति होती है।

महर्षि पिप्पलाद बोले—प्रिय सत्यकाम, ॐ का लक्ष्य परब्रह्म है, और वह उससे भिन्न नहीं है। इसलिये वही परब्रह्म है और वही उस परब्रह्म से प्रकट हुआ उसका विराट् स्वरूप—अपर ब्रह्म भी है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य केवल एक प्रणव का चिन्तन करता हुआ परब्रह्म अथवा अपर ब्रह्म में से किसी एक का श्रद्धानुसार अनुसरण करता है।

ऐसा उपासक यदि एक मात्रा से युक्त ॐ का भली-भाँति ध्यान करे तो वह उस उपासना से ही प्रेरित हुआ शीघ्र ही इस संसार में उत्पन्न होता है। उसे ऋग्वेद की ऋचाएँ मनुष्य शरीर प्राप्त करा देती है। वह तप, ब्रह्मकर्म और श्रद्धा से युक्त होकर महिमा का अनुभव करता है।

परन्तु यदि वह दो मात्राओं से युक्त ॐ का ध्यान करता है तो मन से उत्पन्न चन्द्रलोक को प्राप्त होता है। वह यजुर्वेद के

मंत्रों द्वारा अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रलोक को ऊपर की ओर ले आया जाता है। इसके बाद चन्द्रलोक के ऐश्वर्य का अनुभव कर वह पुनः पृथ्वी लोक में लौट आता है।

परन्तु जो तीन मात्राओं वाले ॐ अक्षर के द्वारा परब्रह्म का ध्यान करता है। वह तेजोमय सूर्य लोक में जाता है। वह पापों से उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे साँप केंचुली छोड़ देता है। इसके बाद सामवेद की श्रुतियों द्वारा वह ऊपर ब्रह्मलोक पहुँचाया जाता है। वहाँ वह जीव समुदाय से श्रेष्ठ परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। इस विषय में निम्नांकित दो श्लोक हैं—

ॐ की तीन मात्राएँ अ, उ, म एक दूसरों से संयुक्त रहकर प्रयुक्त की गयी हों अथवा अलग-अलग एक ध्येय के चिन्तन में इनका प्रयोग किया गया हो। दोनों ही प्रकार से वे मृत्यु युक्त हैं। बाहर, भीतर और बीच की क्रियाओं में भली-भाँति इन मात्राओं का प्रयोग किए जाने पर उस ब्रह्म को जानने वाला ज्ञानी विचलित नहीं होता।

एक मात्रा के ॐ की उपासना करने वाला उपासक ऋचाओं द्वारा मृत्यु लोक में पहुँचाया जाता है। दो मात्राओं से युक्त ॐ की उपासना करने वाला उपासक यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा चन्द्र लोक तक पहुँचाया जाता है। तीन मात्राओं से युक्त ॐ की उपासना करने वाला उपासक सामवेद की श्रुतियों द्वारा उस ब्रह्म लोक में पहुँचाया जाता है, जिसे केवल ज्ञानी लोग जानते हैं। विवेकी साधक केवल ॐ की उपासना से ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है। वह ब्रह्म परम शान्त, जन्म, जरा और मृत्यु से रहित सर्वश्रेष्ठ है।

छठा प्रश्न

इसके बाद अन्त में ऋषि सुकेशा ने पिप्पलाद ऋषि से पूछा—भगवन्, कोसल देश के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर यह प्रश्न पूछा कि—क्या तुम सोलह कलाओं वाले

पुरुष को जानते हो। मैंने उस राजकुमार से ईमानदारी से कह दिया कि मैं नहीं जानता। यदि मैं उस सोलह कलापूर्ण पुरुष को जानता तो उसे अवश्य बतलाता। क्योंकि इतना तो मैं समझता हूँ कि जो आदमी झूठ बोलता है वह समूल नष्ट हो जाता है। इसलिए मैं झूठ बोलने का सामर्थ्य नहीं रखता। मेरी यह बात सुनकर वह राजकुमार रथ पर बैठ कर चुपचाप चला गया। उसी को मैं आप से पूछ रहा हूँ, कि सोलह कलाओं से पूर्ण पुरुष कौन है ? और कहाँ रहता है।

महर्षि पिप्पलाद ने कहा—हे सोम्य, सोलह कलाओं से पूर्ण यह पुरुष यहीं इस शरीर के अन्दर ही रहता है।

महासर्ग के प्रारम्भ में संसार के रचयिता परमात्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना का विचार किया। उसने सोचा कि ऐसा कौन-सा तत्त्व डाला जाय जिसके न रहने पर मैं स्वयं भी उसमें रह सकूँ।

यह सोचकर उसने सबसे पहले प्राण कीं रचना की, प्राण के बाद श्रद्धा को उत्पन्न किया। उसके बाद क्रम से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन पाँच तत्त्वों को उत्पन्न किया। फिर मन और इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर अन्न, से वीर्य, तथा विविध प्रकार के मंत्र, कर्म और विभिन्न लोकों की रचना हुई और उन लोकों में नाम की रचना हुई।

जिस प्रकार नदियाँ समुद्र को लक्ष्य बनाकर समुद्र की ओर बहती हुई उसमें मिल जाती हैं और मिलने के बाद उनका नाम रूप मिट कर समुद्र ही कहलाने लग जाता है, उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त परमात्मा की सोलह कलाएँ जिनका आधार भी परमपुरुष है प्रलयकाल में उसे पाकर उसी में विलीन हो जाती

हैं। तब वही कलाएँ केवल 'पुरुष' इस एक ही नाम से पुकारी जाने लगती है। वही यह कला रहित परमात्मा है, जिसके विषय में अगला श्लोक है—

रथ के पहिये की नाभी के आधार पर जैसे आरे स्थित रहते हैं, उसी प्रकार परमात्मा में सभी कलाएँ स्थित रहती हैं। उस जानने योग्य सबके आधारभूत परमात्मा का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए जिससे हे शिष्यो, तुम्हें मृत्यु का दुःख न प्राप्त हो।

महर्षि पिप्पलाद ने उनसे कहा कि पर ब्रह्म को मैं इतना ही जानता हूँ। इससे बढ़कर श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है। नहीं है।

तब उन छहों ऋषियों ने मिलकर महर्षि पिप्पलाद की पूजा की और कहा कि—आप हमारे पिता हैं, आपने हमें अविद्या से मुक्त कर दिया है। हे परम ऋषि, आपको नमस्कार है। नमस्कार है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति
(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

५

मुण्डकोपनिषद्

अथर्ववेद की शौनक शाखा की उपनिषद् 'मुण्डक' है। इसमें ३ मुण्डक हैं और प्रत्येक मुण्डक में दो खण्ड है। इसमें ब्रह्म निरूपण और सृष्टिवाद ही मुख्य विषय है।

शान्ति पाठ

हे देवगण, हम अपने कानों से कल्याणमय वचन सुनें। हमारा जीवन यज्ञ-परायण हो। हमारी आँखें सदैव शुभ दर्शन करती रहें। हमारा शरीर हमारे शरीर का एक-एक अंग सुपुष्ट हो। हमारी आयु भोग-विलास और प्रमाद में न बीते। यशस्वी इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, विघ्नविनाशक गरुड़ और बुद्धि के स्वामी बृहस्पति आदि भगवान् की ये दिव्य विभूतियाँ देवता सदा हमारे कल्याण का पोषण करें। तीन प्रकार के ताप हमें पीड़ित न कर सकें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

सर्व शक्तिमान् परब्रह्म परमात्मा से सर्वप्रथम चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनसे देवता, महर्षि और मरीचि आदि प्रजापति

पैदा हुए। साथ ही ब्रह्मा ने सभी लोकों की रचना कर उन सबकी रक्षा के लिए विधान और नियम बनाए। उनके सबसे बड़े पुत्र महर्षि अथर्वा थे। उन्हें ही ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। जिससे परब्रह्म और अपरब्रह्म दोनों का ज्ञान हो उसे ब्रह्मविद्या कहते हैं। यही सम्पूर्ण विद्याओं का आश्रय है।

ब्रह्मा से प्राप्त ब्रह्मविद्या को अथर्वा ने अंगी ऋषि को बतलायी। अंगी ने भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न सत्यवह नाव के ऋषि को बतायी भरद्वाज ने पर और अपरब्रह्म का ज्ञान कराने वाली ब्रह्मविद्या का उपदेश अंगिरा ऋषि को दिया।

प्राचीन काल में एक बहुत बड़े विश्वविद्यालय के मुख्य अधिष्ठाता शौनक नाम के ऋषि थे। पुराणों में लिखा है, कि उनके ऋषिकुल में अट्ठसी हजार ऋषि रहते थे। वे शौनक ऋषि ब्रह्म विद्या जानने के लिए, जिज्ञासु के वेष में हाथ में समिधा लिए हुए अंगिरा ऋषि के पास पहुँचे। विनय पूर्वक उनसे बोले— भगवन् जिसे जान लेने के बाद देखने, सुनने और अनुमान करने में आने वाली सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। वह परम तत्त्व क्या है? वह कैसे जाना जाता है। कृपया बताइए?

महर्षि अंगिरा बोले—प्रिय शौनक, ब्रह्मज्ञानी महर्षियों का कहना है, कि मनुष्य के लिए जानने योग्य परा और अपरा ये दो विद्यायें हैं।

उन दोनों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये शास्त्र अपराविद्या के अन्तर्गत हैं। और जिससे अक्षर, अविनाशी, परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान होता है वह पराविद्या है।

जो न जाना जा सकता है और न जिसको ग्रहण किया जा सकता है। जिसका न कोई गोत्र है, न रंग है, न रूप है, न आँख, कान आदि इन्द्रियाँ ही उसमें हैं। ऐसा वह नित्य, अविनाशी, सर्वव्याप्त, सूक्ष्म परब्रह्म है। उस समस्त प्राणियों के परम कारण को ज्ञानी लोग सर्वत्र देखते हैं।

जैसे मकड़ी जाले को बनाती है और उसे निगल भी जाती है तथा जिस प्रकार पृथिवी में अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जैसे जीवित मनुष्य से रोयें और बाल पैदा होते हैं, उसी प्रकार अविनाशी परब्रह्म से यह सारा संसार पैदा होता है।

विज्ञानमय तप से परब्रह्म वृद्धि को प्राप्त होता है। उससे अन्न पैदा होता है, अन्न से क्रमशः प्राण, मन, सत्य, समस्तलोक, कर्म तथा कर्मों से अवश्यंभावी सुख-दुःख रूप फल उत्पन्न होता है।

जो सर्वज्ञ है, सर्वविद् है, जिसका ज्ञानमय तप है, उसी परमेश्वर से वह ब्रह्म रूप विराट् जगत् तथा नाम, रूप और अन्न आदि उत्पन्न होते हैं।

दूसरा खण्ड

यह निर्विवाद सत्य है, कि बुद्धिमान ऋषियों ने जिन कर्मों को वेद मंत्रों में देखा था वे तीन वेदों में अनेक प्रकार से व्याप्त हैं। हे सत्य को चाहने वाले मनुष्यों, तुम लोग उनका नियम पूर्वक अनुष्ठान करो। इस मनुष्य शरीर में तुम्हारे लिए यही शुभ कर्म की फल-प्राप्ति का मार्ग है।

जिस समय हविष्य को देवताओं तक पहुँचाने वाली प्रदीप्त अग्नि की लपटें लहकने लगती हैं, उस समय अग्नि में आहुति नहीं डालनी चाहिए। अग्नि को अच्छी तरह प्रज्वलित करके ही होम करना चाहिए।

प्रतिदिन हवन करने वाला मनुष्य यदि अमावस और पूर्णिमा के दिन किए जाने वाले यज्ञों (दर्श, पौर्णमास्य) से रहित है। या चातुर्मास्य (चार महीने में पूरा होने वाला) यज्ञ अथवा शरद् और वसन्त ऋतुओं में होने वाले इष्टि रूप आग्रयण यज्ञ नहीं करता तथा उसकी अतिथि शाला में अतिथियों का उचित सत्कार नहीं किया जाता, भोजन के समय बलिवैश्वदेव कर्म नहीं किया जाता तो उस अग्निहोत्र करने वाले मनुष्य को वह अंगहीन सातों लोकों से रहित बना देता है।

काली, कराली (जिसमें आग लग जाने का डर रहता है) मनोजवा (जो मन के समान चंचल) सुलोहिता (सुन्दर लाली लिए हुए) सुधुम्रवर्णा (सुन्दर धुएँ को लिए हुए) स्फुलिंगनी (चिनगारियों वाली) विश्वरुची (सब ओर से प्रकाशित) ये सात प्रकार की आग की लपटें मानो यज्ञ कुंड की अग्नि की हविग्रहण करने वाली लपलपाती हुई सात जिह्वाएँ हैं।

उपर्युक्त सात प्रकार की लपटों से युक्त प्रज्वलित अग्नि में जो कोई नित्य प्रति हवन करता है उसे मरते समय ये लपटें सूर्य की किरणें बनकर स्वर्ग पहुँचा देती है।

वे प्रज्वलित आहुतियाँ सूर्य की किरणों के रूप में बदलकर मरते हुए उस अग्निहोत्री साधक से कहती हैं, कि आओ, आओ यह तुम्हारे शुभ कर्मो का फलस्वरूप स्वर्ग लोक है। ऐसी प्रिय वाणी से उसका सत्कार करती हुई किरण उसे सूर्य की किरणों के मार्ग से ले जाकर स्वर्ग में पहुँचा देती हैं।

जिनमें उपासना रहित समान कर्मों का वर्णन है, ऐसी ये यज्ञरूप आठारह नौकाएँ हैं। जो दृढ़ या स्थिर नहीं हैं। इनके द्वारा संसार-सागर पार करना तो दूर रहा इस लोक में वर्तमान दुःख-

रूप छोटी-सी नदी पार कर स्वर्ग तक पहुँचना असंभव है। इस रहस्य को न समझ कर जो अज्ञानी इन सकाम कर्मों को ही कल्याण-मार्ग समझ कर इनकी साधना करते हैं, उन्हें निःसन्देह बारंबार वृद्धावस्था और मृत्यु के दुःख भोगने पड़ते हैं।

जैसे अन्धे आदमी को मार्ग दिखाने वाला अन्धा गड्ढे में गिरा देता है, वैसे ही अपने आप बुद्धिमान, विवेकी और पंडित समझने वाले मूर्ख लोग अविद्या के भीतर स्थित होकर बार बार चोटें सहते हुए भटकते ही फिरते हैं।

अविद्या में डूबे हुए ऐसे अज्ञानी मनुष्य समझते हैं कि हमने अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया है। सांसारिक भोगों में उनकी अत्यन्त आसक्ति होने से वे केवल भौतिक उन्नति ही सोचा करते हैं, उन्हें इसका पता ही नहीं और न यह सोचते हैं कि परमानन्द के पार कोई परमात्मा भी है और मनुष्य उसे प्राप्त करता है। इसलिए सदैव दुःखी रहते हैं। पुण्यकर्मों के फल क्षीण हो जाने पर पुनः स्वर्ग से मृत्यु लोक में आ जाते हैं।

इष्ट (यज्ञ, दान आदि) और पूर्त (कुवां खुदाना, बगीचा लगाना) कर्मों को ही श्रेष्ठ समझने वाले महामूर्ख लोग वास्तविक श्रेय को नहीं पहचान पाते। वे पुण्यकर्मों के क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से इस मृत्यु लोक में अथवा निकृष्ट योनि में प्रवेश करते हैं।

लेकिन जो तपोवनों में रहकर शान्ति पूर्वक तप करते हैं, केवल भिक्षा के लिए ही पर्यटन करते हैं। संयम, श्रद्धा और तप का सेवन करते हैं वे विद्वान् रजोगुण रहित सूर्य के मार्ग से वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ पर जन्म-मृत्यु से रहित परमपुरुष, अविनाशी ब्रह्म रहता है।

उपर्युक्त बताए गए सकाम कामों के फलस्वरूप इस लोक और परलोक के सभी सुखों को भली-भाँति समझकर, उनकी क्षण भंगुरता और दु:खपरता को जानकर सब प्रकार के भोगों से मुख मोड़ना चाहिये। यह निश्चय समझ लो कि किये जाने वाले सकाम कर्मों से स्वत: सिद्ध नित्य परमेश्वर नहीं मिल सकता। उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हाथ में समिधा लेकर वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास ही विनम्रता पूर्वक जाना चाहिए।

उस वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ गुरु को भी चाहिए कि शान्त, सुस्थिर और विरक्त शरणागत शिष्य को ब्रह्मविद्या का तत्त्व भली-भाँति समझाकर ऐसा उपदेश दें, जिससे वह अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर सके।

द्वितीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

महर्षि अंगिरा कहते हैं—हे प्रिय शौनक, मैंने तुम्हें पहले परब्रह्म का स्वरूप बतलाते हुए जो रहस्य बतलाया था, वह सर्वथा सत्य है। जैसे प्रज्वलित अग्नि से उसी के समान रूप वाली हजारों चिनगारियाँ विविध प्रकार से प्रकट होती हैं उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं।

वह दिव्य पुरुष परमात्मा नि:सन्देह निराकार है और समस्त ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर व्याप्त है। वह जन्म-मरण के विकारों से रहित सर्वथा विशुद्ध है, क्योंकि न उसके प्राण हैं, न इन्द्रियाँ हैं और न मन ही। इसलिए अविनाशी जीवात्मा से श्रेष्ठ है।

इसी परमात्मा से प्राण उत्पन्न होता है। तथा मन समस्त इन्द्रियों आकाश, वायु, तेज और सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करने वाली पृथ्वी ये सब उत्पन्न होते हैं।

समस्त दृश्यमान जगत् परमात्मा का विराट् रूप है। उसका मस्तक द्युलोक है, सूर्य और चन्द्रमा दो नेत्र हैं। समस्त दिशाएँ कान हैं। अनेक छन्दों और ऋषिओं के रूप में फैलते हुए चारों वेद उस विराट् रूप की वाणी हैं। वायु प्राण है। सम्पूर्ण चराचर जगत् हृदय है। पृथ्वी मानों पैर है। यह परमात्मा समस्त प्राणियों के परमेश्वर हैं।

सर्वप्रथम परब्रह्म से उसकी अचिन्त्य शक्ति का एक अंश अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ। जिसका ईंधन सूर्य है। अग्नि से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। चन्द्रमा से मेघ उत्पन्न हुए। मेघों के बरसने से पृथ्वी पर अनेक औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं। उन औषधियों को खाने से उत्पन्न वीर्य को जब पुरुष अपनी सजातीय स्त्री में सिंचन करता है, तब उनसे प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं।

उस परमत्मा से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ सामवेद की श्रुतियाँ, यजुर्वेद के मंत्र तथा दीक्षा, यज्ञ क्रतु और दक्षिणाएँ तथा संवत्सर रूप, यजमान सबलोक उत्पन्न हुए हैं।' जहाँ चन्द्रमा प्रकाश फैलाता है, वहीं सूर्य प्रकाश करता है।

उसी परमात्मा से अनेक देवता उत्पन्न हुए हैं। तथा साध्यगण, मनुष्य, पशु, पक्षी; प्राण, अपान, वायु, धान, जौ आदि अन्न, तप, श्रद्धा, सत्य और ब्रह्मचर्य एवं यज्ञ आदि अनुष्ठान की विधि भी उसी से उत्पन्न है।

उसी परमात्मा से प्राण उत्पन्न हुए हैं, अग्नि की काली कराली आदि सात लपटें, विषय रूपी सात समिधाएँ, सात प्रकार के हवन, सात लोक, इन्द्रियों के सात द्वार भी उसी से उत्पन्न हैं, जिनमें प्राण विचरते हैं। हृदय रूप गुफा में शयन करने वाले ये सात-सात के समुदाय सभी प्राणियों में स्थापित किए हुए हैं।

इसी से समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं, इसी से अनेक रूपों वाली नदियाँ निकलकर बहती हैं। इसी से सम्पूर्ण औषधियाँ और रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिनसे परिपुष्ट हुए शरीरों में यह सबका अन्तरात्मा ब्रह्म सब प्राणियों की आत्मा के साथ उनके हृदय में स्थित है।

तप, कर्म और परम अमृत रूप ब्रह्म यह विश्व सब कुछ परमात्मा है। हे सोम्य, इस गुफा रूप हृदय में स्थित अन्तर्यामी ब्रह्म को जो जानता है, वह इस मनुष्य शरीर ही में अज्ञान से उत्पन्न ग्रन्थि को खोल डालता है।

द्वितीय खण्ड

सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी परमात्मा परम प्रकाशवान् है। समस्त प्राणियों के अत्यन्त समीप उन्हीं के हृदय रूप गुहा में छिपे रहने के कारण वह 'गुहाचर' नाम से प्रसिद्ध है। जितने भी हिलने डुलने वाले, साँस लेने वाले, आँख खोलने और मूँदने वाले प्राणी हैं, उन सबका समुदाय परमात्मा में स्थित है। सबके आश्रय ये परमात्मा ही हैं। तुम इन्हें जानो। ये सत् और असत्, कार्य और कारण, प्रकट सब कुछ हैं। सबके द्वारा वरण करने योग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ हैं और सभी प्राणियों की बुद्धि द्वारा अज्ञेय हैं।

जो परमात्मा प्रकाश स्वरूप है, जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, जिसमें समस्त लोक और उन लोकों के निवासी समस्त प्राणी स्थित हैं, वही परम अक्षर ब्रह्म है। वही सब को जीवन देने वाला प्राण है, वही सम्पूर्ण जगत् के इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप में प्रकट है। वही यह परम अविनाशी अमृत तत्त्व है। प्रिय शौनक, उस बेधने योग्य लक्ष्य को तू बेध।

उपनिषद् में वर्णित प्रणव स्वरूप महान् अस्त्र धनुष को लेकर उस पर उपासना से तेज किया गया बाण चढ़ाकर फिर भाव-प्रधान चित्त द्वारा उस बाण को खींचकर, हे सोम्य, उस उस अक्षर-ब्रह्म को लक्ष्य मानकर उसका बेधन करना चाहिए।

यहाँ पर ॐ ही धनुष है, आत्मा बाण है, परमात्मा उसका लक्ष्य है, यह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा बेधे जाने योग्य है। अतः उसे बेधकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिए।

जिस परमात्मा में स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष उनके बीच का आकाश तथा समस्त प्राणों के सहित मन गुँथा हुआ है, उसी एक सब के आत्मा रूप परमात्मा को जानो। दूसरी बातों को सर्वथा छोड़ दो। यही अमृत का सेतु है।

रथ की नाभी में जुड़े हुए आरों के समान जिसमें समस्त देह-व्यापिनी नाड़ियाँ स्थित हैं। उसी हृदय में वह अनेक प्रकार से उत्पन्न होने वाला परमात्मा मध्यभाग में रहता है। इस सर्वात्मा परमात्मा का ध्यान ॐ इस नाम से करो। अज्ञान अन्धकार से परे भवसागर के अन्तिम तट रूप परमात्मा की प्राप्ति के लिए तुम लोगों का कल्याण हो।

उस परमात्म-तत्व को जान लेने से जीवात्मा के हृदय की गाँठ खुल जाती है सम्पूर्ण संकट कट जाते हैं, और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

वह निर्मल, अवयव रहित ब्रह्म प्रकाशमय परमधाम में रहता है। वह सर्वथा विशुद्ध है। समस्त ज्योतियों की ज्योति है। उसे आत्मज्ञानी ही समझते हैं।

वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्र और तारागण ही और न बिजलियाँ कौंधती हैं। फिर इस अग्नि के लिए तो कहना ही क्या है। क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर ही सब प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

यह अमृत स्वरूप ब्रह्म ही सामने है, यही पीछे है, यही दायें और बायें है। यह नीचे और ऊपर है। यह जो सम्पूर्ण संसार है वह सब सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म का ही रूप है।

तृतीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

मनुष्य का यह शरीर मानो एक वृक्ष है। ईश्वर और जीव—ये सदा साथ रहने वाले दो मित्र पक्षी हैं। ये दोनों इस शरीर रूप वृक्ष में साथ-साथ हृदय रूप घोंसले में निवास करते हैं। इनमें से एक पक्षी जीवात्मा प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त सुख दुखों को अनुराग, द्वेष्य भाव से भोगता है, और दूसरा पक्षी परमात्मा उनके फलों से कोई सम्बन्ध न रखकर केवल देखता रहता है।

इस शरीर रूप वृक्ष पर रहने वाली पक्षी जीवात्मा शरीर के मोहजाल में फँसा रहता है। असमर्थता और दीनता का अनुभव करता है। मोहित होकर शोक करता है, जब कभी भगवान् की कृपा से भक्तों द्वारा सेवित परमात्मा और उनकी चमत्कारी महिमा को जो जगत् में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट हो रही है—प्रत्यक्ष कर लेता है तब वह उसी समय शोकरहित हो जाता है।

जब वह जीवात्मा सबके शासक ब्रह्म के भी उत्पाद का सम्पूर्ण जगत् के रचयिता, दिव्य प्रकाश स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार लेता है, उस समय पुण्य और पाप दोनों को भली-भाँति दूर कर निर्मल हुआ वह ज्ञानी सर्वोत्तम समता को प्राप्त कर लेता है।

यह परमात्मा ही प्राण है जो सभी जीवों के द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इसे जानने वाले ज्ञानी अभिमानी और बकवादी नहीं हुआ करते बल्कि वे क्रियावान् सब की आत्मा बने हुए भगवान् में क्रीड़ा करते रहते है। और सबका आत्मा अन्तर्यामी परमात्मा में ही रमण करता है। वे ज्ञानी ब्रह्मवेत्ताओं में भी श्रेष्ठ हैं।

शरीर के अन्दर हृदय में स्थित प्रकाश स्वरूप, परम विशुद्ध परमात्मा निश्चय ही सत्य भाषण, तप और ब्रह्मचर्यपूर्वक यथार्थ ज्ञान से ही प्राप्त होता है। उसे योगयुक्त, निर्विकार साधक ही देख पाते हैं।

सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। क्योंकि वह देवयान नाम का मार्ग सत्य से परिपूर्ण है, जिससे पूर्ण तृप्त ऋषि लोग वहाँ गमन करते हैं। जहाँ सत्य-स्वरूप परमात्मा का उत्कृष्ट धाम है।

परब्रह्म महान्, दिव्य और अचिन्त्य स्वरूप है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अत्यन्त सूक्ष्म रूप में प्रकाशित होता है। वह दूर से भी दूर है, परन्तु इस शरीर में रहकर वह निकट भी है। वह देखने वालों के भीतर उनकी हृदय रूपी गुफा में स्थित है।

वह न नेत्रों से, न वाणी से और न अन्य दूसरी इन्द्रियों से ग्रहण किया जा सकता है। तप से अथवा कर्म से भी वह नहीं ग्रहण किया जा सकता है। उस अवयव रहित परमात्मा को तो

विशुद्ध अन्तःकरणवाला साधक अपने विशुद्ध अन्तःकरण से ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है।

जिसमें पाँच प्रकार के प्राण समाये हुए हैं, उस शरीर में यह सूक्ष्म आत्मा मन से जाना जा सकता है। प्राणियों का यह सम्पूर्ण चित्र प्राणों से व्याप्त है। जिस अन्तःकरण के विशुद्ध होने पर यह आत्मा सब प्रकार से वैभव को प्राप्त होता है।

इस प्रकार का विशुद्ध अन्तःकरणवाला मनुष्य जिस-जिस लोक को मन से चिन्तन करता है, तथा जिन भोगों की कामना करता है, उन उन लोकों को जीत लेता है और उन इच्छित भोगों को भी प्राप्त कर लेता है, इसलिए ऐश्वर्य की कामना करने वाला मनुष्य शरीर से भिन्न आत्मा को समझने वाले ज्ञानी का सत्कार करे।

द्वितीय खण्ड

वह कामना रहित मनुष्य इस परम विशुद्ध ब्रह्मधाम को जान लेता है, जिसमें सम्पूर्ण जगत् स्थित हुआ प्रतीत होता है। जो कोई भी निष्काम भाव रखने वाले साधक परम पुरुष की उपासना करते हैं, वे बुद्धिमान रजोवीर्यमय जगत् को लाँघ जाते हैं।

भोगों को महत्व देने वाला जो मनुष्य उनकी इच्छा करता है, वह उन इच्छाओं के कारण उन-उन लोकों में उत्पन्न होता है, जहाँ वे आसानी से मिलते हैं। परन्तु पूर्णकाम, विशुद्ध चित्र वाले पुरुष की सम्पूर्ण कामनाएँ यहीं विलीन हो जाया करती हैं।

यह आत्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से मिलता है। यह जिसको स्वीकार कर लेता है उसी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि यह आत्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।

यह आत्मा बलहीन मनुष्य को भी नहीं मिलता है तथा प्रमाद से, लक्षण रहित तप से भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। जो बुद्धिमान साधक इन उपायों द्वारा प्रयत्न करता है, उसकी आत्मा ब्रह्मधाम में पहुँच जाती है।

अनासक्त और शुद्धान्तःकरण ऋषिगण इस परमात्मा का साक्षात्कार कर ज्ञान से तृप्त एवं परम शान्त हो जाते हैं। अपने आपको परमात्मा में मिला देने वाले ये ज्ञानी परमात्मा को चारों ओर से प्राप्त कर सर्वरूप परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

जिन्होंने उपनिषद् शास्त्र के विज्ञान द्वारा उसके अर्थभूत परमात्मा को अच्छी तरह जान लिया है, कर्मफल, आसक्ति और त्याग रूप भोग से जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है वे योगी मरने पर उस परमधाम में जाते हैं जहाँ जाकर लोग जीवन-मरण से छूट जाते हैं।

पन्द्रह कलाएँ और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने अपने अधिष्ठातृ देवता में जाकर स्थित हो जाते हैं। फिर समस्त कर्म और विज्ञान से पूर्ण जीवात्मा सबके साथ परमात्मा से मिलकर एक ही बन जाते हैं।

जैसे बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूपको त्याग कर समुद्र में समा जाती हैं, वैसे ही विवेकी लोग नाम-रूपका मोह त्याग कर उत्तम से भी उत्तम परम दिव्य स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

जो कोई भी परब्रह्म परमात्मा को जान लेता है, वह ब्रह्म ही बन जाता है। उसके कुल में जो ब्रह्म को न जानने वाला नहीं होता, वह भी शोक से पार हो जाता है। पापों के समुदाय से पार हो जाता है। हृदय की गांठें छूट जाती हैं और वह अमर हो जाता है।

ऐसे ब्रह्म के विषय में यह बात ऋचा द्वारा कही गयी है—

जो निष्काम भाव से कर्म करते हैं, वेदज्ञ, तथा ब्रह्म के उपासक हैं। और श्रद्धा रखते हुए स्वयं एकर्षि नाम वाले अग्नि में हवन करते हैं। तथा जिन्होंने विधिवत् सर्वश्रेष्ठ व्रत का पालन किया है, उन्हीं को यह ब्रह्मविद्या बतलानी चाहिए।

इसी सत्य तत्व को अंगिरा ऋषि ने कहा था कि—जिसने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके ब्रह्मतेज नहीं पाया है, वह इतो भ्रष्टस्त तो भ्रष्टः हो जाता है। ऐसे परऋषि जिनसे इसका अध्ययन नहीं हो सकता है। उनपर ऋषियों को नमस्कार है—नमस्कार है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

६

माण्डूक्योपनिषद्

माण्डूक्य उपनिषद् को लोग अथर्ववेदीय मानते हैं। अथर्ववेद के आरण्यक तो मिलते नहीं, एकमात्र उपलब्ध गोपथ ब्राह्मण में इस उपनिषद् का पता नहीं है। संभव है, इसका संबंध ऋग्वेद की माण्डूकेय शाखा से हो। कुछ भी हो परंपरागत लोग इसे अथर्ववेदीय ही मानते आ रहे हैं। इसमें सब मिलाकर १२ मंत्र हैं, जिनमें ओंकार, ब्रह्म आदि के रहस्यों का निरूपण किया गया है।

शान्ति पाठ

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

'ॐ' यह अक्षर अविनाशी परमात्मा है। यह सम्पूर्ण जगत् उसकी निकटतम महिमा का लक्ष्य कराने वाला है। भूत, भविष्य और वर्तमान—यह सबका सब जगत् ॐ ही है। तथा उपर्युक्त तीनों कालों से परे भी जो कुछ है वह सब ॐ ही है।

जो कुछ है वह ब्रह्ममय है। यह भी ब्रह्म है। वह भी ब्रह्म है। यह सर्वात्मा ब्रह्म चार चरणों वाला है।

जाग्रत अवस्था का यह स्थूल जगत् जिसका शरीर है। जिसका ज्ञान इस वाह्य जगत् में फैला हुआ है। भूः भुवः आदि सात लोक जिसके सात अंग हैं। पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तः करण ये उन्नीस विषय जिसके उन्नीस मुख हैं। जो स्थूल जगत् को भोगने वाला, उसका अनुभव करने वाला है, वह विश्व को धारण करने वाला वैश्वानर परमात्मा—पहला चरण है।

स्वप्न की भाँति यह जगत् जिसका स्थान है। जिसका ज्ञान सूक्ष्म जगत् में व्याप्त है। पूर्वोक्त सात अंगों और उन्नीस मुखों वाला, सूक्ष्म जगत् को भोगने वाला, प्रकाश का स्वामी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ उस पूर्ण परब्रह्म का दूसरा चरण है।

जिस अवस्था में सोया हुआ आदमी किसी भी भोग की कामना नहीं करता, कोई भी स्वप्न नहीं देखता—वह सुषुप्ति अवस्था है। यही सुषुप्ति ही जिसका शरीर है, जो एकरूप हो रहा है। जो एक मात्र आनन्द स्वरूप है। प्रकाश ही जिसका मुख है। जो एकमात्र आनन्द का भोक्ता है, वह प्राण ब्रह्म का तीसरा चरण है।

यही सर्वेश्वर है, यही सर्वज्ञ है, यही अन्तर्यामी है, यही संसार का उत्पादक है। और समस्त सृष्टि का रचयिता, पोषक और सहायक भी यही है।

जिसका ज्ञान न बाहर की ओर है, न भीतर की ओर है, और न दोनों ही ओर है। जो न ज्ञान स्वरूप है, जो न जानने वाला है और न नहीं जानने वाला है। जो न दिखायी पड़ता है और न व्यवहार में लाया जा सकता है, ग्रहण किया जा सकता है तथा जिसका चिन्तन नहीं किया जा सकता, वर्णन नहीं किया जा सकता

और न जिसका कोई लक्षण ही है। जिसमें सभी प्रपंचों का अभाव है। परमात्मा की सत्ता की प्रतीति ही जिसका प्रमाण है—ऐसा सर्वथा शान्त, कल्याणमय, अद्वितीय तत्व पूर्ण ब्रह्म का चौथा चरण है।

वह चारचरणों वाला परमात्मा यहाँ अक्षर के प्रकाश में अपने नाम से अभिन्न होने के कारण तीन मात्राओं वाला ॐ है। अ, उ और म ये तीन मात्राएं ही उसके तीन चरण हैं और वे तीन चरण ही ॐ की तीन मात्राएँ हैं। जैसे ॐ अपनी मात्राओं से अलग नहीं है, उसी प्रकार परमात्मा अपने चरणों से अलग नहीं है।

परमात्मा के नाम रूप ॐ की पहली मात्रा 'अ' किसी भी अर्थ को बताने वाले जितने भी शब्द हैं, उन सब में व्याप्त है। ऐसा कोई भी शब्द नहीं है जो अकार से रहित हो, समस्त वर्णों में 'अ' ही पहला अक्षर है। यह आदि अक्षर होने के कारण जाग्रत की भाँति स्थूल जगत् रूप शरीर वाला वैश्वानर नामक पहला चरण है। जो आदमी ॐ के इस स्वरूप को जान लेता है, वह निश्चय ही सभी भोगों को प्राप्त कर लेता है और सबका आदि (प्रधान) बन जाता है।

ॐ की दूसरी मात्रा 'उ' अ से उत्कृष्ट होने के कारण अथवा दोनों भाव रखने के कारण स्वप्न की भाँति सूक्ष्म जगत् रूप शरीर वाला तेजस् नामक दूसरा पाद है। जो इसे जान लेता है, वह अवश्य ही ज्ञान की परम्परा को उन्नत बनाता है। और समान भाव वाला हो जाता है। उसके कुल में वेद रूप ब्रह्म को न जानने वाला अज्ञानी कभी पैदा ही नहीं होता।

ॐ की तीसरी मात्रा 'म' है। यह अन्तिम मात्रा है। 'अ' और 'उ' से पीछे उच्चरित होती है। इसलिए आगे की दोनों

मात्राओं का माप इसमें आ जाता है। तात्पर्य यह कि 'म' अकेले ही 'अ' और 'उ' को जानने वाला है। तथा इन दोनों मात्राओं का अन्त में विलीन करने वाला भी है। जैसे कारण जगत् से ही स्थूल और सूक्ष्म जगत् की उत्पत्ति होती है और उसी में उनका लय भी होता है। इसी प्रकार 'म' की और कारण जगत् के अधिष्ठाता प्राज्ञ नामक तीसरे चरण की समता होने के कारण 'म' पूर्ण ब्रह्म का तीसरा चरण है। जो व्यक्ति 'म' और प्राज्ञ रूप परमात्मा की एकता को जान लेता है, वह सर्वत्र एक परब्रह्म परमात्मा को ही देखने वाला बन जाता है।

इसी प्रकार निराकार प्रणव (ॐ) जो मात्रा रहित है, व्यवहार में नहीं आता' प्रपंच से परे है, वह अद्वितीय कल्याणमय ब्रह्म का चौथा चरण है। वह आत्मा अवश्य ही आत्मा के द्वारा पूर्ण रूप से परात्पर परब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

७

ऐतरेयोपनिषद्

ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय हैं। अन्तिम भाग ऐतरेयारण्यक कहलाता है। ऐतरेयारण्यक पाँच भागों में विभक्त हैं। प्रत्येक भाग आरण्यक कहा जाता है। द्वितीय आरण्यक के ४ और ६ अध्यायों को 'ऐतरेय उपनिषद्' कहा जाता है। इसमें सृष्टिवाद, जीववाद और ब्रह्मवाद के क्रमशः विषय हैं।

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

शान्ति पाठ

हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा, मेरी वाणी मन में स्थित हो जाए। मेरा मन वाणी में स्थित हो जाए। हे प्रकाशमय ब्रह्म, मेरे लिए तू प्रकट होजा, हे मेरे मन और वाणी, तुम दोने मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लाने वाले बनो, मेरा सुना हुआ ज्ञान मुझे न छोड़े, स्वाध्याय करता हुआ मैं दिन और रात को एक कर दूँ। मैं श्रेष्ठ शब्दों को ही बोलूंगा। मैं सत्यवचन ही बोला करूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे। वह ब्रह्म मेरे आचार्य की रक्षा करे। रक्षा करे मेरी और रक्षा करे मेरे आचार्य की।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(भगवान् शान्ति स्वरूप हैं, शान्ति स्वरूप हैं, शान्ति स्वरूप हैं)

प्रकट होने से पहले यह संसार एकमात्र परमात्मा ही था। उसके अतिरिक्त और दूसरा कोई भी चेष्टा करने वाला नहीं था। 'मैं लोकों की रचना करूँ'—यह संकल्प उस ब्रह्म ने अवश्य ही किया था।

उसने द्युलोक तथा उसके ऊपर के लोकों की, अन्तरिक्ष तथा मर्त्यलोक और पाताल आदि सभी लोकों की रचना की। स्वर्ग-लोक तथा उससे ऊपर के लोक तथा उनका आधारभूत द्युलोक—स्वर्गलोक ये सब 'अम्भ' के नाम से कहे गए हैं। अन्तरिक्ष लोक 'मरीचि' है। यह पृथिवी मृत्युलोक कही गयी है। और पृथ्वी से नीचे के लोक पाताल आदि सब जल (आपः) कहे गए हैं।

उपर्युक्त लोकों की रचना करने के बाद, परमात्मा ने फिर विचार किया कि सभी लोकों की रचना तो हो गयी अब इनकी रक्षा करने के लिए लोकपालों की भी रचना करनी चाहिए। यह सोचकर उसने जल आदि सूक्ष्म तत्त्वों से हिरण्यमय पुरुष को निकालकर उसको सभी अंगों से परिपूर्ण बनाकर मूर्तिमान बनाया।

इसके बाद परमात्मा ने संकल्प रूप तप किया। तप के फल-स्वरूप उस हिरण्यगर्भ पुरुष के शरीर में अंडे की तरह फूटकर मुख छिद्र उत्पन्न हुआ मुख से वाणी पैदा हुई। वाणी से उसका अधि-ष्ठातृ देवता अग्नि पैदा हुआ। फिर नाक के दोनों छेद बने, उनसे प्राण-वायु प्रकट हुआ। प्राणों से वायु देवता उत्पन्न हुए। फिर दोनों आँखों के छेद पैदा हुए। उनसे नेत्र इन्द्रिय और नेत्र इन्द्रिय से उसका देवता सूर्य उत्पन्न हुआ। इसके बाद कानों

के दोनों छेद निकले। उनसे श्रोत्र इन्द्रिय और श्रोत्र इन्द्रिय से उसके देवता दिशाएँ उत्पन्न हुईं। इसके बाद त्वचा (चाम) पैदा हुई। त्वचा से रोएँ पैदा हुए। रोमों से औषधियाँ और वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं, फिर हृदय प्रकट हुआ। हृदय से मन और मन से उसका अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। इसके बाद नाभि प्रकट हुई। नाभि से अपान वायु और अपान वायु से गुदा इन्द्रिय का अधिष्ठात् देव मृत्यु उत्पन्न हुआ। इसके बाद लिंग उत्पन्न हुआ। लिंग से वीर्य और वीर्य से जल उत्पन्न हुआ।

द्वितीय खण्ड

परमात्मा द्वारा रचे गए उपर्युक्त सभी इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता इस संसार रूप महासागर में आ पड़े। तब परमात्मा ने उन सभी देवताओं को भूख-प्यास के संयुक्त कर दिया। भूखे-प्यासे वे अग्नि आदि देवता अपने रचयिता परमात्मा से बोले प्रभो, हमारे लिए एक ऐसे स्थान की व्यवस्था कर दीजिए जहाँ रहकर हम लोग अपना अपना आहार ग्रहण कर सकें।

देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर परमात्मा ने उनके रहने के लिए गाय का एक शरीर बनाकर उन्हें दिखाया। उसे देखकर उन्होंने कहा—भगवन्, यह हम सब के लिए पर्याप्त न होगी। इससे हम लोगों का काम नहीं चलेगा। अतः कोई दूसरी रचना करें। तब परमात्मा ने उन्हें घोड़ा बनाकर दिखाया। उसे भी उन देवताओं ने अपर्याप्त बताया।

तब भगवान् ने उनके लिए मनुष्य का शरीर बनाकर उन्हें दिखाया। उसे देखते ही सभी देवता बड़े प्रसन्न हुए। और बोले-हमारे लिए यह बहुत ही सुन्दर और उपयुक्त स्थान है। इसमें हम

सुख पूर्वक रहते हुए अपनी सब आवश्यकताएँ पूरी कर सकेंगे। तब परमात्मा ने कहा, ठीक है, तुम लोग अपने-अपने योग्य स्थान ढूँढ़कर इसमें प्रवेश कर जाओ।

भगवान् की आज्ञा पाते ही अग्नि ने वाक् इन्द्रिय का रूप धरकर उस मनुष्य शरीर में प्रवेश किया। उन्होंने जीभ को अपना आश्रय बना लिया। यहीं वरुण देवता भी रसना-इन्द्रिय बनकर प्रविष्ट हो गए। अश्विनीकुमार प्राण इन्द्रिय का रूप धरकर नासिका में समा गए। सूर्य नेत्र इन्द्रिय बनकर आँखों में समा गए। दिग्देवता श्रोत्रेन्द्रिय बनकर दोनों कानों में समा गए। औषधि और वनस्पतियों के देवता रोम बनकर त्वचा में समा गए, तथा चन्द्रमा मन का रूप धरकर हृदय में प्रविष्ट हो गया। मृत्यु देवता अपान का रूप धरकर नाभी में समा गए। जल के अधिष्ठातृ देवता वीर्य बनकर लिग में प्रविष्ट हो गए।

तब भूख और प्यास ने भगवान् से निवेदन किया—प्रभो, इन देवताओं की भाँति हमें भी कोई निश्चित स्थान रहने के लिए दे दीजिए। परमात्मा बोले—तुम दोनों के लिए कोई अलदहा स्थान नहीं है। इन देवताओं के स्थानों में मैं तुम्हें साझीदार बनाये देता हूँ। इनके आहार में तुम्हारा हिस्सा रहेगा।

तृतीय खण्ड

इतनी सृष्टि उत्पन्न करने के बाद परमात्मा ने पुनः विचार किया कि ये सब लोक और लोकपाल तो बना दिए गए लेकिन इनके निर्वाह के लिए भोग-पदार्थों की भी व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि इनके साथ पैदा होते ही भूख और प्यास की रचना की गयी हैं। यह सोचकर भगवान् ने अन्न की सृष्टि करने का निश्चय किया।

उन्होंने पांचों सूक्ष्म तत्वों को तपाया—अपने संकल्पद्वारा उनमें हरकत पैदा की। परमात्मा द्वारा संचालित पांचों महाभूतों से उनका एक जो स्थूल रूप पैदा हुआ—वही देवताओं के लिए अन्न—भोगने की वस्तु बनी।

उत्पन्न हुए उस अन्न ने यह सोचकर कि ये सब मुझे ही खाने वाले हैं—मेरा तो विनाश ही कर डालेंगे—छुटकारा पाने के लिए भागना शुरू किया। तब मनुष्य के रूप में उत्पन्न जीवात्मा ने उसे वाणी द्वारा पकड़ना चाहा। लेकिन वाणी उसे पकड़ न सकी। (यदि वाणी उसे पकड़ लेती तो आज मनुष्य केवल अन्न का नाम लेकर तृप्त हो जाया करता। खाने की जरूरत ही नहीं पड़ती)।

तब उस आदमी ने अन्न को घ्राण इन्द्रिय के द्वारा पकड़ने की कोशिश की लेकिन वह नहीं पकड़ा जा सका (नहीं तो आज भी केवल सूंघ लेने मात्र से आदमी की भूख मिट जाती)

तब उसने उसे आँखों से पकड़ना चाहा, लेकिन आँखें उस अन्न को न पकड़ सकीं। (यदि ऐसा हो जाता तो केवल भोज पदार्थों के देखने के ही तृप्ति हो जाया करती)

तब उस पुरुष ने कानों द्वारा उसे पकड़ने की चेष्टा की, किन्तु कान उसे न पकड़ सके (अन्यथा केवल सुन लेने से ही आदमी की भूख मिट जाया करती)

तब उस आदमी ने चमड़ी (खाल) से पकड़ना चाहा लेकिन वह पकड़ा नहीं गया। (नहीं तो केवल अन्न को छू लेने मात्र से ही भूख मिट जाया करती है)।

तब उसने उसे मन से पकड़ना चाहा, परन्तु मनकी न पकड़ सका। (अन्यथा अन्न का चिन्तन करने मात्र से ही सन्तोष हो जाया करता)।

तव उस पुरुष ने उसे लिंगेन्द्रिय द्वारा पकड़ने की चेष्टा की किन्तु वह न पकड़ा जा सका। (अन्यथा अन्न के त्याग से ही भूख मिट जाया करती)

तब उस पुरुष ने अपानवायु द्वारा मुख से शरीर में उसे प्रविष्ट कराने की चेष्टा की, तब वह अन्न को अपने शरीर में ले जा सका। यह अपानवायु ही शरीर के भीतर श्वास प्रश्वास के रूप में जाता है। यही अन्न को भीतर ले जाने वाला है। जो वायु अन्न से जीवन की रक्षा करने वाले के रूप में प्रसिद्ध हैं। यह वही अपान वायु है।

तब परमात्मा ने सोचा कि जो कुछ हुआ ठीक है, लेकिन यह मनुष्य शरीर मेरे बिना कैसे रहेगा। यदि इस जीवात्मा के साथ मेरा निकट सहयोग न रहा तो यह कैसे यहाँ रह सकेगा। लेकिन एक बात यह भी है कि यह आदमी ने मेरे सहयोग के बिना ही बोलना, सुनना, सूंघना, चलना-फिरना, श्वास लेना, भोजन करना, चिन्तन-मनन करना सीख लेना, तो फिर मेरा और मेरी सत्ता का उपयोग ही क्या रह जाएगा। इसलिए मुझे इस मनुष्य शरीर के पैर या मस्तिष्क इन दो मार्गों में से किसी एक मार्ग से इसके शरीर में प्रवेश करना चाहिए।

यह सोचकर उसने इस मनुष्य शरीर की सीमा को चीर कर उस मनुष्य शरीर में प्रवेश किया। वह यह द्वार विदीर्ण किया हुआ द्वार नाम से प्रसिद्ध है। यही द्वार ब्रह्मरन्ध्र कहा जाता है। आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कराने वाला यही है। परमात्मा

की उपलब्धि के तीन स्थान हैं। तीन स्वप्न हैं। पहला तो हृदय-रूपी गुण उनकी उपलब्धि का स्थान है।

दूसरा विशुद्ध आकाश रूप परमधाम है—जिसे गोलोक, ब्रह्मलोक आदि नामों से पुकारा जाता है। तीसरा यह समस्त ब्रह्माण्ड है। तथा इस संसार की जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप अवस्थाएँ हैं, वे ही इसके तीन स्वप्न हैं।

मनुष्य रूप में उत्पन्न हुए उस पुरुष ने भौतिक जगत् की रचना को बड़े आश्चर्य से देखा और मन ही मन कहा—इस विचित्र संसार की रचना करने वाला यहाँ दूसरा कौन है—ऐसा विचार करते ही उसने अन्तर्यामी परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन किया। उस समय वह मन ही मन प्रसन्न होकर कहने लगा—बड़े सौभाग्य की बात है, कि मैंने परब्रह्म परमात्मा को देख लिया है।

उस मनुष्य शरीर में उत्पन्न हुए पुरुष ने परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किया, इसीलिए परमात्मा का नाम 'इदन्द्रः' (इसको मैंने देख लिया है) पड़ गया। यद्यपि प्रत्यक्ष दर्शन कर लेने पर परमात्मा का नाम 'इदन्द्रः' है, लेकिन लोग उन्हें परोक्ष भाव से 'इन्द्र' कहकर पुकारते हैं। क्योंकि देवता लोग मानो परोक्ष भाव से कही गयी बात को पसंद करने वाले होते हैं। 'परोक्षप्रियः हि देवाः'।

द्वितीय अध्याय

यह सांसारी जीव पहले-पहल पुरुष शरीर ही में वीर्य रूप से प्रकट होता है। यह वीर्य शरीर के सम्पूर्ण अंगों से निकलकर उत्पन्न हुआ तेज (सार) है। पिता अपने आधार भूत उस वीर्य रूप तेज को पहले तो अपने शरीर ही में धारण-पोषण करता है।

ब्रह्मचर्य के द्वारा बढ़ाता और पोषण करता है। फिर उसे जब वह स्त्री के गर्भ में स्थापित करता है तब गर्भ रूप से उत्पन्न करता है। माता के शरीर में प्रवेश करना ही इसका पहला जन्म है।

स्त्री के गर्भ में आया हुआ वह वीर्य उस स्त्री के आत्म भाव को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् उस स्त्री के जैसे और अंग होते हैं, उसी प्रकार वह गर्भ भी उसके शरीर का अंग बन जाता है। यही कारण है, कि वह गर्भ उदर में रहता हुआ भी गर्भिणी को भार स्वरूप नहीं प्रतीत होता। वह स्त्री अपने शरीर में आए हुए अपने पति के आत्मा रूप गर्भ को अपने अंगों की भाँति ही भोजन के रस से पुष्ट करती है।

उस गर्भ का पालन-पोषण करने वाली वह स्त्री घर के लोगों द्वारा पालन और पोषण करने योग्य होती है। उस गर्भ को वह स्त्री प्रसत्र काल तक तो अपने शरीर में धारण करती है। फिर जन्म लेते ही पिता जातकर्म आदि संस्कारों से उस कुमार को उन्नतिशील बनाता है। अनेक प्रकार की शिक्षाओं से उसे सब प्रकार से उन्नतिशील बनाता है। मानो वह इन मनुष्यों को बढ़ाने के रूप में अपनी ही उन्नति करता है। क्योंकि इसी प्रकार ये सब लोग विस्तार को प्राप्त हुए हैं। वह इसका दूसरा जन्म है।

पुत्र रूप में उत्पन्न यह पिताही का आत्मा, पिता के शुभ कर्मों के लिए उसका प्रतिनिधि बना दिया जाता है। इसके बाद इस पुत्र का यह पिता रूप दूसरा आत्मा अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए, आयु पूरी होने पर यहाँ से मरकर चला जाता है। यहाँ से जाकर यही पुनः यहीं उत्पन्न होता है। यह इसका तीसरा जन्म है।

यही बात ऋषियों ने भी कही है। गर्भ से बाहर आने से पहले ऋषि वामदेव को यथार्थ ज्ञान हो गया था, इसलिए उन्होंने

माता के उदर में ही कहा था कि—अहो, कितने आनन्द और रहस्य की बात है, कि गर्भ में रहते-रहते मैंने इन अन्तःकरण और इन्द्रियरूप देवताओं के अनेक जन्मों का रहस्य समझ लिया। इसको जानने से पहले मुझे सैकड़ों लोहे के समान दुर्भेद्य और कठोर लोटे के समान शरीर रूप पिंजरों ने अवरुद्ध कर रखा था। उनमें मेरी ऐसी दृढ़ आस्था हो गयी थी कि उन्हें छोड़ना मुश्किल था। अब मैं बाज चिड़िया की भाँति ज्ञान रूप बल के वेग से उन सब को तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ।

इस प्रकार जन्म-जन्मान्तर के तत्व को समझने वाले ऋषि वामदेव इस शरीर के नाश होने पर संसार के ऊपर उठ गए और ऊर्ध्वगति द्वारा उस परमधाम को पहुँचे, जहाँ समस्त कामनाओं को प्राप्त कर अमृत हो गए। अमृत हो गए।

तृतीय अध्याय

हम लोग जिसकी उपासना करते हैं, वह आत्मा कौन है। अथवा जिससे मनुष्य देखता है, सुनता है, सूंघता है, स्पष्ट बोलता है तथा स्वाद युक्त और स्वाद रहित वस्तु के भेद को समझता है वह आत्मा कौन है ?

जो यह हृदय है, यही मन भी है। सम्यक् ज्ञान शक्ति, आज्ञा देने की शक्ति, विभिन्न रूप से जानने की शक्ति, तत्काल जानने की शक्ति, धारण करने की शक्ति, देखने की शक्ति, धैर्य, बुद्धि, मननशक्ति, वेग, स्मरण-शक्ति, संकल्प शक्ति, मनोरथशक्ति, प्राण-शक्ति, कामना शक्ति, स्त्री-संसर्ग-शक्ति आदि की अभिलाषा इस प्रकार ये सबके सब स्वच्छ ज्ञान स्वरूप परमात्मा की ही सत्ता के बोधक हैं।

परमात्मा ही ब्रह्मा हैं, यही इन्द्र हैं, यही प्रजापति हैं, जितने देवता हैं, तथा यह पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज ये पांच तत्व, तथा छोटे-छोटे आपस में मिले हुए बीज रूप प्राणी, और इनसे भिन्न दूसरे भी अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, तथा घोड़े, गौवें, हाथी, मनुष्य सबके सब मिलकर जो कुछ यह जगत् है, जो भी कोई पाँखों वाला और चलने-फिरनेवाला तथा स्थावर प्राणि-समुदाय है, वह सब प्रज्ञान स्वरूप परमात्मा ही में स्थित है। यह समस्त ब्रह्माण्ड प्रज्ञान रूप परमात्मा से ही ज्ञानशक्ति सम्पन्न है। परमात्मा ही इस स्थिति का आधार है। यह प्रज्ञान ही ब्रह्म है।

यह परमात्मा इस लोक से ऊपर उठकर उस स्वर्गलोक में (परमधाम में) सम्पूर्ण दिव्य भोगों से युक्त होकर अमर हो गया। अमर हो गया।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

———

८

तैत्तिरीयोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का अंग है। तैत्तिरीय आरण्यक में दस अध्याय हैं। उनमें से सातवें, आठवें और नवें अध्याय को तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है।

इसमें शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द वल्ली और भृगु वल्ली—ये तीन वल्लियाँ हैं। जिन्हें अध्याय कहा जा सकता है और हर वल्ली में कई अनुवाक् हैं, जिन्हें प्रकरण कह सकते हैं।

शिक्षावल्ली में मनुष्य को अपने जीवन-निर्माण के लिए ऐसी शिक्षाएँ दी गयी हैं, जिनसे वह लोक और परलोक के सर्वोत्तम फल प्राप्त कर ब्रह्मविद्या को ग्रहण करने में समर्थ हो जाता है।

ब्रह्मानन्द वल्ली में यह बताया गया है, कि साधक परमात्मा को प्राप्त किए हुए सिद्ध पुरुष इन्द्रियों द्वारा वाह्य विषयों का सेवन करते हुए भी स्वयं सदा परमात्मा में स्थित रहते हैं। इस वल्ली में परब्रह्म के स्वरूप तथा उसके ज्ञान की महिमा बतायी गयी है।

भृगु वल्ली में उन उपदेशों का वर्णन है, जिन्हें वरुण ने अपने पुत्र भृगु ऋषि को ब्रह्मविद्या का उपदेश कहकर दिया था।

शान्ति पाठ

इसका अर्थ आगे प्रथम अनुवाक में दिया जा रहा है।*

शिक्षा वल्ली

प्रथम अनुवाक्

दिन और प्राण के अधिष्ठाता देवता हमारा कल्याण करें। अर्यमा तथा रात और अपान के अधिष्ठाता देवता वरुण भी हमारे लिए कल्याण प्रद हों। बल और भुजाओं के देवता इन्द्र तथा वाणी और बुद्धि के अधिष्ठाता वृहस्पति दोनों हमारे लिए शान्ति प्रदान करने वाले हों। त्रिविक्रम रूप से विष्णु जो पैरों के अधिष्ठाता देवता हैं, हमारा कल्याण करें। इन सभी देवताओं के आत्म स्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है। हे वायुदेव, तुम्हें नमस्कार है। तुम प्राण रूप से प्रत्यक्ष देवता हो, तुम्हीं ब्रह्म हो। इसलिए मैं तुम्हें ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। तुम ऋत के अधिष्ठाता हो इसलिए तुम्हें ऋत नाम से पुकारूंगा। तुम सत्य के प्रतिष्ठाता हो, इसलिए तुम्हें सत्यनाम से पुकारूंगा। ऐसा सर्वशक्तिमान् परमात्मा मेरी रक्षा करे। मेरे आचार्य की रक्षा करे। रक्षा करे मेरी और मेरे आचार्य की।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

भगवान् शान्ति स्वरूप हैं, शान्ति स्वरूप है, शान्ति स्वरूप हैं।

द्वितीय अनुवाक्

अब हम शिक्षा का वर्णन करेंगे। वर्ण, स्वर, मात्रा, प्रयत्न, वर्णों के उच्चारण की विधि और संधि। इस प्रकार वेद के उच्चारण की शिक्षा का अध्याय कहा गया है।

---

*शान्ति पाठ और प्रथम अनुवाक् की ऋचाएँ में एक ही हैं।

तृतीय अनुवाक

आचार्य और शिष्य हम दोनों का यश एक साथ बढ़े। एक साथ ही हम दोनों का ब्रह्म तेज भी बढ़े। ऐसी शुभ इच्छा प्रकट करने के बाद हम यहाँ से लोकों के विषय में, ज्योतियों के विषय में, पांच स्थानों में संहिता के रहस्य का वर्णन करेंगे। इन सबको महा संहिता कहा जाता है। इनमें से सब से पहली लोक-विषयक संहिता है। पृथ्वी पूर्व वर्ण है, स्वर्ग लोक परवर्ण है। आकाश संधि रूप है। वायु दोनों का संयोजक है। इस प्रकार यह लोक-विषयक संहिता की उपासना-विधि पूरी हुई।

अब ज्योति विषयक संहिता का वर्णन करते हैं। अग्नि पूर्व वर्ण है। आदित्य परवर्ण है। जल इन दोनों की संधि है और बिजली इनको जोड़ने का हेतु है। इस प्रकार ज्योति विषयक संहिता बनी।

अब विद्या विषयक संहिता को हम प्रारंभ करते हैं। गुरु पहला वर्ण है, शिष्य परवर्ण है। विद्या इन दोनों की संधि है, गुरु द्वारा दिया गया उपदेश ही संधि का हेतु है। इस प्रकार विद्या-विषयक संहिता कही गयी।

अब प्रजा विषयक संहिता कहते हैं—माता पूर्व वर्ण है, पिता परवर्ण है। संतान दोनों की संधि है और सन्तान पैदा करने के लिए किया जानावाला कार्य संधि का कारण है। इस प्रकार यह प्रजा विषयक संहिता कही गयी।

अब आत्म विषयक संहिता का वर्णन करते हैं। नीचे का जबड़ा पूर्व वर्ण है, ऊपर का जबड़ा परवर्ण है। वाणी दोनों के बीच की संधि है। जिह्वा वाणी रूप संधि की उत्पत्ति का कारण है। इस प्रकार अध्यात्म विषयक संहिता कही गयी।

इस प्रकार ये पाँच महासंहिताएँ कही गयी हैं। जो मनुष्य उपर्युक्त महासंहिताओं को जान लेता है, वह सन्तान से, पशु

।, ब्रह्मतेज से, अन्न आदि भोग पदार्थों से, स्वर्ग लोक से संपन्न
ा जाता है।

चतुर्थ अनुवाक्

जो वेदों में सर्वश्रेष्ठ है। सर्वरूप है और अमृत स्वरूप वेदों
प्रधान रूप से प्रकट हुआ है वह ओंकार स्वरूप परमात्मा मुझे
रण युक्त बुद्धि से सम्पन्न करे। हे देव मैं आपकी कृपा से
मृतमय परमात्मा से अपने हृदय में धारण करने वाला बन
ऊँ। मेरा शरीर नीरोग और फुर्तीला बना रहे। मेरी जिह्वा
तेशय मधुर भाखिरनी बने। मैं दोनों कानों से अधिक सुनता
। हे प्रणव, तू लौकिक बुद्धि से ढकी हुई परमात्मा की विधि है।
मेरे सुने हुए उपदेश की रक्षा कर।

हे अग्नि के आधिष्ठाता अग्निदेव, जो मुझे आवश्यकता
ने पर तुरन्त विविध प्रकार के वस्त्र, गौएँ, भोजन सामग्री,
र प्रस्तुत करती रहे। उन्हें बढ़ाती रहे तथा उन्हें नया रूप
न कर दे। ऐसी श्री को तू भेड़-बकरी आदि रोयें वाले एवं
। प्रकार के पशुओं सहित ला दे। 'स्वाहा'। (इसी मंत्र का
उच्चारण करके स्वाहा शब्द के साथ अग्नि में आहुति देनी
हिए)।

ब्रह्मचारी लोग मेरे पास आएँ, स्वाहा (आहुति देनी चाहिए)
पट हों स्वाहा (इस उद्देश्य से आहुति देनी चाहिए) ब्रह्म-
लोग प्रामाणिक ज्ञान को ग्रहण करने वाले हों स्वाहा। ब्रह्म-
लोग मन को वश में रखने वाले हों स्वाहा।

लोगों में मैं यशस्वी बनूँ। स्वाहा (इस उद्देश्य से यह आहुति
हान् धनवानों की अपेक्षा अधिक धनवान हो जाऊँ स्वाहा।
गवान् आप ही में मैं समा जाऊँ स्वाहा। हे भगवान्,

हजारों शाखा वाले आप में ध्यान द्वारा निमग्न होकर अपने को विशुद्ध कर लूं स्वाहा।

जिस प्रकार नदियों का जल ढाल पाकर समुद्र में मिल जाता है। जिस प्रकार महीनों, दिनों को अन्त करने वाले संवत्सर रूप काल में चले जाते हैं। हे विधाता, इसी प्रकार मेरे पास चारों ओर से ब्रह्मचारी लोग आएँ स्वाहा। तू सब का निवास स्थान है। मेरे लिए अपने को प्रकट कर। मुझे प्राप्त होजा।

पाँचवा अनुवाक

भूः भुवः और स्वः ये तीन व्याहृतियाँ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरक्त जो चौथी व्याहृति 'महः' है, इसकी उपासना का रहस्य सबसे पहले महाचमस के पुत्र ने जाना था। इन चारों व्याहृतियों में 'महः' व्याहृति ही ब्रह्म है। यही अन्य तीन व्याहृतियों की आत्मा है। क्योंकि ब्रह्म सर्वरूप हैं, सबकी आत्मा है। अन्य सभी देवता उसके अंग हैं। भूः यह व्याहृति ही यह पृथ्वी लोक है। भुवः व्याहृति अन्तरिक्ष लोक है। स्वः व्याहृति स्वर्ग लोक है। महः यह आदित्य—सूर्य है। आदित्य से ही समस्त लोक महिमा-मय बने हुए हैं।

भूः यह व्याहृति अग्नि है। भुवः यह वायु है। स्वः यह आदित्य है। महः यह चन्द्रमा है। चन्द्रमा से ही समस्त ज्योतियाँ महिमामयी होती हैं। भूः यह व्याहृति ऋग्वेद है। भुवः सामवेद है। स्वः यजुर्वेद है। महः यह ब्रह्म है। ब्रह्म से ही समस्त वेद महिमावान् होते हैं।

भूः यद व्याहृति ही प्राण है। भुवः यह अपान है। स्वः यह व्यान है। महः यह अन्न है। अन्न से ही समस्त प्राण महिमावान् होते हैं। इस प्रकार संसार भर में व्याप्त प्राण मानो तीनों

व्याहृतियाँ हैं। और महः रूप चौथी व्याहृति अन्न है। जिस प्रकार व्याहृतियों में 'महः' सबसे प्रधान है, उसी प्रकार प्राणों का पोषक अन्न प्रधान है। अतः प्राणों के अन्तर्यामी परमात्मा की उपासना अन्न के रूप में करनी चाहिए।

छठा अनुवाक्

पहले बताया हुआ जो यह हृदय के भीतर अंगूठा के समान आकाश है। उसमें विशुद्ध, प्रकाश स्वरूप, अन्तर्यामी, परमात्मा का वास है। वहीं उसका साक्षात्कार हो जाता है।

दोनों तलुवों के बीच में जो यह स्तन के समान लटक रहा है, उसके भी भीतर जहाँ यह केशों का मूलस्थान ब्रह्मरन्ध्र स्थित है, वहाँ शिर के दोनों कपालों को छेदकर निकली हुई जो सुषुम्ना नाड़ी है, वही परमात्मा की प्राप्ति का द्वार है। मरते समय साधक भूः इस व्याहृति के अर्थ रूप अग्नि में स्थित होता है। भुवः इस व्याहृति के अर्थ रूप वायु में स्थित होता है। स्वः इस व्याहृति के अर्थ रूप सूर्य में स्थित होता है। तत्पश्चात् महः इस व्याहृति के अर्थ रूप ब्रह्म में स्थित होता है।

ऐसे साधक पर प्रकृति का अधिकार नहीं रहता, बल्कि वह स्वयं प्रकृति पर शासन करता हुआ 'स्वराट्' बन जाता है। वह वाणी का, नेत्रों का, कानों का और विज्ञान का स्वामी बन जाता । पहले बताए हुए साधन के द्वारा ही यह फल प्राप्त होता है।

वह ब्रह्म आकाश की तरह शरीर वाला, सत्ता रूप, इन्द्रिय आदि समस्त प्राणों को विश्राम देने वाला. मनको आनन्द देने वाला, शान्ति से सम्पन्न अविनाशी है—ऐसा समझ कर हे प्रियवर प्राचीन योग्य, तू उसी की उपासना कर।

सातवाँ अनुवाक्

पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक, पूर्व, पश्चिम आदि दिशाएँ आग्नेय, नैऋत आदि अवान्तर दिशाएँ—ये सभी लोकों की आधिभौतिक पंक्ति है। अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र ये पांच ज्योति समुदाय की पंक्ति है। जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, आकाश, आत्मा तथा इनका संघात स्वरूप अन्नमय स्थूल रूप ये पांचों स्थूल पदार्थों की पंक्ति है। इस प्रकार यह वर्णन आधि भौतिक दृष्टि से किया गया। अब आध्यात्मिक दृष्टि से सुनो—प्राण, कान, अपान, उदान, और समान—ये पांचों प्राणों की पंक्ति है। नेत्र, कान, मन वाणी और त्वचा—ये पांचों करणों की पंक्ति है। चर्म, मांस, नाड़ी, हड्डी और मज्जरा ये पांच शरीरगत धातुओं की पंक्ति है। इस प्रकार भली भाँति कल्पना करके ऋषि ने कहा—यह सब निश्चय ही पंक्ति-समूह है। साधक इस आध्यात्मिक पंक्ति-समूह से ही वाह्य पंक्ति-समूह को और वाह्य से आध्यात्मिक पंक्ति समूह को पूर्ण करता है।

आठवाँ अनुवाक्

ॐ यह ब्रह्म है। ॐ ही यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत् है। ॐ यह अक्षर ही निःसन्देह अनुमोदक है। यह बात प्रसिद्ध है। इसके सिवा हे आचार्य, मुझे सुनाइए ?

ऐसा कहने पर आचार्य ॐ यह कहते हुए शिष्य को उपदेश देते हैं—सामगायक विद्वान् सामवेद गाते हैं। ॐ ॐ कहते हुए वेद-मंत्रों को पढ़ते हैं। ॐ कहते हुए अध्वर्यु यज्ञ में प्रतिगर मंत्र का उच्चारण करता है। और ब्रह्मा अनुमति देता है। ॐ कहकर अग्निहोत्र करने का आदेश देता है। अध्ययन करने से पहले

ब्राह्मण ॐ का उच्चारण करता है। इसके बाद कहता है, मैं वेद को प्राप्त करूं फिर वह वेद को निश्चय प्राप्त करता है।

नवाँ अनुवाक्

सदाचार का पालन और शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना यथाशक्ति निश्चित रूप से करना चाहिए। सत्य भाषण और वेदों का पढ़ना पढ़ाना भी साथ-साथ करना चाहिए। इन्द्रियों का दमन और शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना भी साथ-साथ करना चाहिए। तपस्या के साथ वेदों का स्वाध्याय करना चाहिए। मन को वश में करने के उद्योग के साथ वेदाध्ययन भी करना चाहिए। यज्ञ करने के साथ ही वेदाध्ययन भी करना चाहिए। अग्निहोत्र और वेदों का अध्ययन करना चाहिए। अतिथियों की सेवा और स्वाध्याय करना चाहिए। आपसी लोक व्यवहार के साथ ही स्वाध्याय भी करना चाहिए। गर्भाधान आदि संस्कार रूप कर्मों के साथ वेदाध्ययन भी करना चाहिए। शास्त्रीय विधान के अनुसार अपनी स्त्री से सहवास भी करना चाहिए और स्वाध्याय भी करना चाहिए। अपने परिवार को बढ़ाने के कर्म के साथ ही वेदाध्ययन भी करना चाहिए। सत्य ही इन सबमें श्रेष्ठ है—इस प्रकार रथीतर के पुत्र सत्यवचा ऋषि कहते हैं। तपही सर्वश्रेष्ठ है— यह पुरुशिष्ट के पुत्र तपोनित्य ऋषि का कहना है। और मुद्‌गल के पुत्र नाक मुनि का कहना है, कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यही तप है, यही तप है।

दसवाँ अनुवाक्

प्रवाह रूप में अनादि काल से चले आते हुए इस जन्म-मृत्यु रूप संसार वृक्ष को मैं विनष्ट करना चाहता हूँ। मेरा यश पर्वत की चोटी की भाँति उन्नत है। अन्न पैदा करने वाली शक्ति से सम्पन्न

सूर्य में जैसे उत्तम अमृत है' उसी प्रकार मैं भी अत्यन्त पवित्र अमृत स्वरूप हूँ। तथा प्रकाशयुक्त धन का भंडार हूँ। परमानन्दमय अमृत से अभिषिंचित तथा श्रेष्ठ बुद्धि वाला हूँ। इस प्रकार त्रिशंकु ऋषि का अनुभव किया हुआ यह वैदिक प्रवचन है।

ग्यारहवाँ अनुवाक्

वेद का भली भाँति अध्ययन कराकर आचार्य अपने ब्रह्मचारी विद्यार्थी को—'गृहस्थ बनकर कैसे जीवन व्यतीत करना चाहिए—यह शिक्षा देते हैं—तुम सदैव सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय से कभी न चूको। आचार्य के लिए दक्षिणा के रूप में इच्छित धन लाकर दो फिर उनकी आज्ञा से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर संतान परंपरा को चलाते रहो। उसका विनाश न होने देना। तुम्हें सत्य से कभी न डिगना चाहिए। धर्म से नहीं डिगना चाहिए। शुभ कर्मों से कभी नहीं चूकना चाहिए। उन्नति के साधनों से कभी नहीं चूकना चाहिए। उन्नति के साधनों से कभी नहीं चूकना चाहिए। वेदों के पढ़ने और पढ़ाने में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। देव कार्य और पितृ कार्य से कभी न चूकना चाहिए।

तुम माता में देव बुद्धि रखने वाले बनो। पिता को देव रूप समझने वाले होओ। आचार्य को देवरूप समझने वाले हो उठो। अतिथि को देवता के समान समझने वाले होओ। जो जो निर्दोष-कर्म हैं, उन्हीं का तुम्हें सेवन करना चाहिए। हम आचार्यों के जो अच्छे गुण हैं, निर्दोष कार्य हैं, उन्हीं का सेवन तुम्हें करना चाहिए। दोषयुक्त कर्मों का आचरण कभी नहीं करना चाहिए। जो कोई भी हमसे श्रेष्ठ गुरुजन, या ब्राह्मण आजायँ, उन्हें आसन देकर बैठाना तथा अन्य प्रकार का आराम तुम्हें देना चाहिए।

श्रद्धा पूर्वक दान देना चाहिए। बिना श्रद्धा के दान न देना चाहिए। आर्थिक स्थिति के अनुसार दान देना चाहिए। लज्जा पूर्वक देना चाहिए। भयभीत होकर देना चाहिए और जो कुछ भी दिया जाय उसे विवेक पूर्वक देना चाहिए।

यह सब करते हुए भी यदि तुम्हें किसी अवसर पर कर्तव्य निश्चित करने में दुविधा पैदा हो जाए, अपनी बुद्धि से किसी निर्णय पर पहुँचना मुश्किल हो जाए—तुम किं कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाओ, तो ऐसी स्थिति में जहाँ पर जो कोई विवेकशील, हो उचित सलाह देने वाले हों, सदाचारी और सत्कर्मी हों। सब के साथ प्रेम व्यवहार रखने वाले हों, तथा एक मात्र धर्म पालन की ही इच्छा रखने वाले विद्वान् ब्राह्मण हों—वे जैसा आचारण करते हों उसी प्रकार का आचरण तुम्हें भी करना चाहिए। उन्हीं के सत्परामर्श और उन्हीं के आदर्श को अपनाकर उन्हीं का अनुगमन तुम्हें करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य किसी दोष के कारण कलंकित हो गया हो उसके साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए इस विषय में भी यदि तुम्हें कभी असमंजस पैदा हो, तुम अपनी बुद्धि से निर्णय करने में असमर्थ हो जाओ तो वहाँ भी विचारशील, परामर्श देने में कुशल, सत्कर्म और सदाचार में संलग्न, धन, धान्य, स्त्री आदि की कामना से रहित निःस्वार्थी, निर्लोभी ब्राह्मण हों— उन्हीं के आचरणों का अनुगमन तुम्हें करना चाहिए। उनका व्यवहरर ही तुम्हारे लिए प्रमाण है।

बारहवाँ अनुवाक्

दिन और प्राण के अधिष्ठाता देवता मित्र हमारे लिए कल्याण प्रद हों। रात्रि और अपान के अधिष्ठाता वरुण भी कल्याण दायक हों। नेत्र और सूर्यमन्डल के अधिष्ठाता देवता

अर्यमा हमारे लिए कल्याणमय हों। इन्द्र तथा बृहस्पति देवता हमारा कल्याण करें। त्रिविक्रम रूप से विशाल पगों वाले विष्णु हमारे लिए कल्याणमय हों। ब्रह्म को नमस्कार है। वासुदेव को नमस्कार करता हूँ। प्राण रूप से प्रत्यक्ष होने वाले वायु देवता, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं ब्रह्म हो। इसीलिए मैंने तुम्हें प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा है। ऋत के अधिष्ठाता हो इसलिए मैंने तुम्हें ऋत कहकर पुकारा है। तुम सत्य के अधिष्ठाता हो इसलिए मैं तुम्हें सत्य नाम से पुकारता हूँ। जिस सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने मेरी रक्षा की है, उसने आचार्य की रक्षा की है। रक्षा की है मेरी। रक्षा की है मेरे आचार्य की।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

ब्रह्मानन्द वल्ली

शान्ति पाठ

संसार में जो कुछ भी जड़ चेतन पदार्थ हैं। वह ईश्वर से व्याप्त हैं। सभी मनुष्यों में ईश्वर का वास समझकर हिल-मिल कर साथ रहना चाहिए। एक दूसरे की सहायता करने परस्पर मिलजुल कर पदार्थों का भोग करें। एक साथ पराक्रम करें। आपस में किसी की न तो निन्दा करें और न किसी से ईर्ष्या और शत्रुता ही रखें।

प्रथम अनुवाक

ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, उसी भाव को प्रकट करने वाली यह श्रुति कही गयी है।

परब्रह्म परमात्मा सत्यस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है तथा अनन्त है। जो मनुष्य परम विशुद्ध आकाश में रहते हुए भी प्राणियों के हृदय रूप गुफा में छिपे हुए उस ब्रह्म को जानता है। वह उस विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का अनुभव करते हैं।

यह निश्चय है कि सर्वप्रथम इस परमात्मा से सर्वत्र फैला हुआ यह आकाश उत्पन्न हुआ है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधियों से अन्न, अन्न से यह मनुष्य शरीर उत्पन्न हुआ। यह मनुष्य शरीर निश्चय ही अन्न और रसमय है। इसका यह प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने वाला शिर पक्षी की कल्पना में सिर है। दाहिनी भुजा ही दाहना पंख है। यह बायीं भुजा बायाँ पंख है। शरीर का मध्यभाग पक्षी के शरीर का धड़ है। ये दोनों पैर पूँछ और प्रतिष्ठा हैं। इसी से संबंधित यह आगे कहा जाने वाला यह श्लोक—मंत्र है।

दूसरा अनुवाक

पृथिवी पर रहने वाले जितने प्राणी हैं, वे सब अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न से ही जीवित रहते हैं और अन्त में अन्न से ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अतः अन्न ही सब जीवों में श्रेष्ठ है। इसलिए यह सर्वौषधि रूप कहलाता है। जो साधक अन्न को ब्रह्म समझ कर उसकी उपासना करता है। वह निःसन्देह समस्त अन्न समुदाय को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि अन्न ही सब जीवों में श्रेष्ठ है। इसलिए यह सर्वौषधि कहा जाता है। अन्न से ही सब प्राणी पैदा होते, जीवन धारण करते और अन्त में विलीन होते हैं। अन्न को प्राणी खाते हैं तथा अन्न स्वयं भी प्राणी को खा जाता है। इसीलिए तो इसका नाम 'अन्न' पड़ा है।

अन्न के रस से बने हुए स्थूल शरीर से भिन्न उसी के भीतर रहने वाला एक प्राणमय पुरुष है। उसी से यह अन्न-रसमय वाला पुरुष पूरी तरह से घिरा हुआ रहता है। वह प्राणमय आत्मा निश्चय ही पुरुष के आकार वाही है। उस आत्मा की पुरुष के समान आकृति में व्याप्त होने से ही यह पुरुष के आकार का है। उस प्राणमय आत्मा का प्राण ही मानो शिर है। व्यान दाहिना पंख है, अपान बायाँ पंख है। आकाश शरीर का मध्यभाग है, पृथिवी पूँछ एवं आधार है। उस प्राण की महिमा के विषय में भी यह आगे बताया जाने वाला श्लोक है।

तीसरा अनुवाक

जितने भी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शरीरधारी जीव हैं, वे सब प्राण के सहारे ही जी रहे हैं। बिना प्राण के किसी का भी जीवन नहीं रह सकता, क्योंकि प्राण ही प्राणियों का जीवन है। प्राण ही सब प्राणियों की आयु है। इसलिए यह 'सर्वायुष' कहलाता है। जो साधक उसे सर्वायुष समझकर इसकी उपासना करता है। यह पूर्ण आयु को प्राप्त कर लेता है। जो परमात्मा अन्न के रस से बने हुए स्थूल शरीरधारी पुरुष का अन्तरात्मा है वही उस प्राणमय पुरुष का भी अन्तर्यामी आत्मा है।

पूर्वोक्त प्राणमय पुरुष से भिन्न उससे भी सूक्ष्म होने के कारण उसके भीतर रहने वाला दूसरा पुरुष है। उसका नाम है मनोमय। वही इस प्राणमय शरीर में सर्वत्र व्याप्त रहता है। वह यह मनोमय शरीर भी पुरुष के ही आकार होता है। पक्षी के रूप में उसकी इस प्रकार कल्पना की गयी है—उस मनोमय पुरुष का सिर यजुर्वेद है। ऋग्वेद दाहना पंख, सामवेद बायां पंख है विधि वाक्य (आदेश) शरीर का मध्यभाग है। तथा अथर्वा और

अंगिरा इन दो ऋषियों द्वारा देखे हुए अथर्ववेद के मंत्र ही पूँछ और आधार हैं।

जहाँ से मन के सहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला पुरुष कभी भय-भीत नहीं होता। इस प्रकार यह श्लोक है पूर्वोक्त अन्न-रसमय शरीर का जो अन्तरात्मा बताया गया है वही इस मनोमय शरीर का भी अन्तवर्ती अन्तर्यामी आत्मा है।

चौथा अनुवाक्

पहले बताये गए मनोमय शरीर से भी सूक्ष्म होने के कारण उसके भीतर रहने वाला आत्मा है वह दूसरा है। यह है विज्ञान-मय पुरुष उसी से यह मनोमय शरीर पूर्ण व्याप्त है। यह विज्ञान-मय आत्मा निःसन्देह पुरुष शरीर के आकार का है। उस मनोमय पुरुष में व्याप्त होने से ही वह पुरुषाकार कहा जाता है। उस विज्ञान मय के अंगों की पक्षी के रूप में इस प्रकार कल्पना की गयी है—बुद्धि की निश्चित विश्वास रूप वृत्ति—श्रद्धा उस का शिर है। सदाचार उसका दाहना पंख है। सत्य भाषण उसका बायाँ पंख है। ध्यान द्वारा परमात्मा के साथ संयुक्त रहना ही विज्ञानमय शरीर का मध्यभाग है। और महः नाम से शरीर परमात्मा पूँछ है।

पाँचवाँ अनुवाक्

विज्ञान ही यज्ञों का विस्तार करता है, कर्मों का भी विस्तार करता है। सभी इन्द्रियरूप देवता सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के रूप में विज्ञान की ही सेवा करते हैं। यदि कोई विज्ञान को ब्रह्मरूप से जानता है। और यदि उससे प्रमाद नहीं करता; निरन्तर उसी प्रकार चिन्तन करता रहता है तो शरीराभिमान से उत्पन्न पापसमुदाय

को शरीर ही में छोड़कर समस्त भोगों का अनुभव करता है। उस विज्ञानमय का यह परमात्मा ही शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा है।

निःसन्देह पहले बताए गए विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न इसके भी भीतर रहने वाला आत्मा आनन्दमय परमात्मा है, उससे यह विज्ञानमय पूर्णरूप से व्याप्त है। वह यह आनन्दमय परमात्मा भी पुरुष के आकार के समान है। उस विज्ञानमय के पुरुषाकार के अन्तर्गत रहने से यह आनन्दमय परमात्मा पुरुषाकार कहा जाता है। उस आनन्दमय परमात्मा का प्राण ही मानो सिर है। मोद मनोरंजन) दाहिना पंख है, प्रमोद बायां पंख है। आनन्द ही शरीर का मध्यभाग है। ब्रह्म पूँछ है। उसकी महिमा के विषय एक यह भी श्लोक है—

यदि कोई यह समझता है, कि ब्रह्म असत् नहीं है, तो यह असत् ही हो जाता है। यदि कोई—'ब्रह्म है—ऐसा जानता है, तो ज्ञानी जन उसे सत्पुरुष समझते हैं। इस प्रकार यह श्लोक है।

उस आनन्दमय का भी यही शरीर, शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा है, जो पहले वाले विज्ञानमय का है।

अब अनुप्रश्न का आरंभ करते हुए पहला प्रश्न यह उपस्थित किया जा रहा है कि—यदि ब्रह्म है तो उसको न जानने वाला कोई आदमी मरने के बाद परलोक जाता है या नहीं। तथा दूसरा प्रश्न यह है कि ब्रह्म को जानने वाला कोई आदमी मरने के बाद परलोक प्राप्त करता है या नहीं।

सृष्टि के प्रारंभ में परमात्मा ने विचार किया कि मैं विभिन्न रूपों में उत्पन्न होकर एक से अनेक हो जाऊँ। यह विचार करने के

द् उसने कर्म के अनुसार जीवों की सृष्टि करने के लिए संकल्प
था। संकल्प करने के बाद इस समस्त दृश्यमान् चेतन-अचेतन
त् की उसने रचना की। तननन्तर स्वयं भी उसी में प्रविष्ट हो
ा। प्रविष्ट होने के बाद वह मूर्त्त और अमूर्त्त हो गया। बताने
ाने वाले और न आने वाले। आश्रम देने वाले और न देने
ा, चेतन और अचेतम पदार्थ, सत्य और झूठ आदि सभी रूपों
ह सत्यरूप परमात्मा ही हो गया। जो कुछ भी यह दिखायी
है और अनुभव में आता है, वह सत्य ही है—ऐसा ज्ञानी
कहते हैं। इस विषय में एक यह भी श्लोक है—

सातवाँ अनुवाक्

प्रकट होने से पहले जड़ और चेतनमय यह जगत् अप्रकट
ही में था। उसी से ही अनेक भाँति का यह प्रत्यक्ष जगत्
ा हुआ है। उसने अपने को खुद इस रूप में प्रकट किया है;
कार वह 'सुकृत' कहा जाता है। इस प्रकार यह श्लोक है—

नेश्चय ही वही सुकृत है, वही रस है, क्योंकि यह जीवात्मा
स को प्राप्तकर आनन्दमय हो जाता है। यदि यह आनन्द
काश की भाँति व्यापक परमात्मा न होता तो कौन जीवित
कता। कौन प्राणों को संचालित करता। निःसन्देह यह
मा ही सब को आनन्द प्रदान करता है।

योंकि परमात्मा को प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाला
व कभी देखने, सुनने और बोलने में न आने वाले और
के आश्रित न रहने वाले शरीर रहित परमात्मा में निश्चित
ाप्त करता है। वह सदा के लिए भय और शोक से रहित
ता है।

योंकि यह जीवात्मा उस परब्रह्म परमात्मा थोड़ा भी अन्तर
हता है, वह उसी का स्मरण किया करता है। परमात्मा को

थोड़ी देर के लिए भूल जाता है तब तक के लिए भय है। वह भय केवल मूर्ख को ही नहीं होता बल्कि अनुभवी शास्त्रज्ञ विद्वान् को भी होता हैं। इसी के विषय में यह नीचे लिखा श्लोक पढ़ा जारहा है—

आठवाँ अनुवाक्

परमात्मा के भय से हवा नियम पूर्वक चला करती है। इसी के भय से सूर्य उदय हुआ करता है। इसी के भय से अग्नि, इन्द्र और यम अपना-अपना काम कर रहे हैं।

अब आनन्द संबंधी विचार शुरू होते हैं। कोई आदमी जवान हो, वह भी ऐसा-वैसा मामूली जवान नहीं। सदाचारी, शीलवान और कुलीन हो। उसे सम्पूर्ण वेदों की शिक्षा मिली हो तथा वह ब्रह्मचारियों को संयम सदाचार की शिक्षा देने में कुशल हो वह सर्वथा नीरोग, काम करने सुदृढ़ और समर्थ हो तथा सभी प्रकार के फल से सम्पन्न हो। फिर धन-वैभव से भरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी यदि उसके हाथ में आ जाय तो यह मनुष्य का बड़ा से बड़ा सुख है। यह मानव लोक का सबसे महान् आनन्द है।

मनुष्य योनि में उत्तम कार्य करके जो लोग गन्धर्व लोक को प्राप्त हुए हैं उन्हें वहाँ मनुष्य लोक के आनन्द से सौ गुना आनन्द है। वह मनुष्य गन्धर्व लोगों का एक आनन्द होता है। जिसका अन्त करण भोगों की कामनाओं से दूषित नहीं हुआ है ऐसे वेदों के ज्ञाता भी वही स्वाभाविक आनन्द माने जाते हैं।

जिस मनुष्य-गन्धर्व के आनन्द का वर्णन अभी किया गया है उसी तरह के सौ आनन्दों को एकत्र करने पर जो आनन्द का ढेर होता है, उतना सृष्टि काल के प्रारंभ में देवता जाति उत्पन्न देव

गन्धर्व का एक आनन्द है। जो मनुष्य ऐसी भौतिक कामनाओं में आसक्त नहीं होता तथा जो वेद के उपदेश को हृदयगंम कर चुका है। ऐसे विद्वान् को यह आनन्द सहज ही मिल जाता है।

देव गन्धर्वों के जिस आनन्द का वर्णन ऊपर किया गया है, वैसे सौ आनन्द इकट्ठा करके जो एक राशि बनती है, उतना चिर-स्थायी, पितृ लोक में रहने वाले दिक् पितरों का एक आनन्द होता है। जो लोग संसार के भोगविलासों से रहित होकर श्रुतियों के चिन्तन ही में रहते हैं, उन्हें वह आनन्द सहज ही मिला जाता है।

पितृलोक में जो चिरस्थायी पितर हैं, उनके सौ आनन्द मिला कर जो एक राशि बनती है, वह 'आजानज' नाम के देवताओं का आनन्द होता है। जो लोग 'आजान' स्थान तक के भोग विलासों की इच्छा नहीं रखते हैं, उस वेदवित् पुरुष के लिए यह आनन्द सहज प्राप्त है।

जो 'आजानज' नाम के देवाताओं की आनन्द की सौगुनी संख्या है, वह उन कर्म देवों का एक मात्र आनन्द है। जो वेद में बताए गए कर्मों से देवभाव को प्राप्त हुए हैं। और उस लोक तक के भोगों की कामना जो नहीं करता उसे वह आनन्द तो स्वतः प्राप्त है।

कर्म देवों के जो एक सौ आनन्द हैं, वह देवताओं का एक आनन्द है, और जो देव लोक तक के भोगों की कामना से रहित है, उस वेदज्ञ को वह स्वतः प्राप्त है।

जो देवताओं का एक सौ आनन्द है, वह इन्द्र का एक आनन्द है। और इन्द्र लोक तक के भोगों की कामना से जो रहित है उस वेदज्ञ पुरुष का वह आनन्द स्वतः प्राप्त है।

इन्द्र के सौ आनन्द मिलकर वृहस्पति के एक आनन्द के बराबर हैं और जो वेद वेदृत्ता वृहस्पति के भोगों तक की कामना से रहित है, उसे वह आनन्द स्वतः प्राप्तः है।

वृहस्पति के सौ आनन्द मिलाने से प्रजापतिका एक आनन्द होता है। और जो वेदज्ञ प्रजा पति के भोगों में अनासक्त है उसे वह आनन्द स्वतः प्राप्त है।

प्रजापति के सौ आनन्द मिलकर ब्रह्मा का एक आनन्द होता है। और जो ब्रह्मलोक तक के भोगों की कामना नहीं रखता उसे वह आनन्द स्वतः मिल जाता है।

जो परमात्मा मनुष्यों में है वही सूर्य में भी है। वे सब के अन्तर्यामी एक ही हैं। जो इसे जान लेता है वह मरने के बाद पूर्वोक्त अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय आत्माओं प्राप्त होता है। इसके विषय में आगे का श्लोक पढ़ा जा रहा है—

नवाँ अनुवाक

मन के सहित सभी इन्द्रियाँ जिस ब्रह्मानन्द को जानने के लिए वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ हैं, उस ब्रह्मानन्द को जान लेने वाला विद्वान् कभी किसी से भयभीत नहीं होता। इस प्रकार यह श्लोक है।

उपर्युक्त ढंग से परमात्मा को जान लेने वाला विद्वान् कभी इस प्रकार शोक नहीं करता कि हाय, मैंने अच्छे कर्म नहीं किए हैं। मैंने क्यों पाप कर्म किए हैं। उसके मन में उत्तम कर्मों के फल-स्वरूप मिलने वाले स्वर्ग और पाप कर्मों से मिलने वाले नरक की चिन्ता नहीं रहती। लोभ और भय से उत्पन्न सन्ताप उसे छू तक

नहीं सकते। वह ज्ञानी आसक्तिपूर्वक किए हुए पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्मों के जन्म-मरण का कारण समझ कर उनके प्रति ईर्ष्या, राग द्वेष्य सबसे रहित हो जाता है। और परमात्म-चिन्तन में लीन रहकर आत्मरक्षा करता है।

भृगु बल्ली

प्रथम अनुवाक्

वरुण के पुत्र भृगुनाम के ऋषि के मन में एक बार परमात्मा को जानने और उसे प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा हुई। तब वे अपने पिता के पास गए। उनके पिता वरुण वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष थे। इसलिए भृगु को किसी दूसरे आचार्य के पास जाने की जरूरत न पड़ी। उन्होंने अपने पिता के पास जाकर कहा—भगवन्, मैं ब्रह्म को जानना चाहता हूँ, अतः आप कृपा करके मुझे ब्रह्मतत्त्व समझाइए। वरुण ने कहा—पुत्र! अन्न, प्राण, नेत्र, कान, मन और वाणी ये सभी ब्रह्म प्राप्ति के द्वार हैं। इन सभी में ब्रह्म की सत्ता गूंजती रहती है। ये दिखायी देने वाले जितने प्राणी हैं वे सब जिससे उत्पन्न होते हैं, जिसके बल पर उनका पालन होता है और महाप्रलय के समय जिसमें ये विलीन होते हैं उसी को जानने और पाने की इच्छा कर। वही ब्रह्म है। इस प्रकार पिता का उपदेश प्राप्तकर भृगु ऋषि ब्रह्मचर्य, संयम आदि के द्वारा तप करने लगे। पिता की आज्ञा पर दृढ़ रहे। त्याग पूर्वक शम, दम का पालन करते रहे यही उनका तप था। इस प्रकार का तप करके उन्होंने क्या प्राप्त किया—यह बात अगले अनुवाक में बतायी गयी है।

दूसरा अनुवाक्

पिता के उपदेश के अनुसार भृगु ने यह निश्चय किया कि अन्न ही ब्रह्म है, क्यों कि समस्त प्राणी अन्न खाकर बने हुए वीर्य से ही

उत्पन्न होते हैं। अन्न से ही वे जीते हैं और अन्त में यहाँ से प्रस्थान करते हुए अन्न में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार का निश्चय कर वह पुनः अपने पिता वरुण के पास पहुँचकर बोले—भगवन्, मुझे ब्रह्म का बोध कराइए? तब वरुण ऋषि ने कहा कि पुत्र, ब्रह्म को तत्त्व से जानने की इच्छा करो। तप ही ब्रह्म है। इस प्रकार पिता की आज्ञा से वह तप करने लगे। तप करके—

तीसरा अनुवाक्

प्राण ही ब्रह्म हैं—ऐसा उन्हें बोध हुआ। क्योंकि प्राण से ही सभी प्राणी पैदा होते हैं। पैदा हो कर प्राण से ही जीवित रहते हैं। और मरते समय प्राण ही में सब प्रकार से समा जाते हैं। इस प्रकार का बोध प्राप्त कर भृगु ऋषि ने फिर अपने पिता वरुण ऋषि के पास जाकर उन्हें अपना बोध सुनाया और कहा—भगवन्, मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए? वरुण ऋषि ने कहा—ब्रह्म को तप से तत्त्वतः जानने की इच्छा करो। ब्रह्म प्राप्ति का साधन तप ही है। इस प्रकार आज्ञा पाकर वह फिर तप करने लगे और तप करके—

चौथा अनुवाक्

उन्होंने यह बोध प्राप्त किया कि मन ही ब्रह्म है। क्योंकि मन से ही सभी प्राणी पैदा होते है, मन से उत्पन्न होकर मन से ही जीते हैं और मरते समय मन ही में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार उस ब्रह्म को जानकर उन्होंने पुनः अपने पिता के पास जाकर अपना निश्चय सुनाया। लेकिन अपनी बात का कोई उत्तर न पाकर भृगु बोले—भगवन् ब्रह्म का उपदेश दीजिए। ऐसी प्रार्थना करने पर वरुण ऋषि ने कहा—ब्रह्म को तप से तत्त्वतः जानने की इच्छा करो। तप ही ब्रह्म है। तब भृगु फिर तपस्या करने लगे और तप करके—

पाँचवां अनुवाक्

उन्होंने समझा कि विज्ञान ही ब्रह्म है। क्योंकि विज्ञान से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर विज्ञान से जीते हैं और मरने पर विज्ञान ही में समा जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर वह उसी प्रकार फिर अपने पिता के पास गए। अपनी बात का कोई उत्तर न पाकर बोले—भगवन्, मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए, इस प्रकार कहने पर वरुण ऋषि बोले—ब्रह्म का ज्ञान तप से तत्त्वतः प्राप्त करने की इच्छा करो। पिता की यह आज्ञा मान कर वह फिर तप करने लगे और तप करके—

छठा अनुवाक्

उन्होंने यह समझा की आनन्द ही ब्रह्म है। क्योंकि आनन्द से ही समस्त प्राणी पैदा होते हैं, इसी से जीवित रहते हैं और अन्त में इसी में समा जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद भृगु की जानी हुई और वरुण द्वारा उपदेश की हुई विद्या विशुद्ध आकाश रूप परब्रह्म परमात्मा में पूर्ण स्थित है। जो कोई इस आनन्द ब्रह्म को जान लेता है, वह परब्रह्म में स्थित हो जाता है इतना ही नहीं वह इस लोकमें बहुत अन्न वाला और अन्न को भली-भाँति पचाने की शक्ति वाला हो जाता है। तथा संतान से, पशुओं से, ब्रह्म तेज से सम्पन्न होकर वह महान् बन जाता है और उत्तम कीर्तिशाली हो जाता है।

सातवाँ अनुवाक्

अन्न की निन्दा न करनी चाहिए, क्योंकि वह व्रत है, प्राण है वही अन्न है। शरीर है और अन्न का भोक्ता है। शरीर और प्राण के आधार पर स्थित है। शरीर के आधार पर प्राण स्थित हो रहे हैं। यह अन्न ही में अन्न स्थित हो रहा है। जो मनुष्य—अन्न ही

में अन्न स्थित है—इस रहस्य को जान लेता है, वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। अन्नवाला अन्न को खाने वाला हो जाता है। सन्तान, पशु और ब्रह्मतेज से संपन्न होकर वह महान् बन जाता है। कीर्ति से भी सम्पन्न हो जाता है।

आठवाँ अनुवाक्

अन्न का अपमान न करना चाहिए क्योंकि यह एक व्रत है। जल ही अन्न है और तेज रस स्वरूप अन्न का भोक्ता है। जल में तेज रहता है, तेज में जल रहता है। वही यह अन्न में अन्न प्रतिष्ठित रहता है। जो मनुष्य इस रहस्य को जान जाता है वह उस रहस्य में प्रतिष्ठित हो जाता है। अन्नवाला और अन्न को खानेवाला हो जाता है। संतान, पशु और ब्रह्मतेज से महान् बन जाता है। तथा कीर्ति से समृद्ध हो कर महान् बन जाता है।

नवाँ अनुवाक्

अन्न को बढ़ाना चाहिए। क्यों कि यह एक व्रत है। पृथिवी ही अन्न है। पृथिवी रूप अन्न का आधार होने से आकाश अन्न को खाने वाला है। पृथिवी में आकाश स्थित है। आकाश में पृथिवी स्थित है। वही यह अन्न में अन्न स्थित है। जो मनुष्य अन्नमें अन्न स्थित है—इस रहस्य को जान लेता है, वही अन्न-वाला और अन्न का खानेवाला बन जाता है। वह सन्तान, पशु और ब्रह्मतेज से महान् बन जाता है। वह महान् कीर्तिशाली बन जाता है।

दसवाँ अनुवाक्

अपने घर में ठहरने के लिए आए हुए किसी अतिथि को प्रति कूल उत्तर न देना चाहिए। यह एक व्रत है अतिथि सत्कार के लिए

हर उपाय से अन्न को जुटाना चाहिए। क्योंकि गृहस्थ अपने घर आए हुए अतिथि से कहता है कि—'भोजन तैयार है।' यदि गृहस्थ, अतिथि को अधिक श्रद्धा, प्रेम और सत्कार से तैयार किया हुआ भोजन देता है, वह निश्चय ही देने वाले को अधिक आदर सत्कार के साथ ही अन्न प्राप्त होता है। यदि वह अतिथि को मध्यम श्रेणी की श्रद्धा और प्रेम से तैयार किया हुआ भोजन देता है तो निःसन्देह दाता को मध्यम श्रेणी का अन्न प्राप्त होता है। और यदि जो कोई अपने अतिथि को निकृष्ट श्रद्धा-सत्कार से तैयार किया गया भोजन देता है तो देने वाले को निकृष्ट अन्न मिलता है। जो इस रहस्य को जान लेता है, वह अतिथि के साथ उत्तम बर्ताव करता है।

वह परमात्मा वाणी में रक्षा शक्ति के रूप में निवास करता है। प्राण और अपान में प्राप्ति और रक्षा रूप से, हाथों में कर्म करने की शक्ति रूप से, पैरों में चलने की शक्ति रूप से, गुदा में मल त्याग की शक्ति रूप से रहता है। इस प्रकार ये आध्यात्मिक उपासनाएँ हैं। अब दैवी उपासनाओं का वर्णन किया जाता है—

वह परमात्मा वृष्टि में तृप्ति-शक्ति रूप से है। बिजली में बल (शक्ति) रूप से है। पशुओं में यश रूप से है। ग्रहों और नक्षत्रों में ज्योति रूप से है। मूत्राशय में सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति वीर्य रूप अमृत और आनन्द देने की शक्ति रूप से स्थित है और आकाश में सब का आधार बनकर स्थित है।

उपासना करने योग्य वह परमात्मा सबका आधार है। जो साधक उसकी इस प्रकार उपासना करता है वह प्रतिष्ठित बन जाता है। वह भगवान् सबसे महान् है। यह समझ कर जो उपा-न। करता है, वह महान् बन जाता है। वह भगवान् मन है—यह समझ कर जो उपासना करता है वह मनन शील बन जाता

है। वह ईश्वर नमस्कार योग्य है—यह समझ कर जो उपासना करता है उसके समस्त भोग पदार्थ विनीत बन जाते हैं। जो कोई उसकी उपासना ब्रह्म समझ कर करता है वह ब्रह्ममय बन जाता है। जो कोई उसे सबको मारने वाला नियत किया हुआ अधिकारी समझ कर उसकी उपासना करता है, उस उपासक के सभी शत्रुओं का नाश हो जाता है। उसके अनिष्ट चाहने वाले सभी अप्रिय जन नष्ट हो जाते हैं।

वह परमानन्द स्वरूप परमात्मा इस मनुष्य में और सूर्य में एक ही है। जो इस तत्व को जान लेता है वह मरने के बाद परमानन्द में मिल जाता है। जिस अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय आत्मा का वर्णन पहले किया जा चुका है वह स्थूल और सूक्ष्म भेद से विविध रूपों में स्थित हैं। सभी के रूप परमात्मा हैं। ऐसे परमात्मा को पाकर मनुष्य सभी भोग पदार्थों से युक्त होकर इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। साथ ही वह इन लोकों में विचारता हुआ आगे बताये जाने वाले समतायुक्त भावों का गान करता है।

परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने वाले व्यक्ति के अन्तःकरण से निकले पावन उद्गार ये हैं—बड़े आश्चर्य की बात है, कि ये इन सम्पूर्ण भोग पदार्थों को भोगने वाला जीवात्मा और भोग पदार्थों तथा जीव का संयोग कराने वाला परमात्मा मैं एक हूँ। मैं ही इस दृश्यमान जगत् का स्रष्टा और सब से पहले उत्पन्न होने वाला ब्रह्म हूँ। परमात्मा अमृत रूप ब्रह्म और मुझ में कोई फर्क नहीं दोनों एक हैं। कोई व्यक्ति किसी वस्तु को जब किसी को प्रदान करता है—वह मानों मुझे ही देकर मेरी रक्षा करता है। इसके विपरीत जो अपने ही लिए सभी भोगों को भोगता है, उस खाने वाले को मैं अन्न रूप होकर निगल जाता हूँ। मैं समस्त

ाण्ड का तिरस्कार करने वाला हूँ। मेरी महत्ता के सामने यह
ब कुछ तुच्छ है। मेरे प्रकाश की एक किरण सूर्य के समान है।
: कोई परमात्मा के इस तत्त्व को जान लेता है, वह भी इसी
थति को प्राप्त कर लेता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

९

श्वेताश्वतरोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद के अन्तर्गत है। इसके द्वारा श्वेताश्वतर ऋषि ने चौथे आश्रम (संन्यास) में प्रवेश करने वालों को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था। इसमें कुल छह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में परमात्मा के साक्षात्कार का साधन प्रणव (ॐ) बताया गया है। दूसरे अध्याय में ध्याना-भ्यास की विधि, उसके योग्य स्थान, प्रवृत्ति और फल का वर्णन किया गया है। तीसरे अध्याय में ध्यान के साध्य परमात्मतत्त्व का सगुण, अन्तर्यामी, विराट् तथा शुद्ध रूप का क्रमशः वर्णन किया गया है। चौथे अध्याय में तत्त्व बोध की प्राप्ति के लिए तथा माया से छुटकारा पाने के लिए भगवान् से प्रार्थना की गयी है। पाँचवें अध्याय में क्षर, अक्षर तथा इन दोनों के प्रेरक परमात्मा के विविध रूपों का उल्लेख किया गया है। छठे अध्याय में परमात्मा के स्वरूप और ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए उसी के ज्ञान से सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाने का निर्देश किया गया है।

इस उपनिषद् में परमार्थतत्व का ही निरूपण है। संसार क्या है, इसका कारण क्या है। हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं। किसके द्वारा हम जीवन धारण करते हैं। हमारा आधार कौन है? और किसकी प्रेरणा से हम सुख-दुख. भोगते हैं, आदि ऐसा ही जिज्ञासाओं का हल इस उपनिषद् में है।

शान्ति पाठ

वह परमात्मा हम आचार्य और शिष्य दोनों की साथ-साथ रक्षा करे। हम दोनों का साथ-साथ पालन करे। हम साथ ही साथ विद्या संबंधी पराक्रम प्राप्त करें। हम दोनों ने जो कुछ पढ़ा है, वह तेजस्वी हो। हम द्वेष्य न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

हरिः ॐ का उच्चारण करते हुए ब्रह्मवादी कहते हैं—

हे वेदज्ञ महर्षिगण, वेदों में लिखा है, कि इस समस्त जगत् के कारण ब्रह्म हैं। वह ब्रह्म कौन है। हम लोग कहाँ से पैदा हुए हैं। किसके प्रभाव से जीवित हैं। हमारी स्थित किस पर आधारित है। हमारा परमआश्रय कौन है? हम लोगों की व्यवस्था करने वाला कौन है? जिसकी व्यवस्था के अन्तर्गत हम सुख-दुःख का अनुभव भोग रहे हैं।

काल, स्वभाव, निश्चित फल देने वाला कर्म, आकस्मिक घटना, पाँचों तत्त्व या जीवात्मा जगत् का मूल कारण है। इस पर विचार करना चाहिए। क्योंकि ये चेतन आत्मा के प्रतीक हैं। इनमें स्वतंत्र कार्य करने की क्षमता नहीं है। ये सब सुख-दुःखों के हेतु होने के कारण प्रारब्ध के अधीन हैं।

ध्यानयोग में स्थित होकर उन्होंने अपने गुणों से ढकी हुई उस परमात्मदेव की अचिन्त्यशक्ति का साक्षात्कार किया जो अकेला ही काल से लेकर आत्मा तक बताए हुए कारणों पर शासन करता है।

परमात्मा की अचिन्त्यशक्ति का साक्षात्कार करने वाले महर्षि लोगों का कहना है, कि हमने एक ऐसे चक्र को देखा है, जो एक नेमि (गोली लकड़ी जिसमें धुरी पहिया फँसे रहते हैं।) तीन घेरों वाले, सोलह सिरों वाले, पचास अरों (पहियों की पुट्ठियाँ में लगी हुई लकड़ियाँ) से ६ अष्टकों से युक्त है। और अनेक रूपों वाले एक ही पाश से युक्त मार्ग के तीन भेदों वाला दो निमित्त और मोह रूपी नाभिवाला है।

तात्पर्य यह कि संसार चक्र का मूल आधार एक परमात्मा है। वह संसार चक्र प्रकृति रूपी नेमि से घिरा हुआ है। सत, रज और तम ये तीन उसके घेरे हैं। आठ सूक्ष्मतत्त्व और आठ स्थूल रूप उसके सिरे हैं। अन्तःकरण की प्रवृत्तियों के पचास भेद संसार चक्र के अरे हैं। उसमें आठ-आठ चीजों के ६ समूह हैं। पाँच महाभूतों के कार्य, दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण और पाँच विषय ये बीस अरों की जगह हैं। जीवों को इस चक्र में बाँधकर रखनेवाली आसक्ति ही फाँसी (पाश) है।

देवयान, पितृयान और तीसरा इस लोक के दूसरी योनि में जाना ये तीन उस चक्र के मार्ग हैं। पुण्य और पाप ये दोनों चक्र के साथ-साथ घुमाने में निमित्त हैं। संसार चक्र का केन्द्र अज्ञान है।

वे ब्रह्म वेत्ता ऋषि अब संसार के नदी रूप का वर्णन करते हैं—वे कहते हैं, कि हम एक ऐसी नदी को देख रहे हैं, जिसमें ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच प्राण सोते हैं। पंच महाभूत इस नदी के पाँच

उद्गम स्थान हैं। यह संसार रूप नदी बहुत ही टेढ़ी मेढ़ी और तेज प्रवाह की है। इस भवसरिता की लहरें प्राण हैं। यह मन संसार रूप नदी का मूल है। शब्द, स्पर्श आदि पाँच विषय संसार-सरिता की पाँच भँवरें हैं। इन्हीं में फँसकर जीव जन्म-मृत्यु के चक्चर में पड़ जाता है। पाँच प्रकार के दुःख (गर्भ, जन्म, रोग, बुढ़ाई, मृत्यु) इस नदी के प्रवाह के वेग हैं। अविद्या, अस्मिता (अहंकार) राग, द्वेष और अभिनिवेश (मृत्युभय) ये पाँच प्रकार के क्लेश संसार-सरिता के पाँच विभाग हैं। और अन्तःकरण की पचास वृत्तियाँ ही इस नदी के पचास भेद हैं।

इस संसार चक्र के संचालक परमात्मा द्वारा यह जीव अपने कर्मों के अनुसार घुमाया जाता है। जब तक इस चक्र के संचालक को जान कर उसकी कृपा नहीं प्राप्त कर ली जाती तब तक इस चक्र से छुटकारा नहीं मिलता। जब जीव अपने को और संसार चक्र के संचालक को अच्छी तरह अलग-अलग समझ लेता है, तब वह परमात्मा का कृपा पात्र बन जाता है। अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है।

जिस परमात्मा की महिमा वेदों ने गायी है, वह सब का सर्वोत्तम स्थान है। समस्त विश्व उसी में स्थित है। वही प्रेरक, अविनाशी और अक्षर-रूप परमदेव है। ध्यान योग में स्थित होकर जिन ब्रह्म ज्ञानियों ने ऐसे परमात्मा का साक्षात्कार किया है वे सर्वात्मा परमात्मा को अपने हृदय में स्थित समझकर उसी की शरण में जाकर उसी में लीन हो गए।

विनाश शील, जड़वग एवं अविनाशी जीवात्मा इन दोनों के संयुक्त रूप प्रकट और अप्रकट रूप में स्थित इस विश्व को धारण और इसका पोषण परमात्मा ही करता है। तथा जीवात्मा सांसारिक विषयों का भोक्ता बनकर प्रकृति के अधीन हो इसमें फँस जाता

है। लेकिन परमदेव परमात्मा को जानकर वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

सर्वज्ञ और अज्ञानी, सर्वशक्तिमान् और असमर्थ ये दो अजन्मा आत्मा हैं। तथा जीवात्मा के भोगने के लिए उपयुक्त उपभोग सामग्री से युक्त अनादि प्रकृति एक तीसरी शक्ति है। इन तीनों से अलावा ईश्वर शक्ति सबसे विलक्षण है। क्यों कि वह परमात्मा अनन्त, सर्वस्वरूप, कर्त्तापन के अभिमान से रहित है। जब मनुष्य ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों को ब्रह्म रूप में प्राप्त कर लेता है, तब वह सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

प्रकृति तो परिवर्तनशील होने के कारण विनाशशील है। इसको भोगने वाला अविनाशी अक्षर तत्त्व है। इन प्रकृति और चेतन-जीव समुदाय दोनों तत्त्वों पर एक परमात्मा ही शासन करता है। वही प्राप्त करने और जानने योग्य है। उसे तत्त्व से जानना चाहिए। ऐसा निश्चयकर परमात्मा का ध्यान करने से उसी में निमग्न और तन्मय हो जाने से अन्त में उसी को प्राप्त करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण बन्धनों से छूट जाना पड़ता है।

इस प्रकार चिन्तन और ध्यान करने से जब परमात्मज्ञान हो जाता है, तब मनुष्य के सभी बन्धन छूट जाते हैं। क्योंकि क्लेशों का नाश हो जाने से जन्म-मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है। अतः वह देह भेद नाश हो जाने पर स्वर्ग लोक तक के समस्त ऐश्वर्य त्याग करके केवल सर्वथा विशुद्ध पूर्ण काम हो जाता है।

परब्रह्म परमात्मा अपने ही भीतर—हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित है इसी को जानने के लिए सदैव चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि इससे बढ़कर जानने योग्य तत्त्व दूसरा कुछ भी नहीं है। जीवात्मा, जड़वर्ग और उनके प्रेरक परमात्मा इन तीनों को जान-

कर मनुष्य सब कुछ जान लेता है। इस प्रकार तीनों भेदों में बताया गया यह ब्रह्म ही है।

जिस प्रकार अपने प्रकट होने के स्थान—काष्ठ आदि में स्थित आग का रूप दिखायी, नहीं देता लेकिन उसकी सत्ता का नाश नहीं होता, क्योंकि प्रयत्न करने, पर आग अपने उत्पत्ति स्थान ईंधन आदि से प्रकट हो जाती है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा इसी शरीर में रहते हैं और ॐकार की साधना करने पर प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

अग्नि को प्रकट करने के लिए जैसे दो अरणी लकड़ियों को नीचे ऊपर करके मथा जाता है, उसी प्रकार अपने शरीर में परमात्मा को प्राप्त करने के लिए शरीर को नीचे की अरणि बनाना चाहिए और ॐकार को ऊपर की अरणि। इसके बाद ध्यान द्वारा निरंतर मथते रहने पर साधक छिपी हुई आग की तरह हृदय में छिपे हुए भगवान् को देख लेता है।

जैसे तिल में तेल, दही में घी; सोतों में जल और अरणि लकड़ी में आग छिपी रहती है, उसी प्रकार यह परमात्मा अपने हृदय के अन्दर छिपा हुआ है। जो साधक इसे सत्य और संयम रूप तप से देखता है—चिन्तन करता है उसके द्वारा वह उसे प्राप्त कर लेता है।

दूध में समाये हुए घी की भाँति सर्वत्र परिपूर्ण आत्मा विद्या एवं तप से प्राप्त होने वाले जिस परमात्मा को साधक प्राप्त करता है, वही उपनिषदों में बताया गया ब्रह्म है।

दूसरा अध्याय

सबको उत्पन्न करने वाला परमात्मा पहले हमारे मन और बुद्धि की वृत्तियों को तत्त्व की प्राप्ति के लिए अपने अपने दिव्य

स्वरूप में लगाए। और फिर अग्नि आदि इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की जो विषयों को प्रकट करने की शक्ति है उसे दृष्टि में रखते हुए बाहरी विषयों से लौटाकर हमारी इन्द्रियों में अच्छी तरह स्थापित कर दे।

हम लोग सब को उत्पन्न करने वाले परमात्मा के आराधना रूप यज्ञ में लगे हुए मन के द्वारा स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति के लिए पूरी शक्ति से प्रयत्न करें।

सबके उत्पादक भगवान् मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को जो स्वर्ग आदि लोकों में और आकाश में गमन करने वाले तथा महान् प्रकाश फैलाने वाले हैं, हमारे मन और बुद्धि से संयुक्त करके हमें प्रकाश देने के लिए प्रेरणा प्रदान करें।

जिसमें ब्राह्मण आदि मन को लगाते हैं। बुद्धि की सभी वृत्तियों को लगाये रहते हैं। जिसने समस्त अग्निहोत्र आदि का विधान किया है, जो समस्त जगत् के विचारों को जानने वाला है और केवल एक ही है उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सबके उत्पादक परमात्मा की हमें स्तुति करनी चाहिए।

हे मन और बुद्धि मैं तुम दोनों के स्वामी, सबके आदि परब्रह्म से बारम्बर नमस्कार के द्वारा लग्न होता हूँ। मेरी यह स्तुति श्रेष्ठ विद्वान् की भाँति सर्वत्र फैल जाए। जिससे अविनाशी परमात्मा के समस्त पुत्र जो दिव्य लोकों में निवास करते हैं सुनें ?

जिस स्थिति में अग्नि प्रकट करने के लिए अरणियों द्वारा मथे जाने की भाँति अग्नि रूप परमात्मा को प्राप्त करने के लिए ॐ के ध्यान और चिन्तन से मन्थन किया जाता है। जहाँ प्राणवायु का भली-

भाँति निरोध किया जाता है। जहाँ आनन्द रूप सोमरस अधिकता से पैदा होता है। उसी स्थिति में मन सर्वथा विशुद्ध हो जाता है।

सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक परमात्मा द्वारा प्राप्त हुई प्रेरणा से सब के आदि कारण उसी परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। तू उस परमात्मा में ही आश्रय प्राप्त कर। इसमें तेरे पूर्व संचित कर्म विघ्न नहीं डालेंगे।

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि सिर, गला और छाती इन तीनों को एक साथ सीधा करके समस्त इन्द्रियों को मन के द्वारा हृदय में रोक कर ॐ रूप नौका द्वारा समस्त भयावह स्रोतों के प्रवाहों को पार कर जाए।

इस प्रकार के भोग साधन में आहार-बिहार का संयम रखकर विधिवत् प्राणायाम करके, प्राण के सूक्ष्म हो जाने पर नाक के छेद से उसे बाहर निकाल दे। उसके बाद जैसे सारथी दुष्ट घोड़ों से युक्त रथ को सावधानी से चलने वाले मार्ग पर ले जाता है उसी प्रकार मन को भी सावधानी से वश में रखना चाहिए।

इस प्रकार मन को बशीभूत करने के लिए कंकड़, आग, बालू से रहित सब प्रकार से शुद्ध, शब्द, जल, वायु के दृष्टि से उपयुक्त नेत्रों को कष्ट न देने वाले वायु-शून्य स्थानों में अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार का योग साधन करते समय पहले कुहरा, धुआँ, सूर्य, वायु, और अग्नि के सदृश, तथा जुगनू, बिजली, स्फटिक मणि और चन्द्रमा के समान बहुत-से दृश्य योगी के समान प्रकट होते हैं। ये सब योग की सफलता के सूचक होते हैं।

पृथिवी जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वों का उत्थान योगाभ्यास करने से हो जाता है। और इन पांचों तत्त्वों

से सम्बन्ध रखने वाली भोग सम्बन्धी पाँचों प्रकार की सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। उस समय योगाग्निमय शरीर को प्राप्त करने वाले उस साधक को न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न उसकी मृत्यु होती है।

इसके अतिरिक्त शरीर में हल्कापन आ जाता है, किसी प्रकार का रोग नहीं होता, विषयों से मन विरक्त हो जाता है। शरीर का रंग निखर जाता है। स्वर मधुर हो जाता है। शरीर से एक प्रकार की सुगन्धि निकलने लग जाती है। मल- मूत्र कम मात्रा में पैदा होता है, इन्हें भोग की पहली सिद्धि कहते हैं।

जैसे चमकता हुआ रत्न मिट्टी से लिपटा रहने पर मलिन रहता है। किन्तु वही धुल जाने पर चमकने लगता है, उसी प्रकार जीवात्मा का असली रूप अत्यन्त स्वच्छ होने पर भी अनेक जन्मों के मलिन कर्मों से ढका रहता है। लेकिन ध्यान योग द्वारा मनुष्य जब इसे स्वच्छ कर लेता है तब वह निर्मल बन जाता है और अकेला ही मोक्ष पद को प्राप्त कर शोक, क्लेश रहित हो जाता है।

फिर जब वह साधक इसी स्थिति में दीपक के तुल्य प्रकाशमान आत्मतत्त्व के द्वारा ब्रह्मतत्त्व को भली-भाँति देख लेता है, उस समय वह उस अजन्मा, निश्चल, समस्त तत्त्वों से विशुद्ध परमात्मा को जान कर सभी बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार का वह ब्रह्म सभी दिशाओं, अवान्तर दिशाओं में में व्याप्त है। सबसे पहले वही हिरण्य गर्भ रूप में प्रकट हुआ था। वही समस्त ब्रह्माण्ड रूप गर्भ में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। वही इस जगत् के रूप में प्रकट है। वही भविष्य में भी प्रकट होगा।

होगा। अन्तर्यामी रूप से वह सभी जीवों के हृदय में बैठा हुआ है। उसके चारों ओर मुख हैं।

जो परमात्मा अग्नि में है, वही जल में है। जो समस्त लोकों में है, वही औषधियों और जो वनस्पतियों में है उस परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं। नमस्कार करते हैं।

तीसरा अध्याय

जो एक—अद्वितीय परमात्मा जगत् रूप जालकी रचना करके अपनी स्वरूप भूत शक्तियों द्वारा उसपर शासन करता है तथा उन विविध शक्तियों द्वारा सम्पूर्ण लोकों पर शासन करता है, जो अकेला ही सृष्टि और उसके विस्तार करने में समर्थ है, उस ब्रह्म को जो बुद्धिमान जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

जो अपनी स्वरूपभूत शक्तियों द्वारा इन सभी लोकों पर एक ही शासन करता है, वह रुद्र है। इसलिए ज्ञानी पुरुषों ने जगत् के कारण का निश्चय करते समय दूसरे का आश्रय नहीं लिया। वह परमात्मा समस्त जीवों के भीतर स्थित हो रहा है। सम्पूर्ण लोकों की रचना करके उनकी रक्षा करने वाला परमात्मा प्रलयकाल में इन सबको समेट लेता है।

एक होते हुए भी उस परमात्मा की आँखें सभी स्थान हैं। सब जगह मुख हैं। सब जगह हाथ और सब जगह पैर हैं। आकाश और पृथिवी की रचना करने वाला वह एक मात्र परमात्मा मनुष्य आदि को दो-दो बाहों से युक्त करता है। तथा पक्षी, कीट, पतंग आदि को पँखों से युक्त करता है।

जो रुद्र, इन्द्र आदि देवताओं का रचयिता, पालक, पोषक है तथा समस्त विश्व का अधीश्वर और महान् ज्ञानी है। जिसने

पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह परमेश्वर हम सबको शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

हे रुद्रदेव, आपकी जो भयानकता से रहित पुण्य से प्रकाशित होने वाली कल्याणी सौम्य मूर्ति है, हे गिरिशन्त, (पर्वत पर रहते हुए सभी लोकों को सुख पहुँचाने वाले) परमेश्वर, उस परम सौम्य मूर्ति से ही हमारी ओर कृपा करके देखें।

हे गिरिशन्त, जिस बाण को फेंकने के लिए तू हाथ में धारण किए हुए है। हे गिरित्र, जगत् को नष्ट न कर।

जो जीव समुदाय रूप जगत् से और हिरण्यगर्भ ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ है, समस्त प्राणियों में उनके शरीर के अनुरूप होकर छिपा हुआ है। समस्त जगत् को सब ओर से घेरे हुए है, सर्वत्र व्याप्त और महान् है, उस एक मात्र परमात्मा को जान कर ज्ञानी लोग सदा के लिए अमर हो जाते हैं।

मैं महान् से भी महान् उस परमात्मा को जानता हूँ, जो अविद्या रूप अन्धकार से सर्वथा परे है। सूर्य की भाँति स्वयं प्रकाशमान है। उसे जान कर ही लोग मृत्यु को लाँघ जाते हैं। परमपद की प्राप्ति के लिए इसके सिवा और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

जिससे बढ़कर श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, जिससे बढ़कर न तो कोई सूक्ष्म है, और न महान् है। जो अकेला ही वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से आकाश में स्थित है। उसी परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।

पूर्वोक्त हिरण्यगर्भ से जो सब प्रकार से श्रेष्ठ और महान् है, वह निराकार और निर्दोष है। जो इस परमात्मा को जान लेते हैं वे

अमर हो जाते हैं, परन्तु इस रहस्य को न जानने वाले दूसरे लोग बार बार दुःख को ही प्राप्त होते हैं।

वह भगवान् सब ओर शिर और सब ओर मुख वाला है। समस्त प्राणियों के हृदय में निवास करता है। सर्व व्यापी है। इसलिए वह कल्याण रूप परमात्मा सभी जगह पहुँचा हुआ है।

निश्चय ही यह महान् प्रभु, सब पर शासन करने वाला, अविनाशी, प्रकाशस्वरूप, परमात्मा अपने प्राप्ति रूप निर्मल लाभ की ओर अन्तः करण को प्रेरित करने वाला है।

अंगूठे के परिमाण वाला अन्तर्यामी परमात्मा सदैव मनुष्यों के हृदयों में निवास करता है, मन का स्वामी है, तथा निर्मल हृदय और शुद्ध मन से ध्यान करने पर प्रकट होता है। जो साधक इसे जान जाता है, वह अमर हो जाता है।

हजारों शिर वाला, हजारों आँख वाला, और हजारों पैर वाला वह परमात्मा समस्त जगत् को सब ओर से घेर कर नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदय में स्थित है।

जो हो चुका है, जो होने वाला है और जो खाद्य पदार्थों से इस समय बढ़ रहा है वह समस्त जगत् पुरुष परमात्मा ही है और वही अमृत स्वरूप मोक्ष का स्वामी है।

वह परमात्मा सब जगह हाथ-पैर वाला, सब जगह आँख व, शिर और मुख वाला तथा सब जगह कानों वाला है, वही ब्रह्माण्ड में सब ओर से घेर कर स्थित है।

जो परमात्मा इन्द्रिय रहित होकर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों का ज्ञाता है। तथा सब का स्वामी और शासक है और सबसे बड़ा आश्रय है। उसी की शरण में जाना चाहिए।

सम्पूर्ण स्थावर और जंगम जगत् को वशीभूत रखने वाला वह प्रकाशमय परमात्मा, नवद्वार वाले शरीर रूप नगर में अन्तर्यामी रूप से स्थित देही है। वही बाहरी जगत् में भी लीला कर रहा है।

हाथ और पैरों से रहित वह परमात्मा सभी वस्तुओं को ग्रहण करने वाला है, बड़े वेग से सर्वत्र गमन करता है, आँखों के बिना ही सब कुछ देख लेता है। कानों के बिना सब कुछ सुन लेता है। सभी वस्तुओं का वेत्ता है लेकिन उसे जानने वाला कोई नहीं है। ज्ञानी लोग उसे महान् आदि पुरुष कहते हैं।

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महत्तर वह परमात्मा जीव की हृदय रूप गुफा में छिपा है। सबकी रचना करने वाले परमात्मा की कृपा से जो मनुष्य उस संकल्प रहित परमात्मा को तथा उसकी महिमा को देख लेता है, वह सभी दुःखों से मुक्त होकर परमात्मा को ही प्राप्त कर लेता है।

वेद के रहस्य ज्ञाता ज्ञानी लोग जिसे अजन्मा तथा नित्य बतलाते हैं। उस सर्व व्यापक, सर्वात्मा, निर्विकार अमृत और पुराण पुरुष परमात्मा को मैं जानता हूँ।

चौथा अध्याय

जो परमात्मा निर्विकार निराकार होकर भी सृष्टि के आदि में किसी अज्ञात प्रयोजनवश विविध शक्तियों से युक्त अनेक रंग, रूप धारण करता है। तथा अन्त में यह सम्पूर्ण जगत् जिसमें विलीन हो जाता है, वह परमदेव हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

वही अग्नि है, वही सूर्य, वायु, चन्द्रमा तथा अन्यान्य प्रकाशमाननक्षत्र आदि एवं जल, प्रजापति और ब्रह्मा है। योगी उसी ब्रह्म की विभूतियाँ हैं, इन सब के अन्तर्यामी वे ही है। अतः ये सब उन्हीं के स्वरूप हैं।

हे भगवान्, आप स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी, आदि सब के रूप में प्रकट हैं आपही बूढ़े होकर लकड़ी के सहारे चलते हैं। आपही विराट् रूप में प्रकट होकर सब ओर मुख किए हुए हैं।

आपही नील रंग के भौंरा हैं तथा हरे रंग और लाल आँखों वाले तोता हैं। आपही बिजली से युक्त मेघ हैं, बसन्त आदि सभी ऋतुएँ एवं सातों समुद्र आपही के रूप हैं। क्योंकि आपही से सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुए हैं। आपही अनादि प्रकृति के स्वामी तथा सर्व व्यापक हैं।

अपने ही समान तीनों गुणों से युक्त अनेक जीव समुदायों को रचने वाली तथा लाल, सफेद और काले रंग की एक अजा (प्रकृति) को निश्चय ही एक अज (जीव) आसक्त हुआ भोगता है। दूसरा अज (ज्ञानी) इस भोगी हुई अजा (प्रकृति) को त्यागता है।

यह मनुष्य-शरीर एक पीपल के वृक्ष की तरह है। ईश्वर और ये दोनों सदा साथ रहने वाले मानो दो पक्षी मित्र हैं। ये दोनों उस शरीर रूप वृक्ष के हृदय रूप कोटर में एक साथ निवास करते हैं। सुख, दुःख रूप कर्मफल मानो इस पीपल के दो फल हैं। इन फलों को जीवात्मा रूप एक पक्षी तो बड़े स्वाद से खाता है, दूसरा ईश्वर रूप पक्षी खाता नहीं सिर्फ देखता रहता है।

उपर्युक्त शरीर रूप वृक्ष के एक ही हृदय रूप घोंसले में परमात्मा के साथ रहने वाला यह जीवात्मा जब तक अपने साथी ईश्वर की ओर नहीं देखता, इस शरीर में आसक्त होकर मोह में निमग्न रहता है, तब तक असमर्थता और दीनता से मोहित हुआ विविध प्रकार के दुखों को भोगता है। जब कभी इस पर भगवान की अहैतु की कृपा हो जाती है तब यह अपने से भिन्न

अपने मित्र परमात्मा को पहचान लेता है। साधकों, ज्ञानियों द्वारा निरंतर सेवित परमात्मा को तथा उसकी महिमा को जो संसार में विभिन्न रूपों से प्रकट हो रही है जब यह देख लेता है, उस समय तत्काल शोक रहित हो जाता है।

जिस परमात्मा में समस्त देवताओं का निवास है, उस अविनाशी परमधाम में सम्पर्ण वेद स्थित हैं, जो मनुष्य उसको नहीं जानता वह वेदों के द्वारा क्या कर सकेगा। लेकिन जो उस परमात्मतत्व को जान लेते हैं, वे तो उस परमधाम में सदैव वास करते हैं।

ज्योतिष्टोम आदि विशेष यज्ञ, तथा विविध प्रकार के यज्ञ, उनके नियम तथा और भी जो कुछ भूत, भविष्य वर्तमान पदार्थ हैं, जिनका वर्णन वेदों में पाया जाता है—इन सबको प्रकृति के अधिष्ठाता परमात्मा ही अपने पाँच तत्वों से रचते हैं। तथा दूसरा जीवात्मा माया के द्वारा बँधा हुआ है।

भगवान् की शक्ति रूप प्रकृति माया है और मायापति महेश्वर को समझना चाहिए। उसी के अंगभूत कार्य-कारण समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है।

परब्रह्म परमात्मा ही हर योनि का अधिष्ठाता है। जिसमें यह समस्त जगत् प्रयलकाल में विलीन हो जाता है, और सृष्टि-काल में विविध रूपों में प्रकट हो जाता है, उस सर्वनियन्ता, वरदायक, स्तुति करने योग्य परमदेव को तत्व से जानकर मनुष्य निरन्तर बनी रहने वाली परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है।

सब को अपने अधीन रखने वाले जो रुद्र रूप भगवाान् समस्त देवताओं को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सबके स्वामी और सर्वज्ञ हैं, जिन्होंने सृष्टि आदि में उत्पन्न हुए हिरण्य गर्भ को

देखा था, वे परमदेव परब्रह्म हम लोगों को अच्छी बुद्धि से संयुक्त करें।

जो समस्त देवों के अधिपति है, जिसमें समस्त लोक सब प्रकार से आश्रित हैं, जो इस दो पैर वाले और चार पैर वाले समस्त जीव समुदाय का शासन करता है। उस आनन्द स्वरूप परमदेव परमात्मा को हम श्रद्धा भक्ति द्वारा हवि स्वरूप भेंट समर्पण कर उसकी पूजा करें।

जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, सबके हृदय रूप गुहा स्थान के भीतर छिपा हुआ है। जो अखिल विश्व का रचयिता है। आस्वयं विश्व रूप होकर अनेक रूप धारण किए हुए है। जो निराकार रूप से सम्पूर्ण जगत् को सब ओर से घेरे हुए है। उस सर्वोपरि महेश्वर को जानकर मनुष्य सदा रहनेवाली, अनन्त, अविनाशी और अतिशय शान्ति को प्राप्त करता है।

वही परमात्मा समय पर सभी ब्रह्माण्डों की रक्षा करता है। वही सम्पूर्ण जगत् का अधिपति और सम्पूर्ण प्राणियों में छिपा हुआ है। जिसमें ब्रह्मर्षि और देवतागण भी ध्यान के द्वारा संलग्न रहते हैं। उस परमात्मा को इस प्रकार जानकर मनुष्य मृत्यु के बन्धनों को काट डालता है।

जो मक्खन में रहने वाली चिकनाई की भाँति सब का सार एवं अत्यन्त सूक्ष्म है, उस कल्याण स्वरूप परमदेव परमात्मा को समस्त प्राणियों में छिपा हुआ तथा समस्त जगत् को सब ओर से घेर कर उसे व्याप्त किए हुए जानकर मनुष्य सभी बन्धनों से सदा के लिए छूट जाता है।

सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, जगत् के उत्पादक परमात्मा सदैव सभी मनुष्यों के हृदय में भली-भाँति स्थित है। तथा हृदय, बुद्धि

और शुद्ध मन से ध्यान करने से वह प्रकट हो जाता है। जो साधक उस रहस्य को जान लेता है, वह अमर बन जाता है।

जब अज्ञानमय अन्धकार का सर्वथा अभाव हो जाता है, उस समय अनुभव में आनेवाला तत्त्व न दिन है, न रात है। न सत् है और न असत् है। केवल विशुद्ध रूप कल्याणमय शिव ही है। वह सर्वथा अविनाशी है, यह सूर्य देवता द्वारा पूजा जाता है। उसी से यह पुरानी प्रज्ञा फैलती है।

यह परमात्मा न ऊपर, नीचे, दायें-बायें और न बीच ही में पकड़ा जा सकता है। जिसका नाम ही 'महद्यश है। उसकी कोई उपमा नहीं है।

इस परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप दृष्टि के सामने नहीं टिकता, इसे कोई भी अपनी आँखों से नहीं देख सकता। जो साधक हृदय में स्थित इस परमात्मा को हृदय और मन के द्वारा जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं।

हे रुद्र, (सब के संहारक) आप अजन्मा हैं—यह समझकर जन्म और मृत्यु के भय से डरा हुआ कोई मनुष्य संसार चक्र से छुटकारा पाने के लिए आपकी शरण लेता है। मैं भी जन्म और मृत्यु से छुटकारा पाने की इच्छा रखकर आपकी शरण में आया हूँ। अतः आपका जो दाहना (कल्याणमय) मुख (स्वरूप) है, उसके द्वारा आप मुझे जीवन-मरण के महान् भय से सदा के लिए मुक्त कर दें।

हे सब के संहारक भगवान् रुद्र, हम लोग विविध प्रकार की भेंट लेकर सदैव रक्षा के लिए आपको बुलाया करते हैं, क्योंकि आप ही हमारी रक्षा करने में समर्थ हैं। अतः हमारी प्रार्थना है,

कि आप हम पर क्रुद्ध न हों और हमारे पुत्रों, पौत्रों को, हमारी आयु को तथा गौओं, घोड़ों आदि पशुओं को कभी किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाएँ। और जो हमारे समाज के पुरुष हैं उनका भी नाश न करें।

पाँचवाँ अध्याय

जो परमात्मा ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ है, अपनी माया में ही छिपा आ है। असीम और अविनाशी है। जिसके आधार पर अविद्या और विद्या दोनों टिकी हुई हैं। वही पूर्ण ब्रह्म है। यहाँ पर विनाशशील जड़ वर्ग को अविद्या और अविनाशी जीव समुदाय को ही विद्या कहा गया है। तथा जो विद्या और अविद्या पर शासन करता है—वह इन दोनों से सर्वथा भिन्न है, विलक्षण है।

इस संसार में देव, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि जितनी भी योनियाँ हैं, तथा प्रत्येक योनि के जितने भी रूप और उनके कारण हैं उन सब पर जो अकेला ही आधिपत्य रखता है। सबसे पहले उत्पन्न होकर जो कपिल ऋषि (हिरण्यगर्भ) को सब प्रकार के ज्ञानों से परिपुष्ट बनाता है। जिसने उस कपिल (ब्रह्म) को सबसे पहले उत्पन्न होते हुए देखा था वही वह परमात्मा है।

वह परमात्मा इस संसार क्षेत्र में सृष्टि के समय बुद्धि, आकाश आदि अपनी प्रकृतियों के एक-एक जाल को अनेक भागों में बाँट कर प्रलय काल में उनका संहार करता है। वही परमात्मा पुनः सृष्टि काल में पहले की भाँति समस्त लोकपालों की रचना करके स्वयं सब पर अधिपत्य करता है।

जैसे सूर्य सभी दिशाओं को ऊपर नीचे इधर-उधर सब ओर से प्रकाशित करता हुआ देदीप्यमान होता है। उसी प्रकार सभी के ऐश्वर्यों से संम्पन्न, उपासना करने योग्य वह परमात्मा अकेला

ही समस्त कारण रूप अपनी भिन्न-भिन्न शक्तियों पर आधिपत्य करता है।

जो समस्त विश्व का परमकारण है और समस्त तत्त्वों की शक्ति रूप स्वभाव को अपने संकल्प रूप तप से पकाता है। तथा समस्त पकाये जाने वाले पदार्थों को विविध रूपों में परिवर्तित करता है, जो अकेले ही तीनों गुणों का सम्बन्ध जीवों के साथ जोड़ता है और इस विश्व का शासन करता है - वह परमात्मा है।

वही परमात्मा वेदों की रहस्यविद्या-उपनिषद् में छिपा हुआ है। वेद भी उसी के निःश्वास बनकर उसी से प्रकट हुए हैं। ऐसे उस परमात्मा को ब्रह्म जानता था। इसीलिए वह उसी में तन्मय होकर अमृत रूप हो गया।

जो जीव माया में फँसा हुआ है वही जन्म और मरण रूप चक्र में घूमता है। जो तीनों गुणों से रहित हो गया है, वह नहीं घूमता। तीनों गुणों से बँधा हुआ जीव अनेक प्रकार के कर्म-फल रूप भोगों की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के कर्म करता है और अपने किए हुए कर्मों का फल भोगने के लिए अनेक योनियों में जन्म लेकर विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। वह जहाँ भी जिस योनि में पैदा होता है, वहाँ तीनों गुणों से बँधा रहता है। मरने पर वह देवयान, पितृयान और पैदा होना तथा मरना इन तीन रास्तों से जाता है। जब तक वह मोक्ष नहीं प्राप्त करता तब तक संसार चक्र में घूमता रहता है।

मनुष्य के हृदय को अंगूठे की नाप के बराबर मानकर उसे अंगुष्ठ मात्र कहा गया है। वहीं पर जीवात्मा का निवास स्थान है। वह सूर्य की भाँति प्रकाशमय तथा संकल्प और अहंकार से युक्त है। बुद्धि के गुणों के कारण तथा अपने गुणों के कारण सूजे

की नोक की तरह सूक्ष्म आकार वाला है—ऐसा परमात्मा से भिन्न जीवात्मा भी निःसन्देह ज्ञानियों द्वारा देखा गया है।

वह जीवात्मा कितना सूक्ष्म है यह बताने के लिए ऋषि कहता है—कि मान लीजिए एक बाल की नोक के हम सौ टुकड़े कर लें, फिर उसमें से एक टुकड़े के पुनः सौ टुकड़े कर लें, अर्थात् बाल की नोक के दस हजार भाग करने पर उसमें से एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है उसके समान जीवात्मा का स्वरूप समझना चाहिए। और वह अनन्त भाव होने में समर्थ है।

वह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है, और नपुंसक ही है। वह जिस शरीर को ग्रहण करता है उससे संयुक्त होकर वह वैसा ही बन जाता है। अर्थात् जीवात्मा सभी भेदों से रहित और उपाधियों से शून्य है।

संकल्प, स्पर्श, दृष्टि, मोह, भोजन, जलपान और वृष्टि इन सबसे प्राणियों के सजीव शरीर की वृद्धि और उत्पत्ति होती है। यह जीवात्मा भिन्न-भिन्न लोकों में कर्मानुसार मिलने वाले भिन्न-भिन्न शरीर को क्रम से बार-बार प्राप्त होता रहता है।

यह जीवात्मा अपने कर्मों के गुणों से तथा शरीर के गुणों से युक्त होने के कारण, अहंता, ममता, आदि अपने गुणों के वशीभूत होकर अनेक स्थूल और सूक्ष्म रूपों को स्वीकार करता है। उनके संयोग का कारण दूसरा भी देखा गया है।

दुस्तर संसार के भीतर व्याप्त, आदि-अन्त से रहित, समस्त विश्व के रचयिता अनेक रूप धारण कर समस्त संसार को घेरे हुए अद्वितीय परमात्मा को जान कर मनुष्य समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

वह परमात्मा शरीर रहित है तथा संसार का उत्पादक और संहारक है। सोलह कलाओं को भी वही पैदा करता है। ऐसा होने पर भी वह परमानन्द परमात्मा श्रद्धा और भक्ति से ग्रहण किया जा सकता है। जो मनुष्य ऐसे परमात्मा को जान लेता है वह शरीर से सम्बन्ध तोड़कर मुक्त हो जाता है।

छठा अध्याय

कितने ही विद्वान् लोग स्वभाव को जगत् का कारण बताते हैं। कुछ लोग काल को जगत् का कारण बताते हैं। लेकिन ऐसे सब लोग वस्तुतः मोह ग्रस्त हैं—वे वास्तविक कारण नहीं जानते। सच पूछा जाय तो सम्पूर्ण जगत् में केवल परमात्मा की ही महिमा का विस्तार है। जिसके द्वारा यह संसार चक्र घुमाया जा रहा है।

जिस परमात्मा से यह समस्त संसार घिरा हुआ है। ज्ञान-स्वरूप परमात्मा काल का भी महाकाल है। सर्वगुण सम्पन्न और सर्वज्ञ है, उससे ही शासित यह संसार रूप कर्म विभिन्न प्रकार से चल रहा है और पृथिवी, जल, आकाश आदि पाँचों तत्त्व भी उसी के शासन के अधीन हैं—ऐसा भाव रखकर भगवान् का चिन्तन करना चाहिए।

परमात्मा ने अपनी मूल शक्ति प्रकृति से स्थूल महाभूतों आदि की रचना करके उसका निरीक्षण किया। फिर जड़ तत्त्व के के साथ चेतन तत्त्व का सम्बन्ध जोड़कर अनेक रूपों में दिखाई देने वाले संसार की रचना की।

जो आदमी तीनों गुणों से युक्त कर्मों का आरंभ करके उनको तथा समस्त भावों को परमात्मा को समर्पित कर देता है तो उसके उन कर्मों का अभाव हो जाने पर उस आदमी के पूर्व जन्म के संचित कर्म-समुदाय का भी नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मों क

नाश हो जाने पर वह साधक परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि वह जीवात्मा वास्तव में चेतन है।

वह आदि कारण परमात्मा, तीनों कालों से सर्वथा अतीत एवं काल रहित होने पर भी प्रकृति के साथ जीव का संयोग कराने में कारणों का भी कारण देखा गया है। अपने अन्तःकरण में स्थित उस विश्व रूप एवं जगत् में प्रकट, स्तुति करने योग्य पुराण-पुरुष परमात्मा की उपासना कर उसे प्राप्त करना चाहिए।

जिसकी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से यह संसार प्रवाह रूप से निरन्तर चलता रहता है, वह परमात्मा इस संसार वृक्ष, काल और आकृति से सर्वथा परे और भिन्न है। फिर भी वह परमात्मा धर्म को बढ़ाता है, पापों का नाश करता है और समस्त ऐश्वर्यों का अधिपति और जगत् का आधार है। यह समस्त संसार उसी पर टिका हुआ है। वह परमात्मा अन्तर्यामी रूप से हमारे हृदय में भी रहता है। इस प्रकार उसे जान कर योगी परमगति को प्राप्त कर लेता है।

उस अधीश्वरों के भी अधीश्वर, देवताओं के परम देवता, स्वामियों के महान् स्वामी तथा समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी, स्तुति करने योग्य प्रकाश स्वरूप परमात्मा को हम लोग सबसे परे जानते हैं।

न तो उसके शरीर रूप कार्य है और अन्तःकरण तथा इन्द्रिय रूप करण ही है। न तो कोई उससे बड़ा है और न कोई उसके समान है। ऐसे परमात्मा की ज्ञान, जल, और क्रिया रूप स्वाभाविक दिव्यशक्ति नाना प्रकार से सुनी जाती है।

संसार में उस परमात्मा का कोई स्वामी नहीं है और न उस पर किसी का शासन है। उसका कोई विशेष चिह्न नहीं, वह सब का

कारण तथा सभी कारणों अधिष्ठाताओं का अधिपति है। कोई भी न तो उसका उत्पादक है और न स्वामी है।

जैसे मकड़ी अपने ही जाल के ढक जाती है, उसी प्रकार परमात्मा ने अपने को अपनी स्वरूप भूत शक्ति से उत्पन्न अनन्त कार्यों द्वारा स्वभाव से ही छिपा रखा है। ऐसा परमात्मा हम लोगों को अपने परब्रह्म रूप में आश्रय दे।

एक परमात्मा समस्त प्राणियों के हृदय रूप गुहा में छिपा हुआ है। वही सर्वव्यापी और अन्तर्यामी है। वही सभी कर्मों का अधिष्ठाता, कर्मानुसार फल देने वाला और समस्त प्राणियों का निवास स्थान है। वही सब के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाला साक्षी है। सभी को चेतना प्रदान करने वाला है और सर्वथा शुद्ध-बुद्ध निर्लेप है।

जो विशुद्ध चेतन स्वरूप परमात्मा अकेला ही अनेक निष्क्रिय-जीवों का शासक है। जो एक ही प्रकृति रूप बीज अनेक रूपों में बदल देता है। उस हृदय में स्थित परमात्मा को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं—उन्हीं को परमानन्द की प्राप्ति होती है, दूसरों को नहीं।

जो एक ही चेतन परमात्मा अनेक चेतन आत्माओं के कर्म फलों के भोगों का विधान करता है, उस ज्ञान योग और कर्म योग से प्राप्त करने योग्य सब के कारण स्वरूप परमदेव परमात्मा को जानकर मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

न तो सूर्य का प्रकाश फैल सकता है, और न चन्द्रमा, तारा गण ही प्रकाशित हो सकते हैं तथा बिजलियाँ भी वहाँ तक नहीं पहुँच पाती तब भला फिर यह लौकिक अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकता है। क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर उसी के प्रकाश से

बतलाए हुए सूर्य आदि सब उसके पीछे प्रकाशित होते हैं। उसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

उस ब्रह्माण्ड के मध्य में एक प्रकाश स्वरूप परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। वही जल में स्थित अग्नि है। उसे जानकर ही मनुष्य मृत्यु रूप संसार समुद्र से सर्वथा पार हो जाता है। दिव्य परमधाम के लिए और कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है।

वह ज्ञान स्वरूप परब्रह्म जगत् का उत्पादक, सर्वज्ञ अपने ही में अपने को प्रकट करने का कारण है। उसे प्रकट करने को और कोई दूसरा कारण नहीं। वह काल का भी महाकाल है। क्योंकि कालातीत है। दिव्य गुणों से सम्पन्न, सर्वत्र, प्रकृति और जीवात्मा का स्वामी; सभी गुणों का शासक तथा जन्म-मृत्यु रूप संसार में बाँधनेवाला, बाँधकर रखने और फिर मुक्त करने वाला है।

वह परमात्मा स्वस्वरूप में स्थित, अमृत स्वरूप एकरस है। सभी लोकपालों का स्वामी है। समस्त ब्रह्माण्ड की रक्षा वही सर्वज्ञ, परमात्मा ही करता है। वही संसार का नियंत्रण और संचालन करता है। संसार पर शासन करने के लिए दूसरा कोई उपयुक्त कारण है ही नहीं।

जो परमात्मा निश्चय ही सबसे पहले अपने नाभि-कमल से ब्रह्मा को उत्पन्न करता है। और उत्पन्न करके उसे समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है। जो अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए साधकों के हृदय में वैसी ही बुद्धि प्रकट करता है। ऐसे परमदेव की शरण मैं मोक्ष की इच्छा रखकर ग्रहण करता हूँ।

कलाओं से रहित, क्रिया रहित, सर्वथा शान्त, निर्दोष, निर्मल, अमृत के परमसेतु रूप तथा जले हुए ईंधन से युक्त आग की भाँति मैं उस परमात्मा का चिन्तन करता हूँ।

जब मनुष्यगण आकाश को चमड़े की तरह लपेट सकेंगे तब भी बिना परमात्मा का ज्ञान हुए दुःख समुदाय का अन्त नहीं हो सकेगा।

यह बात प्रसिद्ध है कि श्वेताश्वतर ऋषि ने तप के प्रभाव से; परमात्मा की अहैतुकी कृपा से उसे जान लिया था। फिर उन्होंने ऋषि समुदाय से सेवित परम पवित्र इस ब्रह्म-तत्त्व का आश्रम के अभिमान से परे अधिकारियों को उत्तम रूप से उपदेश किया था।

यह परम रहस्य ज्ञान पूर्वकल्प में भी वेदों के अन्तिम भाग उपनिषद् भली-भाँति वर्णित हुआ था। जिस मनुष्य का अन्तः-करण अशान्त रहता हो उसे इस रहस्य का उपदेश नहीं देना चाहिए। तथा जो अपना पुत्र अथवा शिष्य न हो उसे भी यह उपदेश न देना चाहिए।

जिस मनुष्य की परमात्मा में अगाध निष्ठा है, तथा परमात्मा की भाँति गुरु में भी वह अगाध निष्ठा रखता है, उस मनस्वी परुष के हृदय में ही ये बताए हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। उसी महात्मा के हृदय में प्रकाशित होते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

———

१०

छान्दोग्यउपनिषद्

यह उपनिषद् सामवेद का एक ब्राह्मण छान्दोग्य है। जिसमें दस प्रपाठक हैं। उनमें से प्रथम दो को छोड़कर शेष आठ प्रपाठक छान्दोग्य उपनिषद् कहलाते हैं। इसका मुख्य-विषय उपासना है। ओंकार को इसमें उद्गीथ (श्रेष्ठगान) कहा गया है। उपनिषद्कारने प्रणव और उद्गीथ को ओंकार का पर्यायी माना है। इसमें अनेक उपयोगी आख्या-यिकाएँ भी है। पहली आख्यायिकाके प्रसंग में एक 'आसुरो-पनिषद्' का भी उल्लेख किया गया है।

पहला प्रपाठक

पहला खण्ड

शान्ति पाठ

हे ईश्वर, मेरे सभी अंग, सभी इन्द्रियाँ, सभी प्राण, सभी शक्तियाँ और सभी ओज पुष्टि एवं वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषदों में वर्णित सर्वरूप ब्रह्म को मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी निराकरण न करे। मुझे सदा अपनाये रखे। ब्रह्म का और मेरा सम्बन्ध सदा अटूट बना रहे। उपनिषदों में

वर्णित समस्त धर्म मुझ में सदैव प्रकाशित होते रहें। मुझ में निरन्तर बने रहें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(त्रिविध ताप शान्त हों)

उच्चस्वर से गाये जाने वाले अविनाशी ओंकार की उपासना करनी चाहिए। क्योंकि ओंकार ही उद्गीथ (श्रेष्ठ गान) है। उसकी उपासना का व्याख्यान आगे किया जा रहा है।

समस्त तत्वों का सारभूत रस पृथिवी है। पृथिवी का सार जल है। जल का सार अन्न और औषधियों हैं। औषधियो का सार पुरुष है। पुरुष का सार वाणी है। वाणी का सार ऋचाएँ हैं। ऋचाओं का सार सामगान है और सामगान का सार ओंकार—उद्गीथ—श्रेष्ठ गान है।

ब्रह्म का वाच्य ओंकार ब्रह्म रसों में क्रम से आठवाँ रस, सम्पूर्णरसों में परम श्रेष्ठ, सर्वोच्च स्थान है।

कौन-कौन ऋचा, कौन-कौन साम, कौन-कौन श्रेष्ठ गान है यह विचारणीय है। वाणी ही ऋचा है, प्राण ही साम है, यह रक्षक ईश्वर ही उद्गीथ—ओंकार है। वह यह जोड़ा है। जो वाणी और प्राण है और यही ऋचा और साम है।

निश्चय ही यह ओंकार अक्षर अनुमति सूचक है। मनुष्य जो कुछ अनुमति देता वह ॐ ही कहता है। अनुमति देना ही परम ऐश्वर्य है। यह कामनाओं को पूरा करने वाला और बढ़ाने वाला है। इस प्रकार इस अविनाशी ओंकार को मानते हुए विद्वान् लोग इसकी उपासना करते हैं।

इस ओंकार के साथ तीन विद्याएँ हैं। ॐ ही को अध्वर्यु सुनाता है, ॐ ही की स्तुति करता है और उद्गाता ॐ ही का गान करता है। ये सब क्रियाएँ इसी अविनाशी ॐ की उपासना के लिए होती हैं। इसी की महिमा से और इसी की कृपा से।

इस प्रकार से जो ॐ को जानता है और जो नहीं जानता है, वे दोनों इस ओंकार की सहायता से काम करते हैं। लेकिन विद्या और अविद्या भिन्न-भिन्न हैं। विद्या से, श्रद्धा से, और उपनिषद् की शिक्षा से मनुष्य जो काम करता है वह बहुत ही फलदायक होता है। जो कुछ कहा गया है वह निश्चय ही इसी ओंकार का व्याख्यान है।

ऐसा सुना जाता है, कि प्रजापति की दोनों सन्तानें देवता और असुर जिस समय प्रसिद्ध देवासुर संग्राम के लिए प्रवृत्त हुए, उस समय देवताओं ने असुरों को जीतने की इच्छा से उच्चस्वर से ओंकार का गान गाया।

उन देवताओं ने नासिका में स्थित प्राण को अधिष्ठित कर ॐ की उपासना उस समय शुरू कर दी, तब असुरों ने उस प्राण को पापों से बींध दिया। जिससे जीव सुगन्धि और दुर्गन्ध दोनों सूँघता है। क्योंकि पाप से यह प्राण बिंधा हुआ है।

तब देवता वाणी के द्वारा ॐ की उपासना करने लगे. उस वाणी को भी असुरों ने पाप से बींध दिया। इसलिए उस वाणी से मनुष्य सच और झूठ दोनों बोलता है। क्योंकि पाप से यह वाणी बिंधी हुई है।

तब देवता कान से ॐ की उपासना करने लगे। आँखों को भी असुरों ने पापसे बींध दिया। इसलिए मनुष्य आँखों से देखने योग्य और न देखने योग्य वस्तुओं को देखता है, क्योंकि आँखें पाप सेबिंधी हुई हैं।

तब देवता कान से ॐ की उपासना करने लगे। असुरों ने कानों को भी पाप से बींध दिया। इसलिए मनुष्य सुनने योग्य और न सुनने योग्य बातें कानों से सुनता है। क्योंकि कान पाप से बिंधे हुए हैं।

तब देवता मन से ॐ की उपासना करने लगे। असुरों ने मन को भी पाप से बींध दिया। इसलिए मनुष्य संकल्प करने योग्य और न करने योग्य दोनों का संकल्प करता है। क्योंकि यह मन पाप से बिंधा रहता है।

तब देवताओं ने ज्योंही श्रेष्ठ प्राण के द्वारा ॐ की उपासना शुरू की त्योंही असुर-समूह उसे पाकर इस प्रकार छिन्न भिन्न हो गया जैसे कठोर पत्थर को पाकर मिट्टी का ढेला चूर-चूर हो जाता है।

जैसे कठोर चट्टान से टकरा कर मिट्टी का ढेला चूर-चूर हो जाता है, वैसे ही वह मनुष्य चूर-चूर हो जाता है, इस प्रकार जानने वाले के सम्बन्ध में पाप करना चाहता है और जो ॐ स्वर से ॐ का गान करने वाले को सताता है उसके लिए वह उद्‌गीथविद् कठोर पत्थर बन जाता है।

यह मुख्य प्राण पापरहित है, इससे मनुष्य सुगन्धि और दुर्गन्ध को नहीं जानता। इसके द्वारा वह जो खाता-पीता है उससे इन्द्रियों की रक्षा होती है। इसी प्राण को मरते समय तक न पाकर चल देता है। अन्त समय तक मुँह खुला रहता है मानो मुख में रहने वाले प्राण को वापस बुलाना चाहता है।

कहा जाता है, कि उस प्रणव की उपासना अंगिरा ऋषि किया करते थे। अंगों का जो रस है उसी को अंगिरस कहा जाता है।

प्रसिद्ध है कि उसी प्राण को लक्ष्य करके वह स्पाति नाम के एक

ऋषि उस उद्‌गीथ (ॐ) की उपासना किया करते थे। निश्चय ही वाणीं को वृहती रहते हैं, उसका यह पति है। इसी को प्राण रूप बृहस्पति मानते हैं।

सुना जाता है, कि उसी प्राण को लक्ष्य करके आयास्य नाम के कोई ऋषि उस उद्‌गीथ (ॐ) की उपासना किया करते थे। प्राण रूप आयास्य उसी को कहा जाता है जो मुख से (आस्यात्) ज्ञान देता हैं (अयते)।

यह भी कहावत प्रसिद्ध है, कि उसी प्राण को आधार मानकर किसी दाल्भ्य नामक ऋषि के पुत्र बक ऋषि ने उद्‌गीथ (ॐ) को जाना था। वे नैमिषारण्य क्षेत्र में होने वाले प्रसिद्ध यज्ञ के उद्‌गाता हुए। वह उनके लिए कामनाओं के लिए गान करते थे—यज्ञ द्वारा उनकी इच्छाओं को पूरी किया करते थे।

जो इस अविनाशी ॐ की उपासना करता है, वह निश्चय ही सभी कामनाओं का पूरक (आगाता) बन जाता है। शरीर की उपमा से यह अध्यात्म उपासना का वर्णन है।

तीसरा खण्ड

अब देवताओं की उपमा से उद्‌गीथ (ॐ) की उपासना पर विचार करते हैं—जो वह सूर्य तप रहा है, उसकी दृष्टि से उस उद्‌गीथ की उपासना करनी चाहिए। उदय होता हुआ यह सूर्य ऐसा जान पड़ता है। मानो समस्त जनता के लिए उद्‌गीथ का गानकर रहा है। उदय होता हुआ हव अन्धकार के भय दूर कर देता है। जो उपासना ऐसा समझ लेता है—निश्चय ही वह अन्धकार के भय का विनाशक होता है।

यह प्राण और यह सूर्य समान ही हैं। यह प्राण और यह सूर्य दोनों अष्टम हैं। इस प्राण को स्वर कहते हैं औउस सूर्य

को भी स्वर प्रत्यास्वर कहते हैं। इसलिए इस प्राण और सूर्य की दृष्टि से उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए।

अब व्यान वायु को ही उद्गीथ मान उसी दृष्टि से उद्गीथ (ॐ) की उपासना का विधान बताया जाता है—जो वायु को बाहर निकालता है, वह प्राण है, जो वायु को भीतर ले जाता है वह अपान है। जो प्राण और अपान की सन्धि है वह व्यान है। जो व्यान है वह वाणी है। इसीलिए श्वास को निकाले, खींचे बिना वह वाणी को बोलता है।

जो वाणी है, वह ऋक् है, इसलिए श्वास खींचे और निकाले बिना वह ऋचा को बोलता है। जो ऋक् है, वह साम है, इसलिए श्वास निकाले या खींचे बिना वह साम का गान करता है। जो साम है वह उद्गीथ (ॐ) है। इसलिए श्वास, खींचे या निकाले बिना वह उद्गीथ का गान करता है।

रगड़ कर आग निकालना, संग्राम में दौड़ना, कठोर धनुष को खींचना आदि जो पराक्रम साध्य कर्म हैं, उन्हें यह व्यान बिना श्वास निकाले और खींचे ही कर लेता है। इसलिए व्यान को लक्ष्य में रखकर उद्गीथ (ॐ) की उपासना करनी चाहिए।

इसके बाद यह आवश्यक है, कि उद्गीथ के उद्+गी+थ इन अक्षरों पर विचार किया जाए। उद्गीथ के इन तीनों अक्षरों में से 'उत्' प्राण है, क्योंकि प्राण से वह ऊपर उठता है। 'गी' गी:गिरा—वाक् है। क्योंकि वाणी को 'गिर' कहा जाता है। 'थ' अन्न है। क्योंकि यह सब कुछ निश्चय ही अन्न में स्थित है।

'उद्' द्यौ है। 'गी' आकाश है। 'थ' पृथिवी है। सूर्य ही उद् है। वायु 'गी' है। 'थम्' अग्नि है। सामवेद 'उद्' है, यजुर्वेद 'गी:' है और ऋग्वेद 'थम्' है 'उद्' गी 'थ' उद्गीथ इन अक्षरों को

जानता हुआ जो इसकी उपासना करता है, उसके लिए वाणी स्वयं दूध दुह देती है। जो वाणी का दूध है और वह अन्न उसका भोक्ता है।

अब इसके बाद उपासक की कामनाओं की पूर्ति और वृद्धि पर विचार किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि उपसरणों की उपासना करे। उपसरण का शब्दार्थ 'दौड़कर समीप जाना है।' यहाँ पर उपासना के सम्बन्ध में विचारणीय विषयों को उपसरण कहते हैं। जिस सामवेद के मंत्र से स्तुति करनी हो उस साम की उपासना करनी चाहिए। जिस ऋचा में वह साम हो उस ऋचा पर विचार करना चाहिए। जो उस ऋचा का ऋषि हो उसका तथा मंत्रस्थ विषय के देवता और उसके विषय का चिन्तन करना चाहिए।

जिस छन्द के द्वारा स्तुति करनी हो उस छन्द का चिन्तन करे, सामवेद के जिस स्तुति समूह से स्तुति करनी हो उस स्तोम का चिन्तन करे।

जिस दिशा को लक्ष्य में रखकर स्तुति करनी हो उस दिशा का चिन्तन करे। अन्त में आलस्य रहित होकर अपनी कामना पर विचार करते हुए आत्मा के समीप यानी आत्मस्थित होकर स्तुति करे। जो जिस कामना के लिए स्तुति करेगा, उसकी वह कामना शीघ्र पूरी होगी।

चौथा खण्ड

ॐ इस अविनाशी उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए। ॐ ही निश्चय गायन करता है। उसी का व्याख्यान है।

मृत्यु से भयभीत होकर देवतागण निश्चय ही तीनों विधाओं में प्रविष्ट हुए। उन्होंने छन्दों से अपने को ढाँक लिया। क्योंकि इन छन्दों से देवों ने अपने को ढाँका था इसलिए यही छन्दों का छन्दस्त्व है।

छन्दों से ढँके हुए उन देवों को मृत्यु ने ऋक्, साम और यजु मंत्रों में देखा। जब उन देवों न यह जान लिया तो वे ऋक्, साम और यजु मंत्रों से ऊपर होकर स्वर ही में प्रविष्ट हुए।

जब मनुष्य निश्चित रूप ऋचा को प्राप्त होता है—ओंकार का ही श्रद्धा से उच्चारण करता है। इसी प्रकार साम एवं यजु मंत्रों के प्रारंभ में ओम् का उच्चारण करता है। निश्चय ही यही ओम् स्वर है। जो यह अविनाशी, अमृत और अभय है। उसमें प्रविष्ट होकर देवगण अमृत और अभय हो गए।

जो विद्वान् इस प्रकार अक्षर अविनाशी ओम् को जानता है, उसकी स्तुति करता है; वह इस अक्षर, अमृत, अभय स्वर ओंकार में प्रविष्ट होता है। जैसे देवगण अमर हुए वैसे ही मनुष्य भी उसमें प्रविष्ट होकर अमर हो सकता है।

पाँचवाँ खण्ड

यह जो प्रसिद्ध उद्गीथ है, वही ओंकार है। जो ओंकार है वही उद्गीथ है। निश्चय ही यह सूर्य उद्गीथ है—यह ओंकार है। क्योंकि यह ओंकार ही उच्चारण करता हुआ जाता है।

ऐसा कहा जाता है, कि कौषीतकि ऋषि ने अपने पुत्र से कहा था कि इसी को मैंने अच्छी तरह गाया था। इसलिए तू मेरा एक पुत्र है, तू सूर्य की किरणों को बार-बार अपने चारों ओर ले, निःसंदेह

तेरे अनेक पुत्र पैदा होंगे। यह अधिदैवत—देवतापरक वाक्य समाप्त हुआ।

अब शरीर सम्बन्धी उपमा से बताया जाता है—मुख में रहने वाला यह जो श्रेष्ठ प्राण है, उसको लक्ष्य करके उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए। क्योंकि यह प्राण ओंकार का उच्चारण करता हुआ चलता है।

कौषीत कि ऋषि अपने पुत्र से बोले इसी को मैंने अच्छी तरह गाया था। इसलिए मेरा तू एक पुत्र है। तू प्राण के समान सबके आश्रय ओंकार को अच्छी तरह गाना। निःसन्देह तेरे अनेक पुत्र होंगे।

जो यह जानता है, कि जो उद्गीथ है वह प्रणव है और जो प्रणव है वह उद्गीथ है, वह होता के आसन से ही निश्चय दुष्टगान को ठीक कर देता है।

छठा खण्ड

यह पृथिवी ही ऋग् है, अग्नि साम है। वह यह सामवेद इस ऋग्वेद में लीन है। इसलिए ऋग्वेद में अंतर्निहित साम वेद गाया जाता है। यह पृथिवी सा=अग्नि=अम=साम है। पृथिवी और अग्नि दोनों मिलकर साम कहे जाते हैं।

अन्तरिक्ष ऋग्वेद है, वायु सामवेद है। वह सामवेद इस ऋग्वेद में अन्तर्निहित है। इसलिए ऋग्वेद में अन्तर्लीन सामवेद गाया जाता है अन्तरिक्ष ही सा=वायु—अम+साम है। वायु और अन्तरिक्ष मिलकर साम हैं।

द्यौ ऋग्वेद है। आदित्य साम। वह इस ऋग्वेद में अन्तर्निहित साम है। इसलिए ऋग्वेद में अन्तर्लीन साम गाया जाता है। द्यौ

ही सा और आदित्य ही अम है। दोनों मिलकर साम कहे जाते हैं।

नक्षत्र ही ऋग्वेद है चन्द्रमा सामवेद है। वह सामवेद ऋग्वेद में अन्तर्लीन है, इसलिए ऋग्वेद में अन्तर्लीन साम गाया जाता है। नक्षत्र ही "स" चन्द्र 'अम' है। इसलिए दोनों मिलकर साम हैं।

इससे बाद आदित्य की जो शुक्ल आभा है, वही ऋग्वेद है। और जो अत्यन्त कृष्ण है वह सामवेद है। वह सामवेद ऋग्वेद में अन्तर्लीन है। इसलिए ऋग्वेद में अन्तर्लीन गाया जाता है। आदित्य की शुक्ल आभा ही "सा" और अत्यन्त कृष्ण "अम" है। इसलिए दानों मिलकर साम हुए।

अब आदित्य की जो यह शुक्ल ज्योति है वही 'सा' है और जो अत्यन्य कृष्ण है वह अम' है और आदित्य के मध्य में जो हिरण्यमय पुरुष दिखायी देता है, ज्योति जिसकी दाढ़ी है। ज्योति जिससे बाल हैं। नाखूनों तक सभी कुछ जिसका ज्योतिर्मय है।

जैसे काला कमल और श्वेत कमल होता है। ऐसे ही उसके नेत्र हैं। उसका 'उत्' यह नाम समस्त पापान्धकार को दूरकर उदय होता है। जो यह जानता है, वह निश्चय ही समस्त पापान्धकार दूर कर उदय होता है।

उसके गाने वाले ऋक् और साम हैं। इसलिए वह उद्गीथ है। (श्रेष्ठ गान) इसी लिए वह उद्गाता (श्रेष्ठ गानेवाला) है। वह यह ओम् जो उस आदित्य लोक से श्रेष्ठ लोक है। उनका देवता विषयक तथा विद्वानों की कामनाओं का स्वामी है। देवता विषयक उपमा समाप्त हुई।

सातवाँ खण्ड

अब वही विषय शरीर की दृष्टि से समझाया जाता है। वाक् इन्द्रिय ही ऋक् है, प्राण-साम है। वही यह प्राण रूप साम वाणी रूप ऋक् में भली भाँति स्थित है। इसीलिए ऋक् में प्रतिष्ठित साम का गान किया जाता है। वाणी ही 'सा' है और प्राण—'अम' है। दोनों मिल कर साम हैं। इसी प्रकार नेत्र ही ऋक् है, और उसके भीतर का काली पुतली साम है। वही वह आँख की पुतली रूप साम नेत्र रूप ऋक् में भलीभाँति स्थित है। इसलिए ऋक् में प्रतिष्ठित साम का गान किया जाता है। नेत्र ही 'सा' है और पुलती 'अम' है। वे दोनों ही मिलकर साम हैं। श्रोत्र ही ऋक् है, मन साम है। यही वह मन रूप साम श्रोत्र रूप ऋक् में प्रतिष्ठित है। इसीलिए ऋक् में प्रतिष्ठित साम का गान किया जाता है। श्रोत्र ही 'सा' है और मन 'अम' है। दोनों मिलकर साम हैं। तथा यह जो नेत्रों की सफेद चमक है—वही ऋक् है। जो नीली—अत्यन्त श्याम रंग की आभा है, वही साम है। वही यह श्याम आभा रूप साम श्वेत रूप ऋक् में प्रतिष्ठित है। इसीलिए ऋक् मेंप्रतिष्ठित साम का गान किया जाता है। तथा यह जो नेत्र की श्वेत आभा है, वही 'सा' है और जो नीली तथा अत्यन्त श्याम आभा है वही 'अम' है। इन दोनों का मिला जुला रूप ही 'साम' है। पुनः यह जो नेत्र के भीतर पुरुष झलक पड़ता है, वही ऋक् है, वही साम है, वही यजुर्वेद है, वही उक्थ—स्तोत्र समूह है और वही ब्रह्म है। इस पुरुष का वही रूप है, जो पीछे आदित्य-मण्डल में स्थित पुरुष का रूप बताया जा चुका है। जो इसके गुण गान हैं, वही उसके गुण गान हैं। जो उसका नाम है, वही इसका भी नाम है। पृथिवी से नीचे जो भी लोक हैं उनका शासन यही पुरुष करता है। मनुष्यों के भोग भी इसी के अधीन हैं इसलिए वीणा के स्वरों में जाने वाले लोग इसी परमात्मा का गुण

गान करते हैं। इसी से वे लोग धन और इच्छित फल प्राप्त करते हैं। इस रूप में इस रहस्य का ज्ञाता जो उपासक साम गान करता है, वह नेत्र तथा आदित्य मण्डल स्थित परमपुरु ष का गुण गान करता है। वह उस परमात्मा से ही अपना अभीष्ट प्राप्त करता है। सूर्य लोक से ऊपर जितने भी लोक हैं, उन सब को तथा समस्त अभीष्ट फलों को वह ईश्वर के द्वारा प्राप्त कर लेता है। साथ ही सूर्य लोक अथवा मनुष्य लोक से नीचे जितने लोक हैं उनको तथा मनुष्यों द्वारा भोगे जाने वाले समस्त भोगों को भी वह इस परमात्मा के द्वारा प्राप्त कर लेता है। इसलिए निश्चय पूर्वक इस रहस्य का मर्मज्ञ उद्गाता यजमान से यह कहे कि—'मैं तेरे लिए कौन-सी मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति के लिए सामगान करूँ।' क्योंकि जो इस प्रकार से इस रहस्य को जान लेता है वह समस्त भोग सुखों को गान द्वारा आवाहन करने में समर्थ होता है।

आठवाँ खण्ड

यह बात प्रसिद्ध है, कि ऋषि शालावान् के पुत्र शिलक, चिकितायन के पुत्र दाल्भ्य और जीवल के पुत्र प्रवाहण ये तीन ऋषि उद्गीथ का तत्त्व जानने में बड़े कुशल थे। एक दिन बैठे हुए तीनों आपस में बातें कर रहे थे कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम लोग उद्गीथ (श्रेष्ठगान) विद्या में बड़े निपुण हैं तो फिर क्यों न आपस ही में इस विद्या के सम्बन्ध भली भाँति विचार-विनिमय कर लिया जाए। तीनों की राय एक हो जाने पर वे सब उद्गीथ पर विचार करने के लिए सुख से बैठ गए। इसके बाद उनमें से प्रसिद्ध राजर्षि जीवल के पुत्र प्रवाहण ऋषि बोले—पहले आप दोनों पूज्य महानुभाव उद्गीथ विद्या पर वार्ता प्रारंभ करें। आप जैसे विद्वान् ब्राह्मणों के उपदेश-वचन मैं सुनूँगा—यह कह करके वह चुप हो गए।

कहा जाता है, कि तब शालावान् के पुत्र शिलक ऋषि चिकितायन के पुत्र दाल्भ्य से वोले—कहिए तो मैं ही पूर्वपक्ष लेकर आप से प्रश्न करूँ। दाल्भ्य ने कहा—हाँ ठीक है पूछो ?

शिलक—साम का आश्रय कौन है ?

दाल्भ्य—स्वर ही साम का आश्रय है।

शिलक—स्वर का आश्रय कौन है ?

दाल्भ्य—प्राण ही स्वर का आश्रय है ?

शिलक—प्राण का आश्रय कौन है ?

दाल्भ्य—अन्न ही प्राण का आश्रय है।

शिलक—अन्न ही का आश्रय कौन है ?

दाल्भ्य—जल ही अन्न का आश्रय है।

शिलक—जल का आश्रय कौन है ?

दाल्भ्य—स्वर्ग लोक ही जल का आश्रय है।

शिलक—उस लोक का आश्रय कौन है।

दाल्भ्य—स्वर्ग लोक से आगे नहीं जाना चाहिए, उससे आगे की बात नहीं पूछनी चाहिए। हम स्वर्ग लोक ही में साम की पूर्णतया स्थित मानते हैं। इसीलिए साम को स्वर्ग लोक मानकर उसकी स्तुति की जाती है।

शिलक—दाल्भ्य, तुमने साम का जो स्वरूप बताया है वह बहुत ही छिछला है—प्रतिष्ठा रहित है। स्वर्ग का कोई न कोई आश्रय अवश्य होना चाहिए। यदि कोई साम तत्त्व का वेत्ता विद्वान् तुम्हारे इस अधूरे उत्तर पर झुंझलाकर यह कह दे कि तुम्हारा शिर गिर जाएगा तो निश्चय ही तुम्हारा शिर गिर पड़ेगा।

दाल्भ्य—तो फिर श्रीमान् जी आपही साम का तत्त्व बतला दीजिए ?

शिलक—हाँ मैं साम का तत्व समझा सकता हूँ।

दाल्भ्य—तो फिर बताइए स्वर्गलोक का आधार कौन है ?

शिलक—मनुष्य लोक ही उसका आधार है।

दाल्भ्य—मनुष्य लोक का आधार कौन है ?

शिलक—जो सब की प्रतिष्ठा है, उस लोक से आगे प्रश्न नहीं करना चाहिए। मनुष्य लोक ही में हम सब की प्रतिष्ठा मानते हुए साम की स्थिति मानते हैं। क्योंकि साम रूप से पृथिवी ही की स्तुति की जाती है।

तब जीवल के पुत्र प्रवाहण ने शिलक से कहा—

शालावान् के पुत्र शिलक, तुम्हारा समझा हुआ साम तत्त्व भी निःसन्देह अधूरा है। अतः यदि कोई साम तत्व जानने वाला तुम्हारे इस अधूरे उत्तर पर झुँझलाकर तुम्हारे शिर को गिर जाने का शाप दे दे तो निश्चय ही तुम्हारा शिर गिर जाएगा।

शिलक—तो क्या इसका रहस्य आपसे मालूम हो सकेगा।

प्रवाहण—अवश्य मैं बता सकता हूँ।

नवाँ खण्ड

शिलक—ने प्रवाहण से पूछा—इस मनुष्य लोक का आश्रय कौन है ?

प्रवाहण—आकश अर्थात् सर्वत्र व्यापक रहने वाले परमात्मा ही इसके आश्रय हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त जीव आकाश से ही उत्पन्न होते हैं। क्योंकि आकाश ही इन सबसे महान् है—इन सब का परम आश्रय है। वह आकाश स्वरूप परमात्मा ही सबसे बड़ा उद्गीथ है। वह अनन्त है। जो उपासक

इस प्रकार समझ कर उद्गीथ की उपासना करता है, उसका जीवन ऊँचा से ऊँचा हो जाता है और वह निश्चय ही बड़े-बड़े लोगों को जीत लेता है—प्राप्त कर लेता है। एक बार शुनक के पुत्र अति धन्वा नाम के ऋषि ने उदरशाण्डिल्य नाम के ऋषि को इसी उगीथ—रहस्य का उपदेश देते हुए उनसे कहा था—तेरी वंश परम्परा में लोग जब तक इस उद्गीथ को जानते रहेंगे तब तक इस लोक में उनका जीवन साधारण मनुष्यों से अत्युत्तम—श्रेष्ठ रहेगा। मरने के बाद उन्हें परमपद मिलेगा। निश्चित है।

दसवाँ खण्ड

कुरुप्रदेश में महावतों (हाथीवानों) का एक गांव था, वहाँ पर चक्र मुनि के पुत्र उषस्तिमुनि अपनी पत्नी—जो अभी तक पूर्ण युवती भी नहीं बन पायी थी—के साथ बड़ी गरीबी से दिन बिता रहे थे। दुर्भाग्य से ऐसे ही समय में ओलों के गिरने से समस्त कुरुप्रदेश की खेती चौपट हो गयी। बड़ा भारी अकाल पड़ गया। भीख मांग कर गुजर करने वाले मुनि उषस्ति ने भूख के मारे एक दिन एक महावत को अत्यन्त निकृष्ट उड़द खाते हुए देखकर उससे उड़द की याचना की। महावत ने कहा जितने उड़द इस बरतन में रखे हुए मैं खा रहा हूँ—बस इतने ही मेरे घर भर में हैं, इनसे अतिरिक कुछ भी नहीं है। मुनि ने कहा—इन्हीं में से मुझे कुछ दे दीजिए? अपने खाने से बचे हुए सारे उड़दों को महावत ने मुनि उषस्ति की झोली में उँड़ेल दिया। ऋषि उन्हें खाने लगे। महावत ने कहा खाकर जल भी पीलीजिए। ऋषि ने कहा--नहीं मैं तुम्हारा जूठा जल नहीं पी सकता।

महावत बोला—तो क्या ये उड़द जूठे नहीं थे ?

ऋषि ने कहा—अवश्य जूठे थे, लेकिन इन उड़दों को न खाने पर मैं जीवित न रहता--पीने का जल तो मुझे सर्वत्र मिल सकता है।

उषस्ति ऋषि ने खाने से बचे हुए उड़द घर लाकर अपनी पत्नी को दे दिया। पत्नी को पहले से ही कुछ खाने को भीख मिल गयी थी, इसलिए उसने उन उड़दों को रख दिया। सवरे सो कर जागने के बाद उषस्ति ने कहा—हाय, यदि थोड़ा-सा भी अन्न खाने को मिल जाता तो मैं कुछ धन कमा लाता। अमुक राजा यज्ञ करने वाला है वह मुझे ऋत्विज् पद पर वरण कर लेगा।

ऋषि पत्नी ने कहा—स्वामिन्, कल आपने जो उड़द मुझे दिए थे, वह रखे हैं, ले लीजिए ? उन्हें खाकर उषस्ति राजा के यज्ञ में गए।

वहाँ पहुँच कर वह उस स्थान पर बैठ गए जहाँ उद्गाता लोग स्तुति गान करने के लिए बैठे हुए थे। उन्होंने स्तुति करने वाले प्रस्तोता से कहा—

प्रस्तोता, जिस देवता की स्तुति करने तुम जा रहे हो उसे यदि जाने बिना तुम स्तुति करोगे तो समझ लो तुम्हारा शिर धड़ से अलग हो जाएगा। फिर उद्गाता से बोले—उद्गाता जिस देवता का तुम उद्गीथ करने जा रहे है। उसे बिना जाने यदि उद्गान करोगे तो समझ लो तुम्हारा शिर गिर जाएगा। इसके बाद उन्होंने प्रतिहर्त्ता से कहा--प्रतिहर्त्ता, यदि तुम बिना जाने समझे प्रतिहार करोगे तो तुम्हारा शिर अलग हो जाएगा।

यह सुनकर सभी ऋत्विक् अपना अपना काम छोड़कर चुपचाप बैठ गए।

ग्यारहवाँ खण्ड

तब उस यजमान् राजा ने उषस्ति से पूछा—भगवन्, मैं आप का पूर्ण परिचय जानना चाहता हूँ। उषस्ति ने कहा—मैं चषस्ति चाक्रायण हूँ।

राजा बोला—मैंने इन समस्त ऋत्विक् कर्म के लिए आपकी तलाश की। आपके न मिलने पर मैंने अन्य ऋत्विकों का वरण किया। किन्तु अब मेरे इस यज्ञ के ऋत्विक् कर्म के लिए आपही रहें। ऋषि ने तथेति (बहुत अच्छा) कहकर अपनी स्वीकृति दे दी।

इसके बाद उषस्ति ने कहा—मेरे आदेश से पहले वरण किए गए ऋत्विक् लोग ही स्तुति प्रारंभ करें। लेकिन एक बात है जितना धन उन ऋत्विकों को दिया जाए—उतना ही मुझे भी दें। राजा ने—ऐसा ही होगा—कहकर अपनी स्वीकृति दे दी।

इसके बाद प्रस्तोता ऋषि उषस्ति के पास आ कर बोला—भगवन्, आपने मुझसे कहा था कि जिस देवता की तुम स्तुति करने जा रहे हो उसको जाने बिना यदि प्रस्ताव करोगे तो तुम्हारा शिर गिर जाएगा। तो कृपया यह बतलाइए कि वह कौन देवता है।

उषस्ति ने कहा—वह देवता प्राण है। ये जितने प्राणी हैं, सब प्राण से ही उत्पन्न होते हैं और अन्त में जाकर प्राण ही में विलीन हो जाते हैं। यही देवता प्रस्ताव में विद्यमान है। यदि इसे जाने बिना तुम स्तुति आरंभ कर देते तो मेरे आदेश देने पर भी तुम्हारा शिर गिर जाता—अवश्य गिर जाता।

तदनन्तर उद्गाता ने आ कर उषस्ति से कहा—भगवन्, अपने मुझसे कहा था कि हे उद्गाता, जो देवता उद्गीथ में विद्यमान

है, उसे जाने विना यदि तुम उद्गान करोगे तो तुम्हारा शिर गिर जाएगा। इसलिए कृपया बताइए कि वह देवता कौन है ?

ऋषि उषस्ति ने कहा—वह देवता सूर्य है। निश्चय ही ये सब प्राणी आकाश में स्थित सूर्य का गान करते हैं। वही यह सूर्य उद्गीथ से सम्बन्ध रखने वाला देवता है। उसे विना जाने हुए यदि तुम उद्गान करते तो मेरे कथनानुसार तुम्हारा शिर धड़ से अलग होकर गिर जाता। अवश्य गिर जाता।

इसके बाद प्रतिहर्त्ता ने आकर उषस्ति से कहा—भगवन्, आपने मुझसे कहा था--कि प्रतिहर्त्ता, जो प्रतिहार से सम्वन्ध रखने वाला देवता है, उसे बिना जाने यदि तुम प्रतिहार क्रिया करोगे तो तुम्हारा शिर गिर जाएगा। इसलिए मैं जानना चाहता हूँ, कि वह देवता कौन है।

उषस्ति ने उत्तर दिया कि वह देवता अन्न है, सभी प्राणी अन्न ही को खाकर जीवन धारण किया करते हैं। वही यह देवता प्रतिहार में है। उसको यदि न जानते हुए तुम मेरे कह देने से प्रतिहार करते तो तुम्हारा सिर धड़ से गिर पड़ता।

बारहवां खण्ड

अब यहाँ से शौव (कुत्ते के समान वृत्तिवाली इन्द्रियों का) उद्गीथ का वर्णन किया जाता है। वका, औदार्य्य, ग्लानि रहित सब के मित्र जीवात्मा ने स्वाध्याय करने का प्रयत्न किया। उसके लिए श्वेत शुद्ध प्राण (श्वेतः, श्वा) प्रकट हुआ। अन्य इन्द्रियाँ उसके समीप आकर बोलीं--भगवन् (प्राण) हमारे लिए अन्न का गान करें। हम भूखी हैं।

तब उन इन्द्रियों से वह प्राण बोलीं--यहाँ ही प्रातःकाल मेरे

निकट आओ। वहीं वक्ता, अविनाशी, दुःखरहित (मैत्रेय) और सब का मित्र जीवात्मा देखने लगा।

जैसे इस यज्ञ में बहिष्वमान स्तोत्र के द्वारा स्तुति करते हुए ऋत्विक् सम्मिलित होकर क्रमशः चलते हैं, वैसे ही निश्चय ही प्राण आदि वे इन्द्रियाँ मिलकर चलें। वे इन्द्रियाँ वहीं स्थित होकर साम गान करने लगीं।

हे सबके रक्षक ॐ हम भोजन करें, पान करें। हे भगवन् ॐ आप दिव्य गुण युक्त, स्वीकार करने योग्य प्रजापति और सविता हैं। हे अन्न पते, हमे अन्न दीजिए। ॐ।

तेरहवाँ खण्ड

यही पृथिवी लोक हो उकार है।[1] वायु हाउकार है। चन्द्रमा अथकार है। आत्मा इहकार है और अग्नि ईकार है।

आदि ऊकार है। आवाहन एक है। विश्वदेव औहोइकार है प्रजापति हिंकार है। प्राण स्वर अन्न और वक् विराट् हैं।

संचार, हुँकार, स्तोत्र सबसे संबंध रखने वाले ने ब्रह्म तेहरवाँ हुँकार नामा स्तोत्र है। वाणी इस स्तोभ यज्ञ के लिए स्वयं दूध दुहती है। जो वाणी का तूध है, जो सामवेद संबंधी इस उपनिषद् को जानता है। वह अन्नवान और अन्नाद होता।

---

[1] गाते समय गान को पूरा करने के लिए सागवेद के मंत्रों में बीच-बीच में हाउ, हाइ आदि शव्द को बढ़ा दिए जाते हैं। उन्हें स्तोभ य स्तोभाक्षर कहते हैं।

दूसरा प्रपाठक

पहला खण्ड

(ॐ) समस्त साम की उपासना निश्चय ही सुख देने वाली है। जो साधु होता है, उसको साम कहते हैं। जो असाधु होता वह असाम कहलाता है। इस विषय में और भी कहते हैं—जब कोई इस (राजा) के समीप सामद्वारा गया है—ऐसा कहा जाय तो तो उसका तात्पर्य साधुभाव से जाना ही होता है। और जब यह कहा जाय कि वह इसके समीप सामद्वारा गया है तो लोग यही समझते हैं कि वह इसके समीप असाधुभाव से गया है।

इसके अनन्तर ऐसा भी कहते हैं, कि हमारा साम (कल्याण) हुआ। और ऐसा भी कहते हैं कि हमारा असाम हुआ अर्थात् बड़ा अनर्थ हो गया। इसे इस प्रकार जानने वाला जो साम—साधु है। ऐसी उपासना करता है। उसके पास सभी शुभधर्म शीघ्र ही आ जाते हैं और उसके प्रति विनम्र हो जाते हैं।

दूसरा खण्ड

लोको में पाँच प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए। पृथिवी हिंकार, अग्नि प्रस्ताव, अन्तरिक्ष उद्गीथ, आदित्य प्रतिहार, द्यौलोक और निधन है—इस प्रकार ऊपर के लोकों में साम दृष्टि रखनी चाहिए।

अब अधोगत (नीचे उतरते हुए) लोकों के सम्बन्ध में साम की उपासना बतायी जा रही है। द्यौ हिंकार, आदित्य प्रस्ताव, अन्तरिक्ष उद्गीथ, अग्नि प्रतिहार और पृथिवी निधन है। जो आदमी इसे इस प्रकार जानकर पाँच प्रकार से साम की उपासना करता

है। उसके लिए ऊर्ध्व और अधोमुख लोक भोग्य रूप से उपस्थित होते हैं।

तीसरा खण्ड

वर्षा में पाँच प्रकार से साम की उपासना करनी चाहिए। वरसात लाने वालीपुरवा हवा हिंकार है। मेघ उत्पन्न होता है यह प्रस्ताव है। बरसता है यह उद्गीथ है। चमकना और गरजना प्रतिहार है। वर्षा का बन्द होना निधन है। जो इस साम को इस प्रकार जानता हुआ वृष्टि में पांच प्रकार के साम की उपासना करता है। निश्चय उसके लिए मेघ स्वयं बरसते हैं और वह दूसरों के लिए वरसता है।

चौथा खण्ड

समस्त जलों में पाँच प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए। घटायें बनकर इधर-उधर घिरते हुए बादल—हिंकार हैं। जो बरसता है वह प्रस्ताव। जो नल पूर्व की ओर बहता है वह उद्गीथ है। जो पश्चिम की ओर बहता है वह प्रतिहार है। और समुद्र निधन है जो इस प्रकार जानता हुआ ऐसे पाँच प्रकार के साम की उपासना करता है, निःसन्देह वह जलों में नहीं मरता। सर्वत्र जलवान् होता है।

पाँचवाँ खण्ड

ऋतुओं में पाँच प्रकार की सामोपासना करनी चाहिए। बसंत हिंकार, ग्रीष्म प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद् प्रतिहार और हेमन्त निधन है। जो ऐसा जानता हुआ ऋतुओं में इस साम की पाँच प्रकार की उपासना करता है, निश्चय उसके लिए ऋतुएँ अनुकूल वन जाती हैं।

छठा खण्ड

पशुओं में पाँच प्रकार से साम की उपासना करनी चाहिए। बकरा हिंकार, भेड़ प्रस्ताव, गौवें उद्गीथ, घोड़े प्रतिहार और पुरुष निधन है।

जो इस प्रकार जानता हुआ पशुओं में पाँच प्रकार से साम की उपासना करता है, उसके पशु होते हैं और वह पशुओं वाला होता है।

सातवाँ खण्ड

प्राणों में पाँच प्रकार के उत्तरोत्तर उत्कृष्ट साम की उपासना करनी चाहिए। प्राण-हिंकार, वाणी प्रस्ताव, नेत्र उद्गीथ, कान प्रतिहार और मन निधन है। ये निश्चयमेव उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। जो इस प्रकार जानता हुआ प्राण में इस पाँच प्रकार के साम की उपासना करता है। निश्चय ही उसका जीयन सर्वोत्कृष्ट होता है। वह प्रसिद्ध सर्वोत्तम लोकों को प्राप्त करता है। पाँच प्रकार की सामोपासना का वर्णन समाप्त हुआ।

आठवां खण्ड

अब साम प्रकार की सामोपासना का व्याख्यान किया जाता है। वाणी में सात प्रकार की सामोपासना करनी चाहिए। वाणी संबंधी जो हुँ अक्षर है वह हिंकार है। जो प्र अक्षर है, वह प्रस्ताव है और आ अक्षर आदिनायक साम है।

जो यह पद है, वह उद्गीथ, जो प्रतिशब्द है, वह प्रतिहार जो उप यह पद है, वह उपद्रव है, जो भ यह पद है, वह निधन है।

दूध जो वाणी का दुग्ध है, वाणी उसे स्वयं दुहती है। वह अन्नवान और अन्न का भोक्ता होता है--जो इस प्रकार जानता हुआ सात प्रकार की साम उपासना करता है।

नवां खण्ड

सूर्य दृष्टि से सात प्रकार की साम उपासना निश्चय ही करनी चाहिए। सूर्य सदैव समतामय है, इसलिए वह साम (सदृश) है।

सूर्य ही में सभी प्राणी आश्रित रहते हैं। ऐसा समझ कर सूर्योदय से पहले उसका जो रूप ह वह हिंकार है। सूर्य के उदय होने से पूर्व उसके रूप उषा पर सभी पशु आश्रय लेते है। इसलिए वे पशु उस समय हिंकारते हैं क्योंकि वे पशु इस साम-गान के भागीदार हैं।

उषा काल के बाद सूर्य का जो प्रथम उदय होता है वह प्रस्ताव है। इस रूप पर मनुष्यों का आश्रय रहता है। इसलिए वे मनुष्य स्तुति और प्रशंसा की इच्छा रखते हैं। क्योंकि वे इस सामगान रूप प्रस्ताव के हिस्सेदार होते हैं।

इसके बाद सूर्य के निकलने और उसकी किरणें फैलने का जो समय (संगव) होता है वह आदि है। पक्षीगण इस समय पर निर्भर रहते हैं। इसलिए वे आकाश में निराधार अपने कोटि का कर उड़ा करते हैं। क्योंकि इस साम गान की विधि में उनका भाग रहता है।

इसके बाद सूर्य का जो मध्यह्न काल होता है वह उद्गीथ है। विद्वान् लोग उस मुहूर्त्त के आश्रित रहते हैं। इसलिए वे प्रजापति द्वारा बनाए गए सभी पदार्थों में श्रेष्ठ हैं। क्योंकि इस साम गान के उद्गीथ में हिस्सेदार हैं।

मध्याह्न के बाद और अपराह्न से पहले का समय प्रतिहार है। इस मुहूर्त पर गर्भ निर्भर रहा करते हैं। इसलिए वे गर्भ प्रतिहार होकर नहीं गिरते हैं। क्योंकि इस साम के प्रतिहार में वे हिस्सेदार हैं।

अपराह्न के बाद और सूर्यास्त से पहले का समय उपद्रव है। सूर्य के इस मुहूर्त पर धान्य, पशु आश्रित रहते हैं। इसलिए वे पुरुषों को देखकर जंगल में अथवा अपने बिल में घुस जाते हैं। क्योंकि वे इस साम के उपद्रव के हिस्सेदार हैं।

दसवाँ खण्ड

आत्मा के समान मृत्यु को पार करने वाले सात प्रकार के साम की उपासना करें। हिंकार के हिं+का+र ये तीन अक्षर और प्र+स्ता+व प्रस्ताव के ये तीन अक्षर दोनों मिल कर सम—बराबर हुआ करते हैं।

आदि में आ+दि दो अक्षर और प्रतिहार में प्र+ति+हा+र चार अक्षर हैं। इस प्रतिहार से एक अक्षर लेकर इस आदि पद में जोड़ने के अक्षरों की समानता हो जाती है।

उद्गीथ के उ+द्+गी+थ तीन अक्षरों और उपद्रव के उ+प+द्र+व चार अक्षरों में तीन-तीन अक्षरों की समानता होती है—एक अक्षर बच रहता है। तीन अक्षरों से वे भी सम हैं।

नि+ध+न तीन अक्षरों वाला निधन अन्य तीन अक्षरों वाले पदों के बराबर होता है। निश्चय वे ये २२ अक्षर हैं।

इक्कीस अक्षरों से आदित्य को प्राप्त होता है। निश्चय यहाँ से वह आदित्य इक्कीसवाँ है। बाईसवें अक्षर से आदित्य से ज्योति को प्राप्त होता है। वह आनन्दमय है। दुःख से रहित है।

जो इस साम को ऐसा जानता हुआ परस्पर सामगान के अंगों की दृष्टि से बराबर मृत्यु को पार करने वाले सात प्रकार के साम को प्रयोग में लाता है तो इस लोक में वह आदित्य को प्राप्त होता है। और आदित्य को प्राप्त कर लेने के बाद वह ज्योति को प्राप्त करता है।

ग्यारहवाँ खण्ड

मन, हिंकार, वाणी, प्रस्ताव, पशु, उद्गीथ, श्रोत्र, प्रतिहार और प्राण निधन हैं। यह नाम का सामगान (गायत्र) है और प्राणों में पिरोया हुआ है।

इसलिए प्राणों में पिरोये हुए इस सामगान को जो इस प्रकार जानता है, वह प्राणी होता है; पूर्ण आयु प्राप्त करता है। उसका जीवन उज्ज्वल होता है, संतान, पशुओं से महान् बनता है। कीर्ति से महान् होता है, उदार हृदय वाला होता है। यही व्रत है।

बारहवाँ खंड

अरणियों को जो मथता है, वह हिंकार, उससे जो धुवाँ निकलता है वह प्रस्ताव, जो प्रज्वलित होता है वह उद्गीथ, जो अंगारे निकलते हैं वह प्रतिहार, जो बुझता है वह निधन। यह अग्नि में पिरोया हुआ रथन्तर नाम का साम है।

यज्ञाग्नि में ओत-प्रोत इस रथन्तर को जो इस प्रकार जानता है, वह ब्रह्मवर्चसी और अन्न भोक्ता होता है। उज्ज्वल जीवनवाला पशुओं और संतान से महान् होता है। महान् कीर्तिशाली होता है। यज्ञ आदि के समय यज्ञाग्नि के सम्मुख न तो आचमन करना चाहिए और न थूकना चाहिए। यही व्रत है।

तेरहवाँ खण्ड

स्त्री-पुरुष आपस में एक दूसरे को संकेत द्वारा बुलाना—यह हिंकार है, हाव-भाव दिखलाना प्रस्ताव है। स्त्री के साथ पुरुष का सोना उद्गीथ है। एक दूसरे की ओर मुँह करके सोना प्रतिहार है। इस प्रकार जो समय बीतता है वह निधन है। अतिशय भोग में लिप्त रहना जो निधन है वही यह मिथुन में पिरोया हुआ वामदेव्य साम है।

जो पुरुष इस प्रकार मिथुन में ओत-प्रोत वामदेव्य साम को जानता है, वह स्त्री-पुरुष के मैथुन का ज्ञाता होता है। उसका जोड़ा कभी नहीं फूटता। उसका कभी वियोग नहीं होता, मैथुन से उसके सन्तान उत्पन्न होती है। वह पूर्ण आयु का भोग करता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, तथा कीति के कारण महान् होता है। किसी भी पर-स्त्री का कभी अपहरण न करना चाहिए। कभी भी व्यभिचार न करे—यही व्रत है।

चौदहवाँ खण्ड

उदय होता हुआ सूर्य हिंकार है, उदित सूर्य प्रस्ताव है। मध्याह्न उद्गीथ है। अपराह्न प्रतिहार है, अस्त हुआ सूर्य निधन है, यह सूर्य में स्थित है, जो इस प्रकार इस बृहत्साम को सूर्य में स्थित बृहत्साम जानता है, वह तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है। वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यीतत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है। कीर्ति के कारण महान् होता है तपते हुए सूर्य की निन्दा न करे—यह व्रत है।

पन्द्रहवाँ खण्ड

बादलों का पूर्व जो आकाश में जुटता है—वह हिंकार है। उसका बादल बन जाना प्रस्ताव है। पानी का बरसना उद्गीथ और चमकना, गरजना प्रतिहार तथा वृष्टि का बन्द हो जाना निधन है। यह वैरूप साम मेघ में ओत-प्रोत है। जो पुरुष इस प्रकार इस वैरूप साम को जानता है वह सन्तान, पशु और ब्रह्म तेज से सम्पन्न हो जाता है। पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। कीर्ति से महान् होता है। बरसते हुए मेघ की निन्दा न करनी चाहिए। यह व्रत है।

सोलहवाँ खण्ड

बसन्त हिंकार, ग्रीष्म प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद् प्रतिहार, हेमन्त निधन है। इस प्रकार यह वैराज नाम का साम ऋतुओं से ओत-प्रोत है।

ऋतुओं में ओत-प्रोत इस वैराज साम को जो जानता है, वह सन्तान; पशु और ब्रह्मतेज से शोभित होता है। ऋतुओं की निन्दा न करे—यह व्रत है।

सत्रहवाँ खण्ड

पृथिवी, हिंकार, अन्तरिक्ष प्रस्ताव, द्यौ उद्गीथ, दिशाएँ प्रतिहार, और समुद्र निधन है। समस्त लोकों में ओत प्रोत ये शक्करी साम हैं।

लोक में ओत-पोत इस शक्करी नाम के साम को जो इस प्रकार जानता है, वह लोकवाला होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, उज्ज्वल जीवन रखता है। सन्तान और पशु से महान् होता है। कीर्ति से महान होता है, लोकों की निन्दा न करे—यह व्रत है।

अठारहवाँ खण्ड

बकरी हिंकार, भेड़ प्रस्ताव, गायें उद्गीथ, घोड़े प्रतिहार, और पुरुष निधन हैं। पशुओं में ओत-पोत यह रेवती नाम का साम-गान है।

पशुओं में ओत-प्रोत इस रेवती सामगान को जो इस प्रकार जानता है, वह पशुओं वाला होता है। पूर्ण आयु भोगता है। स्वच्छ जीवन व्यतीत करता है। प्रजा और पशुओं से महान् होता है। कीर्ति से महान् होता है। पशुओं की निन्दा न करे—यह व्रत है।

उन्नीसवाँ खंड

लोम हिंकार है। त्वचा प्रस्ताव है। मांस उद्गीथ है। अस्थि प्रतिहार है। चर्बी निधन है। अंगों में ओत-प्रोत यह यज्ञायज्ञिय नाम का सामगान है।

समस्त अंगों में ओत-प्रोत इस यज्ञायज्ञिय साम को जो इस प्रकार जानता है। वह उत्तम अंगों वाला होता है। उसका कोई अंग टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता। पूर्ण आयु प्राप्त करता है, निष्कलंक जीवन व्यतीत करता है। सन्तान और पशुओं से महान् होता है। उत्तम कीर्ति से महान् होता है। वर्ष में कभी मांस न खाए—यह व्रत है। निश्चय ही कभी मांस न खाये।

बीसवाँ खण्ड

अग्निहिंकार है, वायु प्रस्ताव है। आदित्य उद्गीथ है। नक्षत्र प्रतिहार है। चन्द्रमा निधन है। देवताओं में ओत-प्रोत यह राजन् नाम का सामगान है।

देवताओं में ओतप्रोत राजन नाम के इस सामगान को जो इस प्रकार जानता है। वह इन्हीं देवताओं के समान ऐश्वर्य और सायुज्य प्राप्त करता है। पूर्ण आयु प्राप्त करता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। प्रजा तथा पशुओं से महनता प्राप्त करता है। उत्तमकीर्ति से महान् बनता है। ब्राह्मणों—विद्वानों की निन्दा न करे—यही व्रत है।

इक्कीसवाँ खण्ड

ऋक्, साम और यजु ये तीन विद्याएँ हिंकार हैं। तीनों लोक प्रस्ताव हैं। अग्नि, वायु, आदित्य ये उद्गीथ हैं। नक्षत्र, पक्षी और किरणें प्रतिहार हैं। सर्प गन्धर्व और पितृगण निधन हैं। यह सामोपासना सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत है।

इसलिए जो कोई इस सामोपासना को जानता है—वह सब कुछ होता है। इस विषय में यह मंत्र भी कहा गया है—हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पांचों प्रकारों में जो तीन विद्याएँ कही गयी हैं उनसे महान् और उत्कृष्ट और कोई सामगान नहीं है। जो उस साम को जानता है, उसके लिए समस्त दिशाएँ बलि पदार्थ, देती हैं। 'मैं सब कुछ हूँ'—ऐसी भावना रखना व्रत है—यही व्रत है।

बाईसवाँ खण्ड

पशुओं के लिए हितकर और अग्नि संबन्धी उद्गीथ जो विशेष स्वर युक्तसामगान है—उसे मैं पसन्द करता हूँ। प्रजापति का सामगान अनिरुक्त—अति उत्तम है। सोम का सामगान निरुक्त—सुबोध है। वायु का सामगान श्लक्ष्ण—सुकोमल है। इन्द्र का सामगान तेजस्वी और कोमल है। बृहस्पति का सामगान क्रौंचपक्षी

की ध्वनि की तरह है। वरुण का सामगान फूटे हुये बर्तन की आवाज की तरह है। इनमें केवल वरुण का सामगान छोड़कर शेष सभी का उपयोग करना चाहिए।

मैं देवताओं–ब्रह्म वेत्ताओं के लिए अमरता का गान करूँ। पितरों—रक्षकों के लिए स्वधा का गान गरूँ मनुष्यों के लिए आशा का, पशुओं के लिए चारा और जल का, यजमान के लिए विशेष सुख के लिए और अपने लिए अन्न का गान करूँ।

इन सभी उपर्युक्त गानों का मन से ध्यान करते हुए आलस्य रहित होकर भगवान् की स्तुति करे।

सम्पूर्ण स्वर इन्द्र की आत्मा हैं। समस्त ऊष्मावर्ण (श, ष, स, ह) प्रजापति की आत्मा हैं। सभी स्पर्श वर्ण (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग, पवर्ग) मृत्यु की आत्मा हैं। वर्णों के इस उच्चारण क्रम को जो उद्गाता जानता है उसको यदि कोई स्वरों (अ, इ, उ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ) में अशुद्ध उच्चारण करने वाला ठहराए तो वह उससे यह कहे कि 'मैं इन्द्र की शरण में आया हूँ–वही तुम्हें उत्तर देगा।'

और यदि कोई ऊष्मवर्णों के उच्चारण में अशुद्धि निकाले तो वह उससे कहे कि मैं प्रजापति के शरणागत था—वही तुमको उत्तर देंगे। यदि कोई स्पर्श वर्णों के उच्चारण दोष का उलाहना दे तो उससे कहे कि मैं मृत्यु की शरण में था वही तुमको दण्ड देंगे।

सभी स्वर घोष (उच्च स्वर) और बलयुक्त उच्चारण किए जाने चाहिए। अतः उनका उच्चारण करते समय 'मैं इन्द्र में बल का आधान करूँ'—ऐसा चिन्तन करना चाहिए। समस्त ऊष्मा वर्ण न ग्रसे हुए न फेंके हुए स्पष्ट उच्चरित होने चाहिए। इस प्रकार का उच्चारण करने वाला प्रजापति को आत्मसमर्पण करता है।

सभी स्पर्श वर्ण धीरे धीरे, आपस में न मिलाकर उच्चारण करने चाहिए। इस प्रकार उच्चारण करने वाला मृत्यु से अपने को बचा लेता है।

तेईसवाँ खण्ड

धर्म के तीन स्कन्ध (भाग) हैं। यज्ञ, स्वाध्याय और दान मिल कर पहला स्कन्ध है। तप दूसरा स्कन्ध है। आचार्य कुल में रहता हुआ ब्रह्मचारी अपने को जो तपस्वी बनाता है, वह तीसरा स्कन्ध है। ये सभी पुण्यलोक वाले होते हैं। परन्तु इनमें से ब्रह्म-निष्ठ मुक्ति पाता है।

प्रजापति ने लोकों को प्रकाशित करने के लिए ध्यानरूप तप किया। उनके प्रकाशित होने पर तीन विद्याएँ (चार वेद) प्रादुर्भूत हुईं। उनको ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किया। उनके प्रकाशित होने पर भूः भुवः और स्वः ये तीन अक्षर प्रकट हुए।

उन तीन अक्षरों को प्रजापति ने तपाया, उनके तपने से ॐ प्रकाशित हुआ जैसे शंकुओं (नसों) द्वारा सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं। उसी प्रकार ॐ से सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है। ओंकार ही सब कुछ है—ओंकार ही सब कुछ है।

चौबीसवाँ खंड

ब्रह्मवादियों का कहना है, कि प्रातःसवन वसुओं का है, मध्याह्न रुद्रों का है। और तीसरा सवन आदित्यों, विश्वे-देवों का है। तो फिर यजमान का लोक कहाँ है? यदि वह इस लोक को न जाने तो कैसे यज्ञ करेगा अतः उसे जानने वाला ही यज्ञ करेगा।

प्रातुरनुवाक् प्रारंभ करने से पहले गार्हपत्य अग्नि के पीछे-उत्तराभिमुख बैठकर वह यजमान वसुओं का सामगान करता है—

ंन, तुम इस लोक का द्वार खोल दो, जिससे हम राज्य प्राप्ति
ए तुम्हारा दर्शन करें। इसके बाद यजमान इस मंत्र द्वारा
करता है—पृथ्वी में रहने वाले इस लोक के वासी अग्निदेव,
नमस्कार है। मुझ यजमान को तुम लोक की प्राप्ति कराओ।
ाश्चय ही यजमान का लोक है। मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ।
ोक में आयु समाप्त होने के बाद मैं पुण्यलोक को प्राप्त हो
स्वाहा—ऐसा कहकर वह हवन करता है। और परिघ
ता)को नष्ट करो—ऐसा कहकर उत्थान करता है, वसुगण
ातः सवन प्रदान करते हैं।

ाध्यन्दिन सवन के प्रारम्भ में पहले अग्नीध्रीय अग्नि के
यजमान उत्तर की ओर मुँह करके रुद्रों के साम का गान
है—

लोक-द्वार खोले दें, हम लोग आपको साम्राज्य के लिए देखें।'

इसके बाद यजमान इस मंत्र द्वारा हवन करता है—अन्तरिक्ष
में व्याप्त वायुदेव को नमस्कार है। मुझे (यजमान) तुम
रिक्ष लोक को प्राप्त कराओ। यही यजमान का लोक है और
े प्राप्त करने वाला हूँ। "मैं आयु समाप्त होने पर अन्तरिक्ष
को प्राप्त करूँ।" ऐसा कहकर यजमान हवन करता है और
द्वार की अर्गला को दूर करो' ऐसा कहकर उत्थान करता है।
लिए रुद्रगण माध्यन्दिन सवन देते हैं।

तृतीय सवन के प्रारम्भ से पहले वह यजमान आहवनीय अग्नि
छे उत्तराभिमुख बैठकर आदित्य और विश्वेदेव के साम का
करता है।

"लोक द्वार को खोल दो जिससे हम स्वाराज्य प्राप्ति के लिए
रा दर्शन कर सकें।" यह आदित्य सम्बन्धी साम है। लोक-

द्वार खोल दो जिससे हम आपको साम्राज्य के लिए देखें—'यह विश्वेदेव सम्बन्धी साम है।

इसके बाद यजमान इस मंत्र द्वारा हवन करता है—'आदित्यों को समस्त देवों को, द्युलोकवासियों को और अन्य लोक निवासियों को नमस्कार।' मुझ यजमान को तुम पुण्यलोक की प्राप्ति कराओ। यह निश्चय ही यजमान का लोक है और इसे प्राप्त करने वाला मैं हूँ। यहाँ यजमान—'आयु समाप्त होने पर मैं इस लोक को प्राप्त करूँगा'—ऐसा कहकर स्वाहा सहित हवन करता है। और 'लोक द्वार की अर्गला दूर करो'—कहकर उठ जाता है। उस यजमान को आदित्य और विश्वेदेव तृतीय सवन प्रदान करते हैं। जो इस प्रकार जानता है, और जो इस प्रकार जानता है, वह निश्चय यज्ञ के यथार्थ स्वरूप को जानता है।

तीसरा प्रपाठक

पहला खण्ड

निश्चय ही यह आदित्य देवताओं का मधु है। द्युलोक इसका तिरछा बाँस है। अन्तरिक्ष छत्ता है और किरणें उसमें रहनेवाले अंडे-बच्चे हैं।

पूर्वादिशा की जो किरणें हैं, वही इस अन्तरिक्ष रूप छत्ते के छिद्र हैं। ऋचाएँ ही मधुमक्खियाँ हैं। ऋग्वेद ही पुष्प है। वे सोम आदि अमृतरस पूर्ण हैं। निश्चय ही उन ऋचा रूप मधुमक्खियों ने इस ऋग्वेद को तपाया है। उस तपे हुए ऋग्वेद से यश, तेज, वीर्य, इन्द्रिय और अन्न आदि रूप, रस उत्पन्न हुए। वह यश आदि रस बाहर झरने लगा और उसने सब ओर आदित्य का आश्रय लिया। निश्चय वह यह है जो आदित्य का लाल रूप है।

दूसरा खण्ड

इसकी जो दक्षिण दिशा की किरणें हैं, वे ही इसकी दक्षिण की मधुनाड़ियाँ हैं। यजुर्वेद की श्रुतियाँ ही मधुक्खियाँ हैं। यजुर्वेद ही पुष्प है। तथा सोम आदि रूप अमृत ही रस है। उन सब श्रुति रूप मधुमक्खियों ने यजुर्वेद को तपाया उसके तपने से यश, तेज, इन्द्रिय, बल और भोग पदार्थ रूप रस प्रकट हुआ।

वह झरने लगा और उसने आदित्य का सब ओर से आश्रय ग्रहण किया। निश्चय वह यह है जो आदित्य का शुक्ल रूप है।

तीसरा खण्ड

और जो इस आदित्य की जो किरणें पश्चिम की ओर हैं, वे ही इसकी पश्चिम ओर की मधुनाड़ियाँ हैं। साम ही शहद की मक्खियाँ हैं। साम वेद ही पुष्प है और वह अमृत रस पूर्ण है।

निश्चय उन इन सामों ने इस सामवेद रूप पुष्प को तपाया, उसके तपने से यश, तेज, इन्द्रिय बल और भोग्य पदार्थ रूप रस प्रकट हुआ।

वह झरने लगा और उसने सब ओर से आश्रय लिया। निश्चय वह यह आदित्य का कृष्ण रूप है।

चौथा खण्ड

और ये जो इस आदित्य की उत्तर की ओर किरणें हैं, वे ही इसकी उत्तर की ओर किरणें हैं, वे ही इसकी उत्तर की ओर की मधुनाड़ियाँ हैं। इतिहास पुराण फूल हैं और वे अमृत रस पूर्ण हैं।

निश्चय ही उस अथर्वाङ्गिरस् ने इस इतिहास-पुराण रूप फूल को तपाया, उसके तपने से यश तेज, इन्द्रिय, बल और भोज्य पदार्थ रूप रस उत्पन्न हुआ।

वह झरने लगा और उसने आदित्य का सब ओर से आश्रय लिया, निश्चय वह यह है जो आदित्य का अत्यन्त कृष्ण रूप है।

और जो इस आदित्य की ऊपर की ओर की किरणें हैं, वे ही ऊपर की मधुनाड़ियाँ हैं। गूढ़ शिक्षाएँ ही मधुमक्खियाँ हैं। वेद ही पुष्प हैं और वे अमृत रस पूर्ण हैं।

निश्चय ही उन गूढ़ शिक्षाओं ने वेद को तपाया, उसके तपने से यश, तेज, इन्द्रिय बल और भोज्य पदार्थरूप रस उत्पन्न हुआ है।

वह झरने लगा और उसने सब ओर से आदित्य का सहारा लिया, निश्चय ही वह आदित्य के बीच का कम्पन है।

निश्चय ही वे यश, तेज आदि रस हैं, क्योंकि वेद रस हैं, उसके ये रस हैं। निश्चय वे इन अमृतों के अमृत हैं, क्योंकि वेद अमृत हैं और उनके ये अमृत हैं।

छठा खंड

इन अमृतों में जो पहला अमृत है. उससे वसुगण अग्नि मुख से जीते हैं। निश्चय न तो वे देवता खाते हैं, न पीते हैं। इसी अमृत को देखकर वे तृप्त होते हैं।

वे वसुगण इसी रूप में सब ओर से प्रवेश करते हैं। इसी रूप से उदय होते हैं। जो कोई इस अमृत को जानता है, वह वसुओं में ही एक होकर अग्नि मुख ही से-इसी अमृत को देखकर तृप्त होता है॥

और वह इसी रूप में सब ओर से प्रवेश करता है। इसी रूप से उदय होता है। जितने समय तक सूर्य पूर्व दिशा से उदित होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता है, उतनी ही देर तक वह वसुओं के आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।

सातवाँ खंड

अब जो दूसरा अमृत है, उसको पाकर रुद्रगण इन्द्र मुख से जीते हैं, निश्चय ही वे देवता न खाते हैं न पीते हैं। उसी अमृत को देखकर तृप्त होते हैं।

वे रुद्र इसी अमृत में सब ओर से प्रविष्ट होते हैं। और इसी रूप से उदय होते हैं। इसलिए जो कोई इस अमृत को जानता है, वह रुद्रों में से कोई एक होकर इन्द्र मुख से इसी अमृत को देखकर तृप्त होता है। वह इसी रूप में सब ओर से प्रविष्ट होता है। और इसी रूप से उदय होता है।

जितने काल तक सूर्य पूर्व से उदय होकर पश्चिम में अस्त होता है। उससे दूने समय में वह दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है। इतने समय तक वह रुद्रों के ही आधिपत्य एवं स्वाराज्य को प्राप्त होता है।

आठवाँ खंड

तृतीय अमृत है उससे आदित्य गण वरुण प्रधान होकर उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त होते है। वे इसी रूप में सब ओर से प्रवेश करते हैं और इसी रूप में सर्वत्र उदय होते हैं।

वह जो इस अमृत को जानता है वह आदित्यों में ही एक होकर वरुण की प्रधानता से इसी रूप में सब ओर से प्रविष्ट होता है और इसी रूप से उदय होता है।

वह सूर्य जितने समय में दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है। उससे दूने समय में पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता है। इतने समय वह आदित्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।

नवां खण्ड

इसके बाद जो चौथा अमृत है, मरुद्गण सोम की प्रधानता से उसके आश्रित जीवित रहते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं। वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। वे इसी रूप में सब ओर से प्रवेश करते और इसी रूप से उदय होते हैं।

वह जो इस अमृत को जानता है, वह मरुतों ही में एक होकर सोम की प्रधानता इसी अमृत को देखकर तृप्त होता है, और इसी रूप से उदय होता है।

जितने काल में सूर्य पश्चिम से उदय और पूर्व में अस्त होता है, उससे दुगुने समय तक उत्तर से उदय और दक्षिण में अस्त रहता है। उतने समय तक वह मरुतों के बीच आधिपत्य और स्वाराज्य प्राप्त करता है।

दसवाँ खण्ड

और जो पाँचवाँ अमृत है, साध्यगण ब्रह्मा की प्रधानता से उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं। वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त होते हैं। वे साध्यगण इसी रूप में सब ओर से प्रविष्ट होते हैं और इसी रूप में प्रविष्ट होते हैं।

वह जो कोई इस अमृत को जानता है, साध्यों ही में एक होकर ब्रह्ममुख से इस अमृत को देखकर तृप्त होता है। वह

इसी रूप में सब ओर प्रविष्ट होता है और इसी रूप से उदय होता है।

वह सूर्य जितने समय में उत्तर से उदित होता है और दक्षिण में अस्त होता है, उससे दूने समय तक ऊपर की ओर उदित होता है और नीचे की ओर अस्त होता है। इतने समय तक वह साध्यों ही के आधिवत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।

ग्यारहवाँ खंड

तत्पश्चात् वह उसमे ऊपर न उदित होता है और न अस्त होता है। बल्कि अकेला ही मध्य में स्थित रहता है। उसके विषय में श्लोक है—

'वहाँ निश्चय ही ऐसा नहीं होता। वहाँ सूर्य का न कभी उदय होता है और न अस्त। हे देवगण, इस सत्य के द्वारा मैं ब्रह्म से विरुद्ध न होऊँ, अर्थात् सत्य से वंचित न होऊँ।'

जो इस प्रकार इस ब्रह्मोपनिषद् को जानता है, उसके लिए न तो सूर्य का उदय होता है और न अस्त होता है। उसके लिए सर्वदा दिन ही रहता है। वह यह मधु ज्ञान ब्रह्मा ने प्रजापति से कहा था। प्रजापति ने मनु को सुनाया और मनु ने प्रजा को बतलाया। तथा यह ब्रह्मविज्ञान अपने ज्येष्ठ पुत्र अरुण-नन्दन उद्दालक को उसके पिता ने सुनाया था। अतः पिता इस ब्रह्मविज्ञान का उपदेश अपने ज्येष्ठ पुत्र अथवा सुयोग्य शिष्य को दे।

यदि कोई समुद्रों से घिरी हुई धन-धान्य से पूर्ण पृथिवी भी आचार्य को दे दे तो भी इस ब्रह्मविद्या का उपदेश अन्य किसी को नहीं करना चाहिए। क्योंकि उस पृथिवी दान से यही ब्रह्मविद्या का दान अधिक है। यही दान उस दान से अधिकतर है।

बारहवाँ खण्ड

निश्चय ही जितने ये सब प्राणी अप्राणी हैं—गायत्री है। वाणी ही गायत्री है, क्योंकि वाणी ही इस जीव-समुदाय को गाती है और उसकी रक्षा करती है।

निश्चय जो वह गायत्री है, वह यही है जो यह पृथिवी है। क्योंकि इस पृथिवी पर सभी पदार्थ प्रतिष्ठित हैं। इसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता।

जो वह पृथिवी है वह यही है जो कि इस पुरुष में यह शरीर है। क्योंकि इसी में ये प्राण स्थित हैं। और इसी को ये कभी नहीं छोड़ते। जो भी इस पुरुष में शरीर है, वह यही है जो कि इस अन्तः पुरुष में हृदय है, क्योंकि इसी में ये प्राण स्थित हैं। और इसी का अतिक्रमण नहीं करते। वह यह गायत्री चार चरणों वाली और छह प्रकार की है। वह यह विषय ऋचा द्वारा कहा गया है।

इस ईश्वर की जितनी बड़ी महिमा है, उससे यह बहुत बड़ा है। समस्त ब्रह्माण्ड उसका एक अंश है। इसके तीन अमरपाद उसकी दिव्य महिमा में स्थित है।

निश्चय जो भी वह ब्रह्म है, वह यही है, जो कि यह पुरुष से बाहर आकाश है, और जो भी यह पुरुष से बाहर आकाश है, वह यही है जो यह पुरुष के भीतर आकाश है। तथा जो भी यह पुरुष के भीतर आकाश है वह यही है जो हृदय के अन्तर्गत आकाश है। वह यह हृदयाकाश पूर्ण और कहीं भी प्रवृत्त न होने वाला है। जो पुरुष ऐसा जानता है, वह पूर्ण और कहीं प्रवृत्त न होने वाली सम्पत्ति प्राप्त करता है।

तेरहवाँ खण्ड

निश्चय उस इस हृदय के पांच देव सम्बन्धी सुषि (छिद्र द्वार) हैं। वह प्राण है, वह चक्षु है। वह आदित्य है। वही यह तेज और अन्न आदि पदार्थों को भोगने वाला है—इस दृष्टि से उसको प्रयोग में लाना चाहिए। जो इस प्रकार इनकी उपासना करता है, वह तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है। इसका जो दक्षिण द्वार (छिद्र) है, वह व्यान है। वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है। वही यह श्री एवं यश है। इस प्रकार इसकी उपासना करनी चाहिए। जो इस प्रकार इसे जानता है; वह श्रीमान् और यशस्वी होता है। इसका जो पश्चिम द्वार है, वह अपान है, वह वाक् है, वह अग्नि है और वही यह ब्रह्म तेज एवं अन्न का भोक्ता है। जो इसे ऐसा जान कर इसकी उपासना करता है, वह ब्रह्म तेजस्वी एवं अन्न का भोक्ता होता है। इसका जो उत्तरी द्वार है, वह समान है। वह मन है। वह मेघ है, वही कीर्ति और देह का सौन्दर्य (व्युष्टि) है। इस प्रकार इसे जान कर जो इसकी उपासना करता है, वह कीर्तिमान् और कान्तिमान् होता है। इसका जो ऊपरी द्वार है वह उदान है। वह आकाश है, वही यह ओज और तेज है। इस प्रकार इसे जान कर जो इसकी उपासना करता है वह ओजस्वी और तेजस्वी होता है।

वे ये पाँच ब्रह्म पुरुष हृदय (स्वर्ग) के द्वारपाल हैं। जो कोई स्वर्ग (हृदय) लोक के इन पाँच ब्रह्म पुरुषों—द्वारपालों को जानता है, वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। उसके कुल में शूरवीर उत्पन्न होता है।

अब इस द्युलोक से ऊपर जो परम ज्योति विश्व के पृष्ठ पर—सब लोकों से ऊपर अद्वितीय बनकर प्रकाशित हो रही है, वह

निश्चय ही यही है, जो पुरुष के भीतर ज्योति है। उस इस हृदय-पुरुष के दर्शन का यही उपाय है।

जब मनुष्य इस शरीर में स्पर्श के द्वारा ऊष्णता का अनुभव करता है—उसकी यह श्रुति है—आवाज है। जब दोनों कानों को मूंद कर रथ की ध्वनि की तरह, बैल की आवाज की तरह, जलती हुइ आग की आवाज की तरह सुनता है। वह यह ज्योति देखी गयी और सुनी गयी है—इस प्रकार इसकी उपासना करनी चाहिए। जो साधक इस प्रकार उपासना करता है। वह दर्शनीय और विख्यात होता है।

चौदहवाँ खण्ड

यह सारा विश्व निश्चय ही ब्रह्म है। उसी ईश्वर से सब कुछ उत्पन्न होता है। उसी में प्राण धारण करता है और अन्त में उसी में लीन होता है। ऐसा जान कर शान्तभाव से उसकी उपासना करनी चाहिए। क्योंकि मनुष्य वासनामय है—जैसी वह इच्छा करता है, वैसा ही बन जाता है। इस लोक में मनुष्य की जैसी वासना होती है, वैसी ही यहाँ से मर कर दूसरी योनि में होती है। इसलिए मनुष्य को उत्तम इच्छाएँ और उत्तम कर्म करने चाहिए।

मनोमय प्राण जिसका शरीर है। प्रकाश रूप, सत्यसंकल्प, आकाश शरीर, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस वह इस समस्त विश्व को सब ओर से घेरे हुए है वह वाणी रहित और आदर पाने की चिन्ता से मुक्त है।

मेरे हृदय में स्थित यह मेरा आत्मा धान से, यव से, सरसों से से श्यामाक चावल से भी सूक्ष्म है। वह पृथिवी से भी बड़ा, अन्तरिक्ष से भी विशाल द्यौ से भी महान् और सभी लोकों से भी बड़ा है।

वह समस्त कर्मों को करने वाला, समस्त शुभ इच्छाओं वाला, समस्त गन्ध युक्त, सर्व रस पूर्ण सम्पूर्ण विश्व के अणु-अणु में व्याप्त है। वाणी रहित मन की इच्छा से शून्य यह आत्मा मेरे हृदय में हैं। यह ब्रह्म है। मरने के बाद मैं इसी को प्राप्त होने वाला हूँ। जिसका ऐसा निश्चय है और जिसे इस विषय में कोई सन्देह भी नहीं है—उसे इसी ब्रह्मभाव की प्राप्ति होती है—ऐसा शाण्डिल्य ऋषि ने कहा है।

पन्द्रहवाँ खण्ड

एक कोश है, जिसका उदर अन्तरिक्ष और चरण पृथिवी है। वह कभी जीर्ण नहीं होता है। दिशाएँ इसके कोने हैं। आकाश ऊपर का छिद्र है। वह यह कोश वसुधान है। उसी में यह सारा विश्व स्थित है। उस कोश की पूर्व दिशा 'जुहू' नाम वाली है। उसकी पश्चिम दिशा का नाम 'राज्ञी है।' उत्तर दिशा का नाम 'सुभूत।' है। उन दिशाओं का वायु वत्स है। वह जो इस प्रकार इस वायु को दिशाओं के वत्स रूप से जानता है, पुत्र के निमित्त रोदन नहीं करता है। वह मैं इस वायु को दिशाओं के बछड़े के रूप से जानता हूँ। अतः मैं पुत्र के कारण न रोऊँ।

मैं अमुक, अमुक, अमुक के सहित प्राण की शरण हूँ। अमुक, अमुक अमुक के सहित भूः की शरण हूँ। अमुक अमुक अमुक के सहित भुवः की शरण हूँ। अमुक, अमुक अमुक के सहित स्वः की शरण हूँ।

'मैं प्राण की शरण हूँ'—ऐसा जो मैंने कहा था, वह यह जो कुछ सम्पूर्ण जीव-समुदाय है, प्राण ही है। उसी की मैं शरण हूँ। 'मैं भूः की शरण हूँ'—ऐसा जो मैंने कहा था इसका तात्पर्य—मैं पृथिवी की शरण हूँ, अन्तरिक्ष की शरण हूँ और द्युलोक की शरण

हूँ–'मैं भुवः की शरण हूँ' इस कथन का तात्पर्य यह है कि मैं अग्नि की शरण हूँ, वायु की शरण हूँ और आदित्य की शरण हूँ। 'मैं स्वः की शरण हूँ' मेरे इस कथन का तात्पर्य है—मैं ऋग्वेद की शरण हूँ, यजुर्वेद की शरण हूँ और सामवेद की शरण हूँ। यही मैंने कहा है।

सोलहवाँ खण्ड

पुरुष ही यज्ञ है। उसकी आयु के जो २४ वर्ष हैं, वे प्रातः-सवन हैं। गायत्री चौबीस अक्षरों वाली है। प्रातः सवन गायत्री-छन्द से संबद्ध है। इस पुरुषयज्ञ के उस प्रातःसवन से वसु संबंधित हैं। प्राण ही वसु हैं। क्योंकि ये ही सब प्राणि-समूह को बसाते हैं।

इस चौबीस वर्ष के ब्रह्मचर्य की आयु में यदि उस ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य में कोई बाधा उपस्थित करे तो वह उसे कहे—हे प्राण प्रिय बन्धुओं, यह मेरा ब्रह्मचर्य रूपी प्रातःसवन है। आप लोग मेरे माध्यन्दिनसवन अर्थात् ४४ वर्ष के ब्रह्मचर्य को विस्तृत करें और ऐसा 'प्रयत्न करें कि आप प्राण प्रिय बन्धुओं के बीच में मैं जो यज्ञ हूँ, लुप्त न हो जाऊँ। इस विनय से वह ब्रह्मचारी उदित होता है रोगों (चिन्ताओं) से मुक्त होता है।

इसके बाद ४४ वर्ष की आयु तक का माध्यन्दिन सवन (द्वितीय ब्रह्मचर्य) होता है। ४४ अक्षरों का त्रिष्टुप् छन्द होता है। इसलिए त्रिष्टुप् माध्यन्दिन सवन है। उस पुरुष यज्ञ के माध्यन्दिन सवन से रुद्र संबंधित है। प्राण ही रुद्र हैं। क्योंकि ये ही सब प्राणिसमूह को रुलाते हैं।

इस आयु की द्वितीय ब्रह्मचर्यावस्था 'में यदि ब्रह्माचारी के ब्रह्मचर्य पर कोई बाधा डाले तो वह उससे कहे—हे प्राण प्रिय

बन्धुओं और रुद्रों, यह मेरे जीवन का माध्यन्दिन सवन है। आपलोग मेरे लिए ४८ वर्ष की आयु तक के तृतीय सवन को विस्तृत करें। और ऐसा यत्न करें कि आप जैसे प्राण प्रिय बन्धुओं और रुद्रों के बीच जो मैं यज्ञ हूँ लुप्त न हो जाऊँ। इससे वह ब्रह्मचारी उदित होता है और रोग (चिन्ता) रहित होता है।

इसके बाद जीवन के जो अड़तालीस वर्ष हैं, वे तृतीय सवन हैं। जगती छन्द अड़तासील अक्षरों वाला है। तथा तृतीय सवन जगती छन्द से संबंधित है। इस सवन से संबंधित आदित्यगण हैं। क्योंकि ये ही इस सम्पूर्ण को ग्रहण करते हैं। इस अवस्था में यदि पुरुष की साधना में कोई वाधा उपस्थित हो तो उसे कहना चाहिए—हे प्राण रूप आदित्यगण, मेरे इस तृतीय सवन को आयु के साथ मिला दो। यज्ञ रूप में प्राण रूप आदित्यों के बीच लुप्त न हो जाऊँ। ऐसा कहने से वह उदित होता है और रोग से मुक्त होता है।

इस प्रसिद्ध विद्या को ऐतरेय महिदास ने कहा था—अरे रोग, तू मुझे क्यों कष्ट दे रहा है, क्योंकि मैं इस रोग से मर नहीं सकता। इतरा का पुत्र वह एतरेय महिदास एकसौ सोलह वर्ष तक जीवित रहा था—ऐसा प्रसिद्ध है। इसलिए जो इस प्रकार इस सवन विद्या को जानता है वह नीरोग और चिन्ता मुक्त होकर एक सौ सोलह वर्ष की आयु तक जीवित रह सकता है।

सत्रहवाँ खण्ड

वह पुरुष जो भोजन करने की इच्छा करता है, पानी पीने की इच्छा करता है किन्तु उनमें आसक्त नहीं होता वही इस ब्रह्मचारी की दीक्षा है।

और जो खाता है, पीता है, आसक्त होता है वह समानता को प्राप्त होता है। और जो हँसता है, खाता है, मैथुन करता है वह स्तोत्र और शास्त्र की समानता प्राप्त करता है।

तप, दान, सौम्यता, अहिंसा, सत्य भाषण आदि वे ही इसकी दक्षिणा हैं। इसलिए कहते हैं, कि 'प्रसूता होगी' अथवा 'प्रसूता हुई' वह इसका पुनर्जन्म है। तथा मरण ही अवभृथ स्नान हैं।

घोरआंगिरस ऋषि ने देवकीपुत्र कृष्ण को यह यज्ञ दर्शन सुनाकर जिससे वह अन्य विद्याओं में तृष्णा रहित हो गया था, कहा—'उसे अन्त काल में इन तीन मंत्रों का जप करना चाहिए-

१—तू अक्षित (अक्षय) है।

२—तू अच्युत (अविनाशी) है।

३—तू अति सूक्ष्म प्राण है।'

इसके विषय में दो ऋचाएँ हैं—१—'आदित्प्रत्नस्य रेतसः और २ 'उद्वयंतमस्परि।' इसमें पहली ऋचा इस प्रकार है—

'आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।

परो यदिध्यते दिवि।'

इसका अर्थ है—जगत् के नित्य कारण ब्रह्म के व्याप्त प्रकाश को सब प्रकार से देखते हैं। यह उत्कृष्ट प्रकाश ब्रह्मण्ड में सर्वत्र प्रकाशित है। दूसरा मंत्र इस प्रकार है—

'उद्वयं तमसस्परिज्योतिः पश्यन्त उत्तर ॐ स्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति। ज्योतिरुत्तममिति।'

इसका अथ है-

अज्ञानरूप अन्धकार से अतीत उत्कृष्ट ज्योति को देखते हुए तथा आत्मीय उत्कृष्ट तेज को देखते हुए हम सम्पूर्ण देश में प्रकाशमान सर्वोत्तम ज्योतिः स्वरूप सूर्य को प्राप्त हुए।

अठारहवाँ खण्ड

मन ब्रह्म है—यह समझ कर उपासना करनी चाहिए। यही अध्यात्म दृष्टि है। तथा आकाश ब्रह्म है-यह आधिदैविक दृष्टि है। इस प्रकार आध्यात्मिक, आधिदैविक दोनों दृष्टियों का उपदेश दिया गया है।

वह यह मनःसंज्ञक ब्रह्म चारपादों वाला है। वाक् पाद है, प्राण पाद है, चक्षु पाद है और श्रोत्र पाद है। यह अध्यात्म है। और अग्निपाद है, वायुपाद है, आदित्यपाद है, तथा दिशाएँपाद हैं—यह आधिदैवत है।

वाक् ही ब्रह्म का चौथापाद है, वह अग्निरूप ज्योति से दीप्त होता है और तपता है। जो ऐसा जानता है, वह यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है।

प्राण ही मनोमय ब्रह्म का चौथापाद है। वह वायुरूप ज्योति से प्रकाशित होता है। और तपता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है, तपता है।

चक्षु ही मनःसंज्ञक ब्रह्म का चौथापाद है। यह आदित्यरूप ज्योति से प्रकाशित होता है, तपता है। जो इस प्रकार जानता है, वह, यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है। तपता है।

श्रोत्र ही मनःसंज्ञक ब्रह्म का चौथा पाद है। वह दिशारूप ज्योति से प्रकाशित होता है और तपता है। जो इस प्रकार जानता है, वह यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता है।

उन्नीसवाँ खण्ड

आदित्य ब्रह्म है—यही उपदेश है। अब इसी की व्याख्या की जाती है पहले यह असत् ही था फिर वह सत हुआ। अंकुरित

होकर फिर एक अण्डे के रूप में बदल गया। वह सन्धिकाल तक उसी हालत में पड़ा रहा। इसके बाद वह फूटा और उसके दो खण्ड हो गए। एक खण्ड तो चाँदी-सा और दूसरा सोने के रूप-सा हो गया। जो खण्ड रजत रूप था वही पृथिवी है और जो सुवर्ण हुआ वह द्युलोक है।

उस अण्डे का जो ऊपरी आवरण था वही ये पर्वत हैं, जो सूक्ष्म आवरण था वही मेघों के सहित कुहरा है। नाड़ी रूप जो बहता पानी था उसी से नदियाँ बनी। जो विस्तृत गहरा जल था, वह समुद्र बना।

उस अंडे का जो दूसरा आधा हिस्सा प्रकट हुआ था वह सूर्य है। उस सूर्य के प्रकट होने पर उच्च हर्षघोष (उलूलु ध्वनि) होने लगे। उस सूर्योदय से समस्त प्राणी और सब कामनाएँ उत्पन्न हुईं। उस सूर्य्य के उदय और अस्त के घोष हुआ करते हैं। और सभी प्राणी एवं समी कामनाओं की पूर्ति हुआ करती है।

जो कोई सूर्य की इस महानता को जानता हुआ इसकी उपासना करता है, उसे शुभ शब्द सुनाती पड़ते हैं। और वे शब्द उसे सुख पहुँचाते हैं।

चौथा प्रपाठक

पहला खण्ड

राजा जनश्रुत के वंश में उत्पन्न जानश्रुति नाम का प्रसिद्ध राजा था। उसके पिता पितामह और प्रपितामह तीनों जीवित थे, इसलिए वह पौत्रायण जानश्रुति, के नाम से प्रसिद्ध था। वह श्रद्धापूर्वक देने वाला महादानी था। भोजन दान देने के लिए उसके यहाँ बहुत से भोजन-शालाऐं थीं। अपना ही अन्न खिलाने

के लिए उसने लोगों के रहने के लिए सर्वत्र निवासस्थान (धर्मशालाएँ) बनवा दिए थे।

उसी समय एक दिन रात में उड़ते हुए कुछ हंस राजमहल के ऊपर आए। एक हंस ने दूसरे हंस से कहा—ओ भल्लाक्ष, अरे भल्लाक्ष, देख तो सही, दान देने के कारण राजा पौत्रायण जानश्रुति का तेज द्युलोक के समान फैला हुआ है, तू उसे स्पर्श मत करना नहीं तो भस्म कर डालेगा।

आगे आगे चलने वाले दूसरे हंस ने कहा—अरे, तू किस महत्त्वशील राजा के प्रति ऐसे सम्मानित वचन कह रहा है। क्या तू इसे गाड़ी वाले रैक (सयुग्वारैक्व) के समान समझता है ?

इस पर पीछे वाले हंस ने कहा - भाई, गाड़ी वाला वह रैक्व कैसा है ? वह बोला—मैंने ऐसे सुना है, कि जिस प्रकार जुएँ में कृत नामक पासे से जीतने वाले जुआँड़ी के पास निम्न श्रेणी के सभी पासे आ जाते हैं, उसी प्रकार प्रजा जो कुछ भी सत्कर्म करती है, वह सब उस रैक्व को प्राप्त हो जाता है। जो कोई जो कुछ जानता है, वह उसे जानता है।

इस बातचीत को जानश्रुति पौत्रायण ने सुन लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल उसने अपने सारथी से कहा, अरे भाई, तू गाड़ी वाले रैक्व के समान मेरी प्रशंसा क्यों करता है ? सारथी ने पूछा वह गाड़ी वाला रैक्व कैसा है ? राजा ने कहा—जिस प्रकार कृत नामक पाँसे के द्वारा जीतने वाले जुआड़ी के अधीन उससे छोटी श्रेणी के सभी पासे हो जाते हैं उसी प्रकार रैक्व को प्रजा के द्वारा किए गए सभी सत्कर्म प्राप्त हो जाते हैं। तथा जो कोई कुछ भी जानता है, उसे वह रैक्व जान लेता है। वह ऐसा है—ऐसा मुझे बताया गया है।

वह सारथी उस रैक को ढूंढ़ने लगा, उसे न पाकर जब वह वापस आया तब उससे राजा ने कहा—अरे, जहाँ ब्राह्मण की खोज की जाती है, वहां उसके पास जा। सारथी ने जाकर देखा कि गाड़ी के नीचे एक आदमी बैठा हुआ खाज खुजला रहा है। वह रैक के पास बैठ कर उससे बोला—कि भगवन्, क्या आपही गाड़ी वाले रैक्व हैं? रैक्व ने कहा—हाँ भाई मैं ही हूँ। ऐसा कहने पर उस सारथी ने समझ लिया कि वही रैक्व है और वह लौट आया।

दूसरा खण्ड

तब वह जानश्रुति पौत्रायण ६ सौ गायें, एक बहुमूल्य हार और खच्चरों से जुता हुआ एक रथ लेकर उसके पास गया और बोला—भगवन्, ये ६ सौ गाएँ, एक बहुमूल्य हार और खच्चरों से जुता हुआ यह रथ मैं आप के लिए लाया हूँ। आप इसे स्वीकार कर मुझे उस देवता का उपदेश दें, जिसकी उपासना आप करते हैं।

उस रैक्व ने कहा—अरेशूद्र गौओं के सहित यह हार युक्त रथ तेरे ही पास रहे। तब वह राजा एक हजार गौएँ, एक हार खच्चरों से जुता हुआ रथ और अपनी सुन्दरी कन्या को लेकर फिर उसके पास आया और बोला—रैक्व, ये हजार गौएँ, यह हार, खच्चरियों से जुता हुआ यह रथ, यह सुन्दर पत्नी और यह गाँव जिसमें आप रहते हैं—स्वीकार कर मुझे उपदेश दीजिए?

तब उस कन्या के मुख को ऊपर उठाते हुये रैक्व बोला—हे शूद्र, यह कन्या जो तुम लाये हो, क्या इसी के मुख से मुझे बोलवाना चाहते हो। इस प्रकार जहाँ वह रैक्व रहता था, वहाँ रैक्व पर्ण ये नाम का गाँव महावृष देश में प्रसिद्ध है। तब रैक्व ने राजा ने कहा—

तीसरा खण्ड

वायु ही संवर्ग (अपने भीतर पचाने वाला) है। जब आग बुझती है, तो वायु में लीन होती है। जब सूर्य अस्त होता है तो वायु में ही लीन हो जाता है। जब चन्द्रमा अस्त होता है तब वायु में ही लीन हो जाता है। जब जल सूखता है तो वायु में ही लीन होता है। निश्चय ही इन सबको वायु ही अपने अन्दर ग्रस लेता है। यह अधिदैवत (देवता संम्बन्धी) बात समाप्त हुई।

अब शरीर के संम्बन्ध में कहते हैं—प्राण ही संवर्ग है। वह (पुरुष) जब सोता है, प्राण ही में वाणी लीन हो जाती है। इसी प्रकार चक्षु प्राण में, श्रोत्र प्राण में, मन प्राण में लीन होते हैं। निश्चय ही प्राण इन सब को अपने भीतर ले लेता है। देवताओं में वायु और इन्द्रियों में प्राण—ये ही दो संवर्ग हैं।

कहा जाता है, कि कपिगोत्र वाले शौनक और कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारी से—जब इन दोनों को भोजन परोसा जा रहा था—ब्रह्मचारी ने भिक्षा माँगी। उस को उन्होंने भिक्षा नहीं दी।

उन दोनों से ब्रह्मचारी ने कहा---भुवन की रक्षा करने वाला एक सुखमय परमात्मा है। वह अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल तथा वाणी चक्षु, श्रोत्र और मन इन चार बड़ों को खाया करता है। हे कापेय हे अभिप्रतारी, अज्ञानी मनुष्य उस सर्व व्यापक परमात्मा को नहीं देखते हैं। निश्चय जिसके लिये यह अन्न है, उसके लिये यह अन्न नहीं दिया।

कपि गोत्र में उत्पन्न शौनक उस ब्रह्मचारी की बात मन में बार बार सोचते हुये आए और बोले---वह देवों का आत्मा, प्रजाओं को उत्पन्न करने वाला, हिरण्य दंष्ट्र (सुनहरे दाँतों वाला) बभस

(सब का भक्षक) चित्तस्वरूप है। इस की महती विभूति का वर्णन किया जाता है।

जो स्वयं न खाया जाने वाला अन्न है, उसे खा जाता है। निश्चय है, ब्रह्मचारी इस ईश्वर की अच्छी तरह उपासना करते हैं। हे रसोइयों, इस ब्रह्मचारी को भिक्षा दो।

रसोइयों ने उस ब्रह्मचारी को भिक्षा दे दी। निश्चय वे पाँच अग्निआदि अन्य पाँच वाक् आदि मिलकर दस होते हैं। वे कृत—जुएँ के पाँसे हैं। इसलिए सब दिशाओं में अन्न ही दशाकृत है। वह यह विराट् अन्न को ही खाता है। उसके द्वारा यह सब देखा हुआ होता है। इस उपासक का यह सब देखा हुआ होता है। जो ऐसा जानता है---जो ऐसा जानता है।

चौथा खण्ड

ऐसा कहा जाता है, कि जबाला के पुत्र सत्यकाम ने माता जबाला से पूछा—कि माँ, मैं ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहता हूँ। बताओ मेरा गोत्र क्या है ?

अपने पुत्र से जबाला बोली—प्रिय पुत्र, मैं यह नहीं जानती कि तेरा कौन-सा गोत्र है। क्योंकि युवावस्था में अनेक पुरुषों की सेवा करती हुई मैंने तुझे पैदा किया है। इसलिए मैं यह नहीं बता सकती कि तू किस गोत्र का है। परन्तु मेरा नाम जबाला है और तू सत्यकाम है। इसलिए तू सत्यकाम जाबाल यही बता देना।

वह सत्यकाम प्रसिद्ध गोतम गोत्र में उत्पन्न हारिद्रुमान के पुत्र हारिद्रुमत के समीप जाकर बोला—भगवन्, मैं ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगा। आपकी सेवा में आया हूँ।

उस सत्यकाम से ऋषि बोले—सोम्य, तेरा गोत्र क्या है ? वह बोला—भगवन् यह तो मैं नहीं जायता कि मेरा गोत्र क्या है ? माता से मैंने पूछा था, उसने कहा कि बहुत से पुरुषों की सेवा करती हुई इस सेविका ने जवानी में तुझे प्राप्त किया है। इसलिए मैं यह नहीं बता सकती कि तेरा गोत्र क्या है ? परन्तु मेरा नाम जबाला है और तेरा सत्यकाम। इसलिए भगवन्, आप मुझे सत्य-काम जाबाल समझें।

ऋषि बोले—ऐसी बात इो अ ब्राह्मण कभी भी नहीं प्रकट कर सकता है। साम्य, तू समिधा लेआ, मैं तुझे उपनीत करूँगा। तू सत्य से पृथक् नहीं हुआ। यह कहकर ऋषि ने सत्यकाम का उपनयन संस्कार करके गोशाला से चार सौ दुबली-पतली कमजोर गाएँ निकाल कर कहा—सोम्य, इनके पीछे जाओ ? उन गौओं को हाँकते हुए सत्यकाम ने कहा—कि हजार गायें बिना हुए मैं न लौटूँगा। ऐसा कहा जाता है, कि वह अनेक वर्ष वन में रहा और वे गायें हजार हो गयीं।

पाँचवाँ खण्ड

इसके अनन्तर साँड़ ने उससे कहा—सत्यकाम ! वह बोला भगवन् ! क्या आज्ञा है। वह बोला—सोम्य, हमारी संख्या एक हजार हो गयी है। अब तू हमें आचार्य कुल में पहुँचा दे। मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ ? सत्यकाम ने कहा—भगवन्, मुझे अवश्य उपदेश दें। साँड़ बोला—पूर्वदिक् कला, पश्चिम दिक् कला, उत्तर दिक् कला और दक्षिण दिक् कला है। सोम्य, यह ब्रह्म का 'प्रकाशवान; नामक चार कलाओं वाला एक पाद है। जो साधक इसे इस प्रकार जानकर 'प्रकाशवान्' गुण से युक्त ब्रह्म के चतुष्कल पाद की उपासना करता है। वह इस लोक में प्रकाश-वान् होता है। और प्रकाशवान् लोकों को प्राप्त करता है।

छठा खण्ड

अब अग्नि तुझे ब्रह्म के दूसरे पाद का उपदेश करेगा—यह कहकर वृषभ मौन हो गया। दूसरे दिन उसने गौओं को आचार्य-कुल की ओर हाँक दिया। सायंकाल जहाँ सब ठहरीं वहीं पर अग्नि को प्रज्वलित कर अग्नि के पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर वह बैठ गया। अग्नि ने प्रकट होकर कहा—सत्यकाम ! उसने कहा—भगवन् ! अग्नि ने कहा—सोम्य, मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ। सत्य काम ने कहा—भगवन् अवश्य उपदेश दें।

तब अग्नि ने कहा—पृथिवी कला है, अन्तरिक्ष कला है, द्युलोक कला है और समुद्र कला है। सोम्य, यह ब्रह्म का चतुष्कल-पाद 'अनन्तवान्' नाम वाला है। जो इस प्रकार जान कर 'अनन्तवान्' गुण से युक्त ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की उपासना करता है। वह इस लोक में 'अनन्तवान्' होता है। 'अनन्तवान्' लोकों को प्राप्त होता है।

सातवाँ खण्ड

अब हंस तुझे तीसरा पाद बतलायेगा—यह कहकर अग्नि अन्तर्धान हो गया। दूसरे दिन वह गौओं को लेकर आचार्य कुल की ओर चल दिया। सायंकाल जहाँ सब गौएँ रुकीं, वहीं सत्यकाम ने अग्नि को प्रज्वलित कर उसके पश्चिम की ओर पूर्व मुख कर के वह बैठ गया। तब हंस ने उसके समीप उतर कहा—सत्यकाम ! उसने उत्तर दिया—भगवन् !

हंस ने कहा—सोम्य, मैं तुझे हंस का पाद बतलाऊँ ? सत्य-काम बोला—भगवन्, अवश्य उपदेश दें। हंस बोला—अग्नि कला है। सूर्य कला है, चन्द्रमा कला है और विद्युत् कला है।

सोम्य, यह ब्रह्म का चतुष्कल पाद 'ज्योतिष्मान्' नाम वाला है। जो कोई इसे जान कर 'ज्योतिष्मान्' गुण से युक्त ब्रह्म के इस चतुष्कल-पाद की उपासना करता है, वह ज्योतिष्मान् होता है। और ज्योति-ष्मान् लोक को प्राप्त करता है।

आठवाँ खण्ड

'मद्‌गु तुझे चौथे पाद का उपदेश करेगा।' यह कहकर हंस चला गया। दूसरे दिन उसने गौवों को गुरुकुल की ओर हाँक दिया। सायंकाल जहाँ पर गौएँ रुकीं वहीं, वह आग जलाकर उस आग के पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख होकर वह बैठ गया। समि-धाएँ छोड़ते ही मद्‌गु ने उसके पास जाकर कहा–सत्यकाम ! उसने उत्तर दिया—भगवन् ! मद्‌गु बोला—सोम्य, मैं तुझे ब्रह्म का पाद बतलाऊँ। सत्यकाम बोला-भगवन्, मुझे अवश्य बताइए ?

वह बोला—प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है। हे सोम्य, यह ब्रह्म का 'आयतनवान्' नामवाला चतुष्कल पाद है। इस प्रकार इसे जो जानता है, और ब्रह्म के इस चतुष्कलपाद 'आयतनवान्' की उपासना करता है, वह 'आयतन-वान्' होता है और मरने पर आयतनवान् लोकों को प्राप्त करता है।

नवाँ खण्ड

सत्यकाम आचार्य कुल में पहुँचा। आचार्य ने उसे सत्यकाम कहकर पुकारा। 'हाँ भगवन्' कहकर सत्यकाम ने उत्तर दिया।

आचार्य ने पूछा—हे सोम्य, निश्चय तू ब्रह्मविद् के समान सुशोभित हो रहा है। किसने तुझे शिक्षा दी है। सत्यकाम ने कहा-

—मनुष्य से अतिरिक्त प्राणियों ने मुझे शिक्षा दी है, किन्तु भगवन्, आपही मुझे भलीभाँति दीक्षित करें।

क्योंकि आपही जैसे आचार्यों से मैंने सुना है, कि आचार्य ही से सीखी हुई विद्या उत्तम मार्ग की ओर ले जाती है। यह सुन कर आचार्य ने उसे इसी विद्या का उपदेश दिया। इसमें कुछ नहीं छूटा, इसमें कुछ नहीं छूटा हुआ है।

दसवाँ खण्ड

प्रसिद्ध है, कि कमल के पुत्र ने निश्चय ही जाबाल सत्यकाम के समीप ब्रह्मचर्य व्रत के लिए निवास किया। और यह भी कहा जाता है, कि उसने बारह वर्ष तक यज्ञ के लिए अग्नि का सेवन किया। उस सत्यकाम ने अन्य ब्रह्मचारियों का समावर्तन करते हुये उस उपकोसल का समावर्तन नहीं किया।

आचार्यपत्नी ने अपने पति से कहा कि—यह ब्रह्मचारी तपस्वी है, इसने यज्ञ के लिये अग्नि का भी सेवन किया है। ऐसी स्थिति में अग्नियाँ आप को न त्यागें (आप दोषी न ठहरें) इस लिये इसे जो उपदेश देना हो दे दीजिए। लेकिन उस ब्रह्मचारी को उपदेश दिए बिना ही आचार्य कहीं बाहर चले गए।

उस ब्रह्मचारी ने मानसिक सन्ताप के कारण खाना-पीना छोड़ दिया। तब आचार्य पत्नी ने कहा—ब्रह्मचारी, भोजन करो, अनशन क्यों किए हो? उस ब्रह्मचारी ने कहा—इन पुरुषों में अनेक मार्ग वाली ये अनेक इच्छाएँ हैं। इन व्याधियों से मैं परिपूर्ण हूँ। इसलिए अनशन कर रहा हूँ।

इसके बाद ऐसा सुना जाता है, कि अग्नि शक्तियों का उदय हुआ। उस समय मानों वह कह रही थीं, ब्रह्मचारी तपस्वी है, और

इसने बड़ी सावधानी से हमारी सेवा की है इसलिए इसे उपदेश देना उचित है। ऐसा कहा जाता है, कि वे अग्नियाँ उस ब्रह्मचारी से बोलीं—

प्राण ब्रह्म है; सुख (कं) ब्रह्म है, आकाश (ख) ब्रह्म है। उस ब्रह्मचारी उपकोसल ने जवाब दिया दिया कि मैं जानता हूँ, कि प्राण-ब्रह्म है, किन्तु यह नहीं जानता कि कं और खं भी ब्रह्म हैं। वे अग्नियाँ—जो कं हैं, वही खं हैं। जो खं हैं, वही कं हैं। कहा जाता है, कि उस उपकोसल के लिए वे अग्नियाँ प्राण और उस आकाश के लिए बोलीं।

ग्यारहवाँ खण्ड

गार्हपत्य अग्नि ने उसे उपदेश दिया, कि पृथिवी, अग्नि, अन्न और आदित्य ये मेरा पोषण करते हैं। सूर्य में जो यह पुरुष दिखायी पड़ता है, वह मैं हूँ। वह मैं हूँ।

जो कोई इसे जानता हुआ इस गार्हपत्य अग्नि को प्रयोग में लाता है, वह पाप कर्म को नाश करता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, उज्ज्वल जीवन धारण करता है। उसके पुत्र, पौत्र आदि का ह्रास नहीं होता, दोनों लोकों में अग्नि उसकी रक्षा करता है—जो गार्हपत्य अग्नि को ऐसा जानता हुआ प्रयोग में लाता है।

बारहवाँ खण्ड

यह प्रसिद्ध है, कि उसके बाद उस ब्रह्मचारी को दक्षिणाग्नि ने उपदेश दिया कि जल, दिशाएँ और नक्षत्र मेरे पोषक हैं। चन्द्रमा

में जो यह पुरुष (प्रकाश) दिखायी पड़ता है—वह मैं हूँ। वही मैं हूँ।

ऐसा जानकर जो इस अग्नि को प्रयोग में लाता है, सभी पापों का नाश होता है। पूर्ण आयु प्राप्त करता है और उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है।

हम सब अग्नि उसकी रक्षा करते हैं। उसके पुत्र, पौत्र आदि की वृद्धि करते हैं। वह इसकी दोनों लोकों में रक्षा करता है—जो इस अग्नि को जानता हुआ काम में लाता है।

तेरहवाँ खण्ड

कहा जाता है, कि इसके बाद उस ब्रह्मचारी को आहवनीय अग्नि ने उपदेश दिया—कि प्राण, आकाश, द्यौ और विद्युत मेरे पोषक हैं। इस विद्युत में जो पुरुष (आग्नेय शक्ति) दिखायी पड़ता है—वह मैं हूँ। वही मैं हूँ।

इसलिए जो कोई ऐसा जानकर सेवन करता है, उसके पापों का नाश होता है। वह लोकवान होता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है और उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। ऐसे अग्निहोत्री के पुत्र, पौत्र आदि की वृद्धि होती है। वह इसकी दोनों लोकों में रक्षा करता है—जो इस आहवनीय अग्नि को इस प्रकार जानकर प्रयोग में लाता है।

चौदहवाँ खण्ड

कहा जाता है, कि वे अग्नियाँ उस उपकोसल से बोलीं—हे सोम्य, तेरे लिए यह हमारी विद्या और आत्मविद्या है। परन्तु आचार्य तुझे ब्रह्म विद्या का उपदेश देंगे। इतने में आचार्य आगए और वे उसे उपकोसल ! उपकोसल !! कहकर पुकारने लगे।

'हे भगवन्'—यह कहकर उपकोसल ने जवाब दिया। आचार्य ने कहा, सोम्य, तेरा मुखमण्डल ब्रह्मतेज से प्रदीप्त है। किसने तुझे उपदेश दिया है। उपकोसल ने यह कहकर कि "भगवन्, मुझे कौन शिक्षा देगा?"—मानों अग्नियों द्वारा प्राप्त शिक्षा को छिपा रहा था। फिर कुछ सोचकर उसने कहा निश्चय ही अन्य सामान्य मनुष्यों से भिन्न जो अग्नियाँ हैं, उन्होंने ही मुझे शिक्षा दी है। यह सुनकर आचार्य ने पूछा—सोम्य, अग्नियों ने तुझे क्या शिक्षा दी है।

अग्नियों द्वारा प्राप्त शिक्षा को उपकोसल ने बता दिया तो आचार्य ने कहा सोम्य, उन्होंने तुझे लोकों की शिक्षा दी है, अब मैं तुझे ब्रह्म का उपदेश दूंगा। जैसे कमल के पत्तों पर पानी नहीं ठहरता उसी तरह ब्रह्मज्ञानी को पाप कर्म नहीं स्पर्श करते। उपकोसल ने कहा—भगवन् मुझे उस ब्रह्म का उपदेश दें। ऐसा कहा जाता है, कि आचार्य ने उसे उपदेश दिया।

पन्द्रहवाँ खण्ड

आचार्य ने कहा कि—जो यह पुरुष आँख में दिखायी पड़ता है, वही यह आत्मा है। यह अमृत है, यह अभय है, यह महान् है। यद्यपि इस आँख में घी या पानी डालते हैं, तो वह आँखों के किनारों ही को जाता है।

इस आत्मा को 'संयमधाम, कहा जाता है, क्योंकि समस्त सौन्दर्य इसी को प्राप्त होते हैं। जो ऐसा जानता है। उसे समस्त सौन्दर्य प्राप्त हो जाते हैं।

यही आत्मा 'वामनी' है। क्योंकि यह समस्त सौन्दर्य को पहुँचाता है। जो ऐसा जानता है, वह समस्त सौन्दर्य को पहुँचाने वाला होता है।

यही आत्मा 'भामनी' है। क्योंकि सभी लोकों में चमकता है। जो ऐसा जानता है, वह समस्त लोकों में प्रकाशित होता है।

अब ऐसे ब्रह्मवेत्ता की गति बतलाते हैं—इस ब्रह्मवेत्ता की अन्त्येष्टि-क्रिया करें पान करें—वह अर्चि अभिमानी देवता को प्राप्त होता है। फिर अर्चि-अभिमानी देवता से दिवसाभिमानी देवता को, दिवसाभिमानी देवता से शुक्ल पक्षाभिमानी देवता को और शुक्लपक्षाभिमानी देवता से उत्तरायण के ६ मासों को प्राप्त होता है। मासों से संवत्सर को संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त होता है। वह वैद्युति दशा को प्राप्त हुआ मनुष्य साधारण मनुष्यों से भिन्न अधिक उन्नत होता है।

वह अमानव पुरुष इन ब्रह्मवादियों को ब्रह्म की प्राप्ति कराता है। वह देवपथ-देवयान है। यह ब्रह्मपथ ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग है। इस मार्ग से जानेवाले इस मानवी संसार को नहीं पाते।

सत्रहवाँ खण्ड

प्रजापति ने लोकों को लक्ष्य बनाकर ध्यान रूप तपसे उन्हें तपाया, तपस्या से तप्त उन लोकों से उसने रस निकाले। पृथिवी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु, और द्युलोक से आदित्य को निकाला। फिर उसने इन्हीं तीन देवताओं को लक्ष्य बनाकर तप किया। उन तप किए जाते हुए देवताओं से उसने रस निकाले। अग्नि से ऋक्, वायु से यजुः और आदित्व से सामग्रहण किए। इसके बाद उसने इस त्रयी विद्या को लक्ष्य करके तप किया। उस तप की जाती हुई विद्या से उसने रस निकाले। ऋक्श्रुतियों से भूः, यजुः श्रुतियाँ से भुवः तथा सामश्रुतियों से स्वः इन रसों को ग्रहण किया।

उस यज्ञ में यदि ऋचाओं से क्षति पहुँचे तो 'गार्हपत्ये भूः स्वाहा, बोलकर आहुति दें। ऋचा से हुई क्षति को उन ऋचाओं के रस और ऋचाओं की शक्ति से दूर कर देता है।

और यदि यजुः से यज्ञ का क्षत हुआ हो तो दक्षिणाग्नि स्वाहा बोलकर आहुति देनी चाहिए। यजुः से हुई क्षति को उस यजुःही के रस से, और यजुःही के बल से दूर करता है।

और यदि सामसे यज्ञ-क्षत हुआ हो तो आहवनीय अग्नि में स्वाहा बोलकर आहुति देनी चाहिए। सामसे हुई सामक्षति को साम ही रस और साम ही के बल से दूर करता है।

जैसे क्षार से सोने को, सोने से चाँदी को चांदी को त्रपुको. त्रपु से सीसे को सीसे से, लोहे को और लोहे से काष्ठ को अथवा चमड़े से काष्ठ को जोड़ा जाता है। उसी प्रकार इन लोकदेवताओं और त्रयी विद्या की शक्ति से यज्ञ के क्षत का घाटा पूरा किया जाता है। जिस यज्ञ में ऐसा विशेषज्ञ ब्रह्मा-होता है, वह यज्ञ निश्चय ही मानों ओषधियों द्वारा संस्कृत होता है। जहाँ इस प्रकार जानने वाला ब्रह्मा होता है, वह यज्ञ उदक्प्रवण होता है। इस प्रकार जानने वाले ब्रह्मा के उद्देश्य से ही यह गाथा प्रसिद्ध है कि "जहाँ-जहाँ कर्म आवृत्त होता है, वहीं वह पहुँच जाता है।

एक मानव ब्रह्माही ऋत्विक् है, जिस प्रकार युद्ध में घोड़ा योद्धाओं की रक्षा करता है, उसी प्रकार ऐसा विशेषज्ञ ब्रह्मा यज्ञ. यजमान और अन्य सभी ऋत्विकों की सब ओर रक्षा करता है। अतः ऐसे ही विशेषज्ञ को यज्ञ का ब्रह्मा बनाना चाहिए। ऐसा न जानने वाले को नहीं। ऐसा न जानने वाले को नहीं।

पाँचवाँ प्रपाठक

पहला खण्ड

निश्चय ही जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता है, वह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है। प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है।

जो निश्चय रूप से वसिष्ठ को जानता है वह अपने परिवार में वसिष्ठ होता है—ऐसा प्रसिद्ध है। वाणी ही वसिष्ठ है। जो प्रतिष्ठा को जानता है। वह इस और उस लोक में प्रतिष्ठित होता है। नेत्र ही प्रतिष्ठा है। जो संपद् को जानता है, उसके लिए देव और मनुष्य संबंधी कामनाएँ अवश्य पूरी होती हैं। श्रोत्र ही संपद् है।

जो आयतन को जानता है, अवश्य वह अपने परिवार का आश्रयदाता होता है। मन ही आयतन है। ऐसा कहा जाता है, कि प्राण और इन्द्रियों में आपस में झगड़ा हुआ प्राण ने कहा कि मैं श्रेष्ठ हूँ और इन्द्रियों ने कहा कि हम श्रेष्ठ हैं। झगड़ा निपटाने के लिए इन्द्रियाँ और प्राण मिलकर प्रजापति के पास गए और बोले कि हम में कौन श्रेष्ठ है? प्रजापति ने इन्द्रियों से कहा कि तुममें से जिस एक के भी निकल जाने से शरीर निकम्मा देख पड़े उसे ही श्रेष्ठ समझो?

ऐसा प्रसिद्ध है, कि पहले वाणी ही शरीर से निकल गयी और साल भर बाद लौटकर बोली कि मेरे बिना तुम लोग कैसे जी रहे हो? शेष इन्द्रियों ने उत्तर दिया जैसे गूँगा न बोलते हुए भी प्राण से श्वास लेता है, आँख से देखता है, कान से सुनता है, मन से विचारता है, उसी प्रकार हम सब भी जीते रहे। यह सुनकर वाणी अपनी अश्रेष्ठता समझ शरीर में प्रविष्ट हो गयी।

तब आँखें बाहर निकल गयीं। एक वर्ष तक बाहर रहकर जब वे लौटीं तो बोलीं कि हमारे बिना तुम कैसे जीवन धारण में समर्थ रही हो ? शेष इन्द्रियों ने उत्तर दिया कि अन्धा बिना देखे प्राण से श्वास लेता है. वाणी से बोलना है, कान से सुनता है, मन से सोचता है, इसी प्रकार हम भी जीवित रहीं। यह सुनकर आँखें चुपचाप शरीर में प्रविष्ट हो गयीं।

इसके बाद कान बाहर चले गए, वे वर्ष भर बाहर रहकर जब लौटे तो बोले कि हमारे बिना तुम कैसे जीवन धारण करने में समर्थ रही हो। इन्द्रियों ने कहा—जैसे बहरा आदमी प्राणों से साँस लेता है, वाणी बोलता है, आँख से देखता है, मनसे सोचता है, इसी तरह हम भी जीवित रही हैं। यह सुनकर कान शरीर में प्रविष्ट हो गए।

तब मन बाहर निकल गया। एक वर्ष बाहर रहने के बाद लौटकर वह बोला, मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहीं। इन्द्रियाँ बोलीं, जैसे अज्ञानी सोचे बिना प्राण से साँस लेता है, वाणी से बोलता है, आँख से देखता है, कान से सुनता है, इसी प्रकार हम भी जीवित रहीं। यह सुनकर मन शरीर में प्रविष्ट हो गया।

इसके बाद प्राण ने शरीर से बाहर निकलने की इच्छा की। उसने अन्य इन्द्रियों को इस प्रकार उखाड़ दिया जैसे बलवान् घोड़ा बाँधने के खूंटे को एक झटके से उखाड़ देता है। उस प्राणको चारों ओर से घेर कर इन्द्रियाँ बोलीं—भगवन्, तुम हमारे स्वामीं हो, हम में, तुम्हीं श्रेष्ठ हो अब मत निकलो ?

इसके बाद उस प्राण से वाणी बोली, कि यदि मैं वसिष्ठा हूँ तो तुम वसिष्ठ हो। आँखों ने कहा—यदि हम प्रतिष्ठा हैं तो तुम प्रतिष्ठ हो। कानों ने कहा यदि संपदा हैं तो तुम सपद् हो। मनने कहा–यदि मैं आश्रय हूँ तो तुम आश्रय-स्थान हो।

निश्चय है कि वाणी को वाणी, आँख को आँख, कान को कान, मन को मन नहीं कहा जाता बल्कि इन सब को प्राण ही कहा जाता है। निश्चय ही ये सब प्राण ही हैं।

दूसरा खण्ड

वह प्राण बोला मेरा क्या अन्न होगा ? इन्द्रियों ने कहा-कुत्ते से लेकर पक्षी तक जो कुछ यह है वही तुम्हारा अन्न है। निश्चय यह 'अन' (प्राण) का अन्न है। 'अन' ही प्राण का प्रत्यक्ष नाम है। इस प्राकर प्राण को जानने वाले के लिए ऐसा कुछ भी नहीं हैं, जो अनन्न—अन्न से भिन्न हो।

वह प्राण बोला, मेरा क्या वस्त्र होगा ? इन्द्रियों ने उत्तर दिया कि जल। निश्चय ही अन्न खाने की इच्छा रखनेवाले भोजन से पूर्व और पश्चात् जल से अन्न से, आचमन करके ढाँक लेते हैं। इस प्रकार यह प्राण वस्त्र धारण करता है, नाम नहीं रहता।

कहा जाता है, कि सत्यकाम जाबालने व्याघ्रपाद के पुत्र गोश्रुत को यह प्राण विजय—गाथा सुनकर बतलाया कि यदि यह गाथा सूखे हुए वृक्ष को भी सुनायी जाए तो उसमें भी हरी हरी डालियाँ और पत्ते पनप आएँ।

अब यदि कोई महत्त्व प्राप्त करने की इच्छा करे तो वह सभी औषधियों के चूर्ण को दही और शहद के साथ पात्र में मथकर 'ज्येष्ठायस्वाहा 'श्रेष्ठाय स्वाहा, कहकर अग्नि में आहुति देकर स्रुव से लगे हुए घृत को उस पात्र में डाले।

'वसिष्ठाय स्वाहा' बोलकर अग्नि में घृत की आहुति देकर स्रुव से टपकते हुए घृत को उस मथने वाले पात्र में डाले इसी

प्रकार 'प्रतिष्ठायै स्वाहा', 'सम्पदे स्वाहा', 'आयतनाय स्वाहा' अलग-अलग बोलकर आहुति दे।

इसके बाद दोनों हाथों की अंजुली में मथने वाला पात्र रखकर जप करे 'अमः नाम असि' (तुम्हारा अम नाम है), अमाहिते सर्व-मदँ (वह सब तेरी अमा शक्ति है), 'सतिह ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजा-धिपतिः' (वह तुम्हीं ज्येष्ठ और श्रेष्ठ राजा और अधिपति हो) 'समा ज्येष्ठ्यँ श्रैष्ठ्यं राज्यमाधिपत्यं गमय' (वह आप मुझे भी ज्येष्ठता, श्रेष्ठता, राज्य और आधिपत्य प्रदान करें). 'अहमे-वेदँ ।सर्वमसन्नीति' (मैं भी यह सब हो जाऊं)।

इसके बाद इस ऋचा से अच्छी तरह एक पाद से आचमन करे। 'तत्सवितुर्वृणीमहे' कह कर पहला आचमन करे। 'वयम् देवस्य भोजनम्' कह कर दूसरा आचमन करे। 'श्रेष्ठं सर्वधातमम्' बोलकर तीसरा आचमन करे। 'तुरंभगस्य धीमहि' बोलकर शेष जल पीले ।

इसके बाद काँसे के पात्र या चमस को छोकर अग्नि के पीछे मृगचर्म अथवा भूमि पर मौन होकर काम क्रोध आदि से संबंधित कोई साहस न करता हुआ बैठ जाय और यदि स्वप्न में स्त्री दिखायी पड़े तो कार्य को सफल समझना चाहिए।

उपर्युक्त विषय से सम्बन्धित एक श्लोक है—यदि इच्छित कर्म में स्वप्न में स्त्री दिखायी पड़े तो ऐसे स्वप्न से कार्य की सफलता समझनी चाहिए।

तीसरा खण्ड

ऐसा सुना जाता है, कि आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पंचाल राज्य की सभा में आया। राजा जैबलिप्रवाहण ने उससे कहा—कुमार.

क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें शिक्षा दी है? कुमार ने उत्तर दिया— हाँ भगवन्!

यहाँ से मरकर ये जीव ऊपर जिस स्थान में जाते हैं, उसे तुम जानते हो?

नहीं राजन्, मैं नहीं जानता।

जैसे वे फिर लौटते हैं, क्या तुम जानते हो?

नहीं राजन्, यह भी नहीं जानता।

देवयान और पितृयान के मार्ग जहाँ से अलग होते हैं क्या तुम जानते हो?

नहीं राजन् मैं नहीं जानता।

इस लोक से बराबर लोग जाते हैं किन्तु यह क्यों नहीं मरता, क्या तुम जानते हो?

नहीं राजन्!

जिस प्रकार पाँचवीं आहुति में जल जीव वाचक होते हैं— क्या तुम जानते हो?

नहीं भगवन्।

राजा ने कहा—तब यह क्यों कहा था, कि मैं शिक्षित हूँ क्यों कि जो इसे नहीं जानता है, वह अपने को कैसे शिक्षित कह सकता है।

परास्त होकर श्वेतकेतु अपने पिता के पास चला आया। और पिता से बोला—बिना शिक्षित किए हुए आपने मुझसे कैसे कह दिया कि शिक्षा पूरी हो गयी। उस क्षत्रियाधम जैबलि ने मुझ से पाँच प्रश्न किए, किन्तु मैं एक का भी उत्तर न दे सका।

पिता ने कहा—वहाँ से आने पर तुमने राजा के जिन प्रश्नों को मुझ से बताया है, उन प्रश्नों में से एक भी उत्तर मैं स्वयं नहीं जानता हूँ। यदि उनका उत्तर मुझे ज्ञात होता तो मैं तुझे अवश्य बतलाता।

वे प्रसिद्ध गौतम ऋषि राजा के पास आए। राजा ने उनका सत्कार किया। प्रातःकाल ऋषि राजा की सभा में आए। राजा ने गौतम से कहा—भगवन् गौतम, मनुष्य सम्बन्धी धन का वर मुझसे माँगिए ?

गौतम बोले—राजन्, मनुष्य सम्बन्धी धन आपका ही रहे। मेरे कुमार से जिन प्रश्नों को आपने पूछा था, उन्हीं को मुझ से कहें।

गौतम की यह बात सुनकर राजा दुखी हुआ। उसे बहुत दिनों तक अपने यहाँ रहने की आज्ञा दी। पश्चात् बोला—

आपने मेरे द्वारा किए गए जिन प्रश्नों का उत्तर मुझसे ही पूछा है, आपसे पहले यह विद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गयी थी। इसीलिए समस्त लोकों में क्षत्रियों का ही अधिकार रहा। इस प्रकार राजा ने गौतम से कहा।

चौथा खण्ड

हे गौतम, यह द्युलोक ही अग्नि है। उसकी समिधा सूर्य है। उस अग्नि का धुवां सूर्य की किरणें हैं, उसकी ज्वाला दिन है, अंगार चन्द्रमा है और चिनगारियाँ नक्षत्र हैं। देवगण इस अग्नि में श्रद्धा-रूप जल का हवन करते हैं। उस आहुति से राजा सोम (जलीय भाफ) पैदा होता है।

पाँचवाँ खण्ड

हे गौतम, मेघ ही अग्नि है, वायु समिधा, बादल धुआँ है। बिजली ज्वाला है। वज्र अँगारे और गर्जन ही चिनगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवगण राजा सोम (भाफ) की अहुति देते हैं। उसी आहुति से वर्षा हुआ करती है।

छठा खण्ड

हे गौतम, पृथ्वी ही अग्नि है, संवत्सर ही उसकी समिधा है। अकाश धुआँ है। रात्रि ज्वाला है, दिशा अंगारे हैं और अवान्तर दिशाएँ चिनगारियाँ हैं। इस आग में देवतागण वर्षा की आहुति देते हैं। उस आहुति से अन्न पैदा होता है।

सातवाँ खण्ड

हे गौतम, पुरुष ही अग्नि, उसकी वाणी समिधा, उसके प्राण धुआँ, जिह्वा ज्वाला, आँख अंगार और कान चिनगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवगण अन्न की आहुति देते हैं, उस आहुति से वीर्य पैदा होता है।

आठवाँ खण्ड

हे गौतम, स्त्री ही अग्नि है, उसका गुह्य स्थान ही समिधा है, उसका जो प्रयोग है वही धुआँ है। योनि ही ज्वाला है। उसके अन्दर जो प्रवेश करता है वही अंगार है। और उस से जो आनन्द मिलता है वही चिनगारियाँ हैं।

इस अग्नि में देवगण वीर्य की आहुति देते हैं, उसी आहुति से गर्भधान होता है।

नवाँ खण्ड

इस प्रकार पाँचवीं आहुति में जल पुरुषवाची होता है। वह गर्भ झिल्ली से लिपटा हुआ दसवें या नवें महीने तक माता के उदर में रहने से बाद उत्पन्न होता है। वह उत्पन्न बालक अपनी आयु भर जीता है। मर जाने पर उसे कर्म के अनुसार अग्नियाँ निर्दिष्ट योनि में ले जाती हैं। जहां से वह यहाँ आया था और जहाँ जाकर उत्पन्न होता है।

दसवाँ खण्ड

जो इस प्रकार पंचाग्नि को जानते हैं, तथा अरण्य (वन) में श्रद्धा और तप का सेवन करते हैं वे आर्चिषी दशा को प्राप्त होते हैं। आर्चिषी दशा से दिन की दशा को, दिन की दशा से शुक्ल पक्ष की दशा को, शुक्ल पक्ष की दशा से उत्तरायण होते हुए सूर्य जिन ६ महीनों को प्राप्त होता है—उसे प्राप्त करते हैं।

मासिकी दशा से संवत्सर समान दशा को। संवत्सरी दशा से आदित्य समान दशा को, आदित्य समान दशा से चन्द्र समान दशा को, चान्द्रमसी दशा से विद्युतीय दशा को प्राप्त होते हैं। वहाँ पहुँचकर वह पुरुष अलौकिक बन जाता है। वही ज्योति उन्हें ब्रह्म को प्राप्त कराती है। यह देवयान का मार्ग है ।

और जो गाँवों में लोग वैदिक यज्ञ करने तथा कुआँ, धर्मशाला, बाग-बगीचा आदि बनाने का दान करते हैं, वे धुएँ वाली दशा को प्राप्त होते हैं। उस धौम दशा से रात्रिदशा को, रात्रि दशा से कृष्ण पक्ष की दशा को, कृष्ण पक्ष की दशा से जिन ६ मासों में सूर्य दक्षिण को जाता है, वे उन्हीं को प्राप्त करते हैं। संवत्सरी दशा को नहीं प्राप्त होते हैं।

दक्षिणायन छमाही दशा से पैतृक दशा को, पैतृक दशा से चान्द्रमसी दशा को प्राप्त होते हैं। वह सोम राजा है, वह देवताओं का अन्न होता है, उसे देवता खा लेते हैं। कर्मक्षय न होने तक वे उसी दशा में रहकर उसके बाद उसी मार्ग से फिर लौटते हैं जिससे गए हैं। आकाश आकाश से, वायु वायु होकर धुआँ बनता है। धुआँ बना हुआ वायुसमूह अभ्र बनता है। अभ्र से मेघ बनता है और वह पानी बरसता है। वे जीव यहाँ (संसार में) धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल और उड़द होकर पैदा होते हैं। यह निश्चय है, कि यहाँ से जीव का निकलना कठिन है। जो जो निश्चय अन्न को खाता है, वह वह स्त्रियों में वीर्य का सिंचन करता है। वह उसी का रूप बन जाता है।

जो इस लोक में उत्तम कार्य करते हैं, वे शीघ्र ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य जैसी उत्तम योनि को प्राप्त करते हैं और जो बुरे कार्य करते हैं, वे कुत्ता, सुअर और चाण्डाल जैसी निकृष्ट योनि को प्राप्त करते हैं।

और जो इन मार्गों में से किसी से नहीं जाते हैं, वे तुच्छ शीघ्र मरने वाले जीव होते हैं। पैदा होना और मरना नामक तीसरा है। इससे यह लोक नहीं भरता। इसलिए इसे निंदित समझना चाहिए। इस विषय में निम्नांकित श्लोक है—

कहा जाता है, कि जो इन पाँच अग्नियों को इस प्रकार जानता है, वह उन पापियों के साथ व्यवहार रखता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता वह शुद्ध, पवित्र पुण्यलोक वाला होता है। जो ऐसा जानता है। जो ऐसा जानता है।

ग्यारहवाँ खण्ड

उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष के पुत्र सत्ययज्ञ, भाल्लवी के

पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष के पुत्र जन, अश्वतराश्वि के पुत्र बुडिल ये प्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, कुलपति थे। एक दिन आपस में मिलकर सोचने लगे कि आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या है ?

उन्होंने निश्चय किया कि इस समय अरुण वंश में उत्पन्न उद्दालक मुनि इस वैश्वानर आत्मा को जानते हैं। इसलिए उचित है. कि उनके पास चलें—यह तयकर वे उनके पास पहुँचे।

उन्हें देखकर उद्दालक मुनि पशोपेश में पड़ गए कि ये पाँचों महान् वेदविद् होने के साथ ही कुलपति हैं, पता नहीं क्या पूछेंगे और कदाचित् मैं उत्तर न दे सकूं। इसलिए किसी दूसरे को इन्हें बतलाऊँ।

यह निश्चयकर उद्दालक ने उनसे कहा—भगवन्, इस समय केकय देश के राजा अश्वपति वैश्वानर आत्मा के विशेषज्ञ हैं। अच्छा हो कि हम सब उन्हीं के पास चलें। यह तयकर सब चल दिए।

राजा अश्वपति ने उन विद्वानों की पृथक् पृथक् पूजा की। प्रातःकाल दूसरे दिन उसने उनसे कहा—मेरे राज्य में न चोर हैं, न कृपण, न शराबी न अग्निहोत्र न करने वाले हैं, न मूर्ख हैं, न व्यभिचारी पुरुष फिर व्यभिचारिणी स्त्रियाँ कहाँ। भगवन् मैं यज्ञ करने वाला हूँ। जितना अन्य ऋत्विजों को धन दूंगा, उतना आप लोगों को भी दूंगा। मान्यवर विद्वानों, आप मेरे घर में निवास करें।

वे विद्वान् बोले—जिस प्रयोजन के लिए किसी,के पास जाए उसी को उससे कहे। इस वैश्वानर आत्मा का अध्ययन इस समय आपने ही किया है। उसी का उपदेश हमें दें।

अश्वपति बोले, कल प्रातःकाल उत्तर दूंगा। वे विद्वान् दूसरे दिन हाथों में समिधाएँ लिए, हुए राजा के पास खुद गए। उन

विद्वानों को उपनीत किए बिना ही राजा अश्वपति ने उनसे कहा–

बारहवाँ खण्ड

हे उपमन्यु वंश में उत्पन्न ऋषि, आप आत्मा की उपासना करते हैं ? हाँ राजन्, मैं द्युलोक की उपासना करता हूँ—ऐसा उसने उत्तर दिया।

राजा बोले, जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, निश्चय ही वह तेज युक्त वैश्वानर आत्मा है इसीलिए तुम्हारे कुल में सुत, प्रसुत और असुत दिखायी पड़ रहे है।

अन्न खाता है, प्रिय देखता है, जो इस वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है, वह भी अन्न खाता है। प्रिय देखता है। उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है। परन्तु आत्मा का वह शिर मात्र है। यदि आप मेरे पास न आते तो आपका शिर गिर जाता—ऐसा अश्वपति ने कहा।

चौदहवाँ खण्ड

अश्वपति ने इन्द्रद्युम्न से पूछा—हे वैयाघ्रपद्य ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं ? उसने उत्तर दिया भगवन्, मैं केवल वायु ही की उपासना करता हूँ।

राजा बोला—विश्व विविध प्रकार के गमन-स्वभाव वाला वैश्वानर आत्मा है जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो। इसी लिए अनेक प्रकार की भोग-सामग्रियाँ तुम्हें प्राप्त हैं और अनेक रथों की पंक्तियाँ तुम्हारे पीछे चलती हैं।

अन्न खाता है, प्रिय देखता है, जो कोई इस वैश्वानर की उपासना करता है—वह भी अन्न खाता है, प्रिय देखता है। उसके कुल में ब्रह्मवर्चस् होता है, परन्तु यह वायु वैश्वानर आत्मा का प्राणमात्र है। यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा प्राण निकल जाता।

पन्द्रहवाँ खण्ड

इसके बाद राजा ने जन से कहा—कि शार्कराक्ष्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो। उसने कहा—राजन् मैं आकाश ही की उपासना करता हूँ।

राजा बोला—जिसकी तुम उपासना करते हो, निश्चय ही यह आकाश बहुत बड़ा वैश्वानर आत्मा है, इसलिए तुम विपुल धन और सन्तान से सम्पन्न हो।

अन्न खाता है, प्रिय देखता है। जो कोई इस वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है, अन्न खाता है, प्रिय देखता है। उसके कुल में ब्रह्मवर्चस् होता है। परन्तु यह वैश्वानर आत्मा का मध्य शरीर मात्र है। तुम्हारा मध्य शरीर नष्ट हो जाता यदि तुम मेरे पास न आते।

सोलहवाँ खण्ड

इसके बाद राजा बुडिल से बोला—हे वैयाघ्रपद्य, तुम किस आत्मा की उपासना करते हो। उसने उत्तर दिया—भगवन् मैं जल ही की उपासना करता हूँ। राजा ने कहा—यह जल वैश्वानर आत्मा का ही धन है, जिसकी तुम उपासना कर रहे हो ? इसी-लिए तुम धनवान् और पुष्ट हो।

अन्न खाता है, प्रिय देखता है। जो कोई इस वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है, वह भी अन्न खाता है। और प्रिय देखता है। उसके कुल में ब्रह्मवर्चस् होता है। परन्तु यह जल वैश्वानर आत्मा का मूत्राशय मात्र है। यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा मूत्राशय फट जाता ।

सत्राहवाँ खण्ड

इसके बाद राजा ने उद्दालक से पूछा—'कि तुम किस आत्मा की उपासना करते हो। उद्दालक ने कहा—राजन्, मैं पृथिवी ही की उपासना करता हूँ। यह सुनकर प्रसिद्ध राजा ने कहा—जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो यह तो वैश्वानर आत्मा की प्रतिष्ठामात्र है। इसीलिए तुम सन्तान और पशुओं से प्रतिष्ठित हो।

अन्न खाता है, प्रिय देखता है। जो कोई इस वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है वह अन्न खाता है, प्रिय देखता है। उसके कुल में ब्रह्मवर्चस उत्पन्न होता है। परन्तु यह पृथिवी वैश्वानर आत्मा का पैरमात्र है। यदि तुम मेरे पास न आते तुम्हारे पैर सूख जाते।

अठारहवाँ खण्ड

उन सबसे राजा अश्वपति ने कहा—कि यह निश्चय है, कि तुम सब लोग वैश्वानर आत्मा के एक-एक अंग को जानते हुये अन्न खाते हो। किन्तु जो इस वैश्वानर आत्मा को विराट् और सबका निर्माता समझ कर उपासना करता है, वह समस्त लोकों समस्त प्राणियों और सम्पूर्ण आत्माओं में अन्न खाता है—आनन्द भोगता है।

उस अति प्रसिद्ध वैश्वानर आत्मा का मूर्द्धा तेज युक्त द्युलोक ही है। अनेक रूप वाला सूर्य उसका चक्षु है। अनेक मार्ग वाला वायु प्राण है। जल ही मूत्राशय है। पृथिवी ही पाँव है। यज्ञ वेदी ही वक्षः स्थल है। कुशा ही बाल है। दक्षिणअग्नि मन और आह-वनीय अग्नि मुख है।

उन्नीसवाँ खण्ड

इसलिए जो अन्न पहले वैश्वानर आत्मा के उपासक के पास आये उसे प्राणाय स्वाहा कह कर होम करे। उस आहुति से प्राण तृप्त होता है प्राण के तृप्त होने पर आँखें तृप्त होती हैं। आँखों के तृप्त होने पर आदित्य तृप्त होता है। आदित्य के तृप्त होने पर द्युलोक तृप्त होता है। द्युलोक के तृप्त होने पर जो कुछ द्युलोक और आदित्य के अधीन रहता है—वह सब तृप्त होता है। इन सब की तृप्ति के उपासक सन्तान, पशु, अन्न, तेज, ब्रह्मवर्चस् से तृप्त होता है।

बीसवाँ खण्ड

इसके बाद जिस दूसरी आहुति का होम किया जाए 'व्यानाय स्वाहा, कहकर। उससे व्यान तृप्त होता है। व्यान के तृप्त होने पर कान तृप्त होते हैं। कानों के तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है। चन्द्रमा के तृप्त होने पर दसों दिशाएँ तृप्त होती हैं। दिशाओं के तृप्त होने पर जो कुछ दिशाओं और चन्द्रमा के अधीन है वे सभी तृप्त होते हैं। उनके तृप्त होने उपासक पशु, अन्न, तेज और ब्रह्म-वर्चस् से तृप्त होता है।

इक्कीसवाँ खण्ड

इसके बाद 'अपानाय' कह कर तीसरी आहुति को छोड़े। इससे अपान तृप्त होता हैं। अपान के तृप्त होने पर वाणी तृप्त

होती है। वाणी के तृप्त होने पर अग्नि तृप्त होती है। अग्नि के तृप्त होने पर पृथिवी तृप्त होती है। पृथिवी के तृप्त होने पर पृथिवी और अग्नि के अधिकार में जो कुछ रहता है—वह सब तृप्त होता है। उनके तृप्त होने के बाद उपासक सन्तान, अन्न, तेज और ब्रह्म-वर्चस् से तृप्त होता है।

बाईसवाँ खण्ड

इसके बाद 'समानाय स्वाहा' कह कर चौथी आहुति छोड़ी जाए। इससे समान तृप्त होता है। समान तृप्त होने पर मन तृप्त होता है। मन के तृप्त होने पर मेघ तृप्त होता है पर्जन्य के तृप्त होने पर विद्युत तृप्त होती है, विद्युत के तृप्त होने पर जो कुछ विद्युत और मेघ के अधिकार में होता है, वह सब तृप्त होता है। इनके तृप्त होने के बाद उपासक सम्मान, पशु, अन्न और ब्रह्मवर्चस् से तृप्त होता है।

तेईसवाँ खण्ड

इसके बाद 'उदानाय स्वाहा' कह कर पाँचवीं आहुति दे। इससे उदान तृप्त होता है। उदान के तृप्त होने पर त्वचा तृप्त होती है। त्वचा के तृप्त होने पर वायु तृप्त होती है, वायु के तृप्त होने पर जो कुछ वायु और आकाश के अधिकार में होता है, वह तृप्त होता है, उसके तृप्त होने पर उपासक सन्तान पशु, अन्न तेज और ब्रह्मवर्चस् से तृप्त होता है।

चौबीसवाँ खंड

जो कोई इसे न जानता हुआ हवन करता है, वह मानो अंगारों को हटा कर राख में हवन करता है। और जो इसे ऐसा जानता हुआ हवन करता है, उसका समस्त लोकों, सम्पूर्ण प्राणियों और सब आत्माओं में हवन किया हुआ होता है।

जैसे मूंज की रुई आग में डालने से जल जाती है, वैसे ही उस उपासक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इस पद्धति को जानकर हवन करता है। इस प्रकार का विशेषज्ञ चाण्डाल को उच्छिष्ट दे उस का यह दान वैश्वानर आत्मा ही में हवन होता है। इस विषय में एक श्लोक है—

जैसे भूखे हुए बच्चे माता को चारों ओर से घेरे रहते हैं, वैसे ही समस्त प्राणी अग्निहोत्र का सेवा करते हैं।

छठा प्रपाठक

पहला खण्ड

ऐसा कहा जाता है कि श्वेतकेतु के पिता आरुणि ने उससे कहा—हे श्वेतकेतु, ब्रह्मचर्य वास करो। हे सौम्य, यह निश्चित है, कि हमारे कुल में वेद न पढ़कर कोई अधम ब्राह्मण नहीं होता। वह श्वेतकेतु १२ वर्ष की आयु में आचार्य कुल में प्रविष्ट होकर २४ वर्ष की आयु तक समस्त वेदों को पढ़ कर अपने को बड़ा अभिमानी और विद्वान् समझकर अकड़ता हुआ लौटा। उसके पिता ने उससे पूछा—हे सौम्य, जो तुम अपने को बड़ा अभिमानी, विद्वान् समझ कर अकड़ रहे हो क्या इसका आदेश तुमने अपने आचार्य से पूछा था। जिससे न सुना हुआ सुना जाता है, न जाना हुआ जाता है? श्वेतकेतु ने कहा—भगवन्, वह आदेश क्या है?

हे सौम्य, जैसे मिट्टी के ढेले को जान लेने से मिट्टी के सभी पदार्थों का बोध होता है। मिट्टी से बने हुए घड़े आदि वाणी के विस्तार और नाम मात्र हैं। केवल मिट्टी ही सत्य है। जैसे सोने के एक टुकड़े को जान लेने से उससे बने हुए सभी आभूषणों का बोध होता है। स्वर्ण–निर्मित तरह-तरह के अलंकार वाणी के विस्तार और नाम मात्र हैं। केवल सोना ही सत्य है। लोहे की

बनी हुई नाखून काटने वाली नहन्नी को देखकर लोहे से बने हुए सभी पदार्थों का बोध हो जाता है। वे सब वस्तुएँ वाणी के विस्तार और नाममात्र हैं। केवल काला लोहा ही सत्य है—हे सौम्य, यही वह आदेश है।

यह सुन कर श्वेतकेतु ने कहा—भगवन्, मेरे वे पूज्य आचार्य निश्चय यह नहीं जानते थे। अन्यथा मुझे अवश्य बतलाते अब आपही कृपा कर मुझे बतलावें?—"ऐसा ही हो सौम्य, कह कर पिता ने उत्तर दिया।

दूसरा खण्ड

पिता ने कहा—हे पुत्र, कैसे क्या हो सकता है? किस प्रकार असत् से सत् हो सकता है। हे सौम्य, पहले एक अद्वितीय सत् ही था। उसने इच्छा की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। बहुत प्रजा वाला हो जाऊँ। उस सत् ने तेज (अग्नि) उत्पन्न किया। तेज ने भी इच्छा की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ, बहुत प्रजा वाला हो जाऊँ। उसने जल उत्पन्न किया इसलिए मनुष्य जहाँ कहीं संतप्त होता है, उसे पसीना आ जाता है—उस तेज से ही जल उत्पन्न होता है।

उस जल ने सोचा कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ और संसार की रचना करूँ। उसने पृथिवी की रचना की। इसलिए जहाँ कहीं वर्षा होती है, वहीं वहुत अन्न उत्पन्न होता है। जल से ही वह अन्न तथा अन्य भोग्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

तीसरा खण्ड

इन सब प्राणियों के तीन ही बीज होते हैं अण्ड से उत्पन्न होने वाले, जीवित जन्तुओं से उत्पन्न होने वाले और पृथ्वी को

फोड़कर पैदा होने वाले वृक्ष आदि। वह यह देवता जिसने तेज, जल और अन्न को पैदा किया था, सोचने लगा कि अच्छा हो कि मैं अग्नि, जल और पृथिवी इन देवताओं और इस जीवतात्मा के साथ प्रविष्ट होकर नाम और रूप को अलग-अलग करूँ।

उन तेज, जल और पृथिवी से एक-एक को तीन तीन गुणा करूँ। अतः यह सत् देवता उन तीनों देवताओं में जीवात्मा के साथ प्रविष्ट होकर नाम और रूप भेद से भिन्न-भिन्न बन गया।

फिर उन तीनों में से एक-एक को तीन-तीन गुणा किया। हे सौम्य, ये प्रसिद्ध तीनों देवता एक-एक जैसे तीन-तीन गुणा होता है—वह मुझ से जान लो।

चौथा खंड

अग्नि में जो लाल रंग है वह तेज का रूप है। सफेद रंग जल का रूप है और काला रंग पृथिवी का रूप है। इस प्रकार अब अग्नि का अग्नित्व चला गया। अग्नि का जो स्थूल रूप है, वह वाणी का विस्तार है, और नाम मात्र है। तीन रूप ही सत्य हैं।

आदित्य का जो लाल रंग है वह तेज का 'रूप है। उसका सफेद रंग जल का और काला रंग पृथिवी का रूप है। इस प्रकार आदित्यत्व चला गया। आदित्य का जो अब स्थूल रूप है—वह वाणी का विस्तार और नाम मात्र है। तीन रूप ही सत्य हैं।

चन्द्रमा में जो लाल रंग है वह तेज का रूप है। उसका सफेद रंग जल का और काला रंग पृथिवी का रूप है। इस प्रकार चन्द्रमा का चद्रत्व चला गया। उसका जो स्थूल रूप है— वह वाणी का विस्तार है और नाम मात्र है। तीन रूप ही सत्य हैं।

बिजली का जो लाल रंग है, वह तेज का रूप है। उसका सफेद रंग जल का और काला रंग पृथ्वी का रूप है। इस प्रकार अब बिजली का विद्युत्व चला गया। बिजली का जो अब स्थूल रूप है वह वाणी का विस्तार है और नाम मात्र है। तीन रूप ही सत्य हैं।

ऐसा कहा जाता है, कि पहले इसी विद्या को जाननेवाले कुल-पति वेदज्ञ कहा करते थे कि अब हम को कोई न सुनी हुई, न समझी हुई और न जानी हुई वस्तु को बतला सकेगा। क्योंकि उन्होंने सब विज्ञान को जान लिया था।

उन्होंने यह जान लिया था। कि जो कुछ भी लाल रंग का है वह तेज का रूप है। जो सफेद है वह जल का रूप है और जो काला है वह पृथिवी का रूप है। जो कुछ उन्होंने नहीं जाना था— उसे उन्होंने उन्हीं देवताओं का समास (मेल) समझ लिया था। हे सोम्य, जैसे ये तीनों देवता जीवात्मा से मिलकर प्रत्येक तीन-तीन प्रकार का होता है—उस विज्ञान को तुम मुझसे समझो।

पाँचवाँ खण्ड

खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है। उसका सबसे स्थूल भाग मल बन जाता है, जो मध्य भाग है वह मांस और जो अति सूक्ष्म भाग होता है वह मन होता है।

जल पीने के बाद तीन भागों में विभक्त हो जाता है। उसका स्थूल भाग मूत्र होता है। मध्य भाग रक्त और अति सूक्ष्म भाग प्राण होता है। पचाये हुए भोजन का अंश (तेज) तीन भागों में बँट जाता है। उसका स्थूल भाग अस्थि होता है, मध्य भाग मज्जा होता है और अति सूक्ष्म भाग वाणी होता है।

हे सौम्य, मन अन्न से बना हुआ है। जलमय प्राण और तेजोमयी वाणी होती है। यह सुन कर श्वेतकेतु ने कहा—भगवन, मुझे समझाइए ?

पिता ने उत्तर दिया—सौम्य, ऐसा ही हो।

छठा खण्ड

हे सोम्य, मथे गए दही का जो सूक्ष्म भाग ऊपर उठ आता है—वह मण्ठवन कहलाता है। इसी प्रकार खाए हुये अन्न का जो सूक्ष्म भाग ऊपर उठता हैं वही मन है। पिये हुए जल का जो सूक्ष्म भाग है वह प्राण है। पचाये हुए भोजनांश का जो सूक्ष्म भाग ऊपर उठता है, वह वाणी है। हे सोम्य, मन अन्नमय, प्राण जलमय और वाणी तेजो मयी है। पुत्र ने कहा—पिता जी, और समझाइए ? पिता ने कहा—बहुत अच्छा बेटा !

सातवाँ खण्ड

हे सोम्य, पुरुष सोलह कला कला है। १५ दिन तक भोजन न करो, इच्छानुसार जल पियो, जल पीते रहने से प्राणों की रक्षा होती है क्योंकि प्राण जलमय हैं।

कहा जाता है, कि श्वेतकेतु ने बहुत दिन तक भोजन नहीं किया, इसके बाद वह पिता के समीप गया और पूछा—पिता जी, क्या कहूँ। पिता ने कहा—सोम्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को सुनाओ ? पुत्र ने कहा—पिता जी, मुझे तो कुछ भी याद न रह गया।

पिता ने कहा—हे सोम्य, जैसे जलते हुए अग्निपुँज में से शेष एक मामूली तिनगी (चिनगारी) जुगनू की तरह कुछ भी जलाने में असमर्थ होती है। उसी प्रकार तेरी सोलह कलाओं में

से एक कला शेष रह गयी है। इसीलिए तुम्हें वेदों का स्मरण नहीं हो रहा है। भोजन करो ?

भोजन करने के बाद तुम मेरी बात समझोगे ? उसने भोजन किया और फिर वह पिता के पास गया। उससे जो कुछ पिता ने पूछा वह सब समझ गया। तब पिता ने फिर कहा—

सोम्य, जैसे जलती हुई आग में बचे हुए जुगनू के समान एक छोटी सी चिनगारी से इकट्ठे किए गए तिनकों को जला लिया जाता है, और जलते हुए अंगारे से तो बहुत बड़ी चीज जलायी जा सकती है।

हे सोम्य, इस तरह सोलह कलाओं में से तेरी एक ही कला शेष रह गयी थी। वह अन्न से बढ़कर चमक उठी है। उसी चमकती हुई कला से तू वेदों को समझ रहा है। हे सोम्य, निश्चय ही मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है। अपने पिता के वचनों को तब पुत्र ने समझा। तब वह समझा।

आठवाँ खण्ड

कहा जाता है, कि अरुण के पुत्र उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा—सौम्य, मुझे स्वप्न की अन्तिम अवस्था 'सुषुप्ति' समझो ! जब इस पुरुष (जीव) का 'स्वपिति' नाम होता है, तब वह जीव आत्म सम्पन्न (अन्तुर्मुखी चेतना सम्पन्न) होता है। इसलिये इस जीव को स्वपिति (सोता है) —ऐसा कहा जाता है। क्योंकि यह जीव अपने में लीन होता है।

जैसे सूत से बँधा हुआ पक्षी चारों ओर गिर कर अन्न का सहारा न मिलने से बन्धन का ही आश्रय लेता है। ऐसे ही यह मन जीव के चारों ओर घूमकर अन्यत्र आश्रय न पाकर ब्रह्म का

ही आश्रय लेता है। क्योंकि हे सोम्य, मन (जीवात्मा) प्राण (ब्रह्म) के बन्धन से बँधा हुआ होता है।

हे सोम्य, भूख-प्यास के तत्व को मुझसे सीखो। जब इस पुरुष (जीव) का 'अशिशिषिति' नाम होता है, उससे दबाये हुए को गाय ले जाने वाले, घोड़ा ले जाने वाले और मनुष्यों के नेता की भाँति जल ही ले जाता है। इस प्रकार उस जल को 'अशनाम' कहते हैं। हे सोम्य, उत्पन्न हुए इस अंकुर (शरीर) को जानो यह शरीर बिना कारण के नहीं होता।

पृथिवी से भिन्न उसका कारण क्या होगा ? इसी तरह हे सोम्य, निश्चय ही पृथिवी रूप अंकुर (कार्य) से जल रूप कारण समझो ! जल रूप अंकुर (कार्य) से तेज रूप कारण समझो। तेज रूप अंकुर (कार्य) से सत (ब्रह्म) रूप कारण को जानो। हे सौम्य, सभी प्रजाएँ सत्कारण और सत् आश्रय वाली हैं। और सत ही में प्रतिष्ठित हैं।

जब यह पुरुष पीना चाहता है, तब 'पिपासति' नाम वाला होता है। उस पी हुई वस्तु की तेज इस प्रकार ले जाता है जैसे गायों को ले जाने वाले, घोड़ों को ले जाने वाले और मनुष्यों को ले जाने वाले ले जाते हैं। इसी प्रकार जल को ले जाने वाले तेज को उदन्य—उदक नायक कहते हैं। इस प्रकार इस उत्पन्न अंकुर (शरीर रूप कार्य) को समझो यह निर्मूल न होगा।

जल से भिन्न इस शरीर का मूल कारण कहाँ होगा। हे सौम्य जल रूप अंकुर (कार्य) को तेज रूप अंकुर (कार्य) के सत् रूप कारण समझो ? ये सभी प्रजाएँ सत रूप कारण वाली हैं। सत् आश्रय वाली सत् प्रतिष्ठा वाली हैं। जैसे तेज, जल, पृथिवी ये तीनों देवता जीव को प्राप्त करके एक-एक तिगुने-तिगुने हो

जाते हैं। इसका जो कुछ होता है। वह पहले बतलाया जा चुका है। हे सोम्य, मरने वाले पुरुष की वाणी मन में लीन हो जाती है। मन प्राण में और तेज परम देवता सत् में लीन हो जाते हैं। जो वह सूक्ष्मता है वही सत् है।

हे श्वेतकेतु, यह सब ब्रह्माण्ड परमात्मामय है, वह सत्य है, वह आत्मामय है। उसी आत्मा का तू (तत्वमसि) है।

तब श्वेतकेतु ने कहा—भगवन्, और भी मुझे समझाइए ? पिता ने कहा बहुत अच्छा पुत्र, समझो ?

नवाँ खण्ड

हे सोम्य, जैसे मधुमक्खियाँ अनेक रस वाले वृक्षों के रसों को एकत्र करके शहद बनाती हैं, लेकिन शहद के छत्ते में एकत्र वे अनेक रस यह नहीं जानते हैं, कि अमुक वृक्ष का मैं रस हूँ। इसी प्रकार ये सभी मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त करके भी यह नहीं समझ पाते कि ब्रह्म में हम वर्तमान हैं।

इस संसार में चीता, सिंह, भेड़िया, सुअर कीट, पतंग, मच्छर आदि जो जो जीव होते हैं, वही पुनः पुनः पैदा हुआ करते हैं। यह जो सूक्ष्म जगत है यह सब आत्ममय है। यह आत्मा सत्य है और हे श्वेतकेतु, तू आत्मा का है।

यह सुनकर श्वेतकेतु ने अपने पिता से कहा—हे भगवन्, और भी शिक्षा दें। पिता ने कहा—तथास्तु।

दसवाँ खण्ड

हे सोम्य, पूर्व दिशा में जाने वाली नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं और पश्चिम दिशा को जाने वाली नदियाँ पश्चिम की ओर

बहती हैं। ये नदियाँ समुद्र से समुद्र ही को जाती हैं। वे समुद्र ही हो जाती हैं। जैसे उस समुद्र से मिल कर वे नदियाँ जानतीं हैं कि मैं नदी हूँ, उसी प्रकार हे सोम्य, ये सब प्रजाएँ सत् से आकर यह नहीं जानतीं कि हम सत् मे आयी हैं। वे यहाँ चीता, सिंह, भेड़िया, सुअर, कीट, पतंग, मच्छर जो जो होते हैं, वैसे फिर होते हैं।

यह जो सूक्ष्म जगत् है सब आत्मामय है। यह सत् है, यह आत्मा है। श्वेतकेतु उसी का है। हे भगवन, मुझे और समझाइए। श्वेतकेतु के ऐसा कहने पर पिता ने कहा—तथास्तु।

ग्यारहवाँ खण्ड

हे सोम्य, इस महान वृक्ष की जड़ में यदि आघात किया जाए तो यह जीवित रहेगा—किन्तु इससे रस बहने लगेगा। यदि दूसरे मध्य भाग में प्रहार किया जाए तो भी जीवित रहेगा किन्तु रस बहने लगेगा। यदि इसकी चोटी पर प्रहार किया जाए तब भी यह जीवित रहेगा किन्तु रस बहने लगेगा। इस प्रकार यह वृक्ष जीवात्मा से व्याप्त होकर जड़ से पानी लेता हुआ सदैव प्रसन्न खड़ा रहता है।

इस वृक्ष की एक शाखा को जब जीव छोड़ देता है तब वह सूख जाती है। दूसरी शाखा को जब छोड़ देता है तब वह भी सूख जाती है। तीसरी शाखा को जब वह छोड़ देता है, तब वह भी सूख जाती है। समस्त जड़ को यदि छोड़ देता है, तो सारा वृक्ष सूख जाता है। हे सोम्य, ऐसी ही दशा इस शरीर की समझो?

निश्चय यह शरीर जीव के न रहने पर मर जाता है। किन्तु जीवात्मा नहीं मरता। यह जो सूक्ष्म जगत् है, सब आत्मामय है,

श्वेतकेतु, तू उसी का है। श्वेतकेतु ने कहा—भगवन् और भी मुझे उपदेश दें। पिता ने कहा—तथास्तु।

बारहवाँ खण्ड

इस वट वृक्ष का फल लाओ? पिता ने श्वेतकेतु से कहा।

भगवन् वह फल यह है —पुत्र ने कहा।

इस फल को फोड़ डालो?

भगवन्, फोड़ डाला मैंने इस फल को।

इसमें क्या देखते हो सोम्य!

अति सूक्ष्म दाने देख रहा हूँ भगवन्!

इसमें से एक दाने को फोड़ दो सोम्य!

दाने को फोड़ दिया—भगवन्!

इसमें क्या देखते हो सोम्य!

कुछ नहीं भगवन्!

हे सोम्य, इस सूक्ष्म दाने में जो तुम कुछ नहीं देखते हो, इसी से बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष उत्पन्न हुआ करता है। हे सोम्य, इस बात का विश्वास करो?

यह जो सूक्ष्म जगत् है, आत्मामय है। हे सोम्य तू उसी का है। यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा -भगवन्, मुझे और समझाइए? पिता ने कहा तथास्तु!

तेरहवाँ खण्ड

इस नमक को जल में डालकर प्रातः काल मेरे पास आना। श्वेतकेतु ने वैसा ही किया। पिता ने पुत्र से कहा—पुत्र, रात में जो

नमक पानी में डाला था, उसे ले आओ। श्वेतकेतु पानी में नमक ढूँढ़ता रहा किन्तु कहीं न मिला।

हे पुत्र, इस नमक मिले हुए जल के ऊपरी भाग का आचमन करके बताओ कैसा है ?

नमक ही है—भगवन् !

अब मध्य के जल का आचमन करके बताओ कैसा है ?

नमक ही है भगवन् !

अच्छा नमक मिले हुए इस जल का स्वाद लेकर मेरे पास आओ ? श्वेतकेतु ने वैसा ही किया और पिता से बोला वह नमक जल में मौजूद है। हे सोम्य, वह नमक इसी जल में है, लेकिन तुम नहीं देखते हो कि वह यहीं है। इसलिए यह जो सूक्ष्म जगत् है, सब आत्ममय है, तू भी उसी का है। यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा भगवन् मुझे और समझाइये। पिता ने कहा—तथास्तु।

चौदहवाँ खण्ड

हे सोम्य, जैसे किसी पुरुष की आँखें बाँधकर उसे गान्धार देश से लाकर किसी जंगल में छोड़ दिया जाय और वह उस वन में पूर्व, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम की ओर घूमता हुआ चिल्ला उठे कि आँखें बन्द करके मैं यहाँ लाया गया हूँ और उसी हालत में छोड़ दिया गया हूँ।

तब उस पुरुष की आँखों की पट्टी खोलकर कहे, कि इस दिशा में गान्धार नगर है चले जाओ। यदि वह विद्वान् और समझदार है तो एक गाँव से दूसरे गाँव को पूछता हुआ गान्धार नगर को पहूँच जाय। वैसे ही यहाँ आचार्य से शिक्षा प्राप्त पुरुष जानता है,

कि उसे उस समय तक की देर है, जब तक इस शरीर के बन्धन से छुटकारा नहीं पाता। इसके बाद वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा।

यह जो सूक्ष्म जगत् है, आत्मामय है। हे श्वेतकेतु, तू उसी आत्मा का है। यह सुनकर उसने कहा-भगवन्, मुझे और उपदेश दीजिए? पिता ने कहा—तथास्तु।

पन्द्रवाँ खण्ड

हे सोम्य, जब से रोगी मनुष्य के आसपास उसके परिवार के लोग घेरकर बैठ जाते हैं और उससे पूछने लगते हैं मुझको जानता है, मुझको पहचानता है। उसकी जब तक वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज आत्मा में लीन नहीं होता तब तक वह जानता है।

इसके बाद जब इसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज आत्मा में लीन हो जाता है तब वह नहीं पहचानता।

यह जो सूक्ष्म जगत् है—सब कुछ आत्मामय है। यह सत्य है, यह आत्मा है। श्वेतकेतु, तू इसी आत्मा का है—यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा—भगवन्, और भी मुझे उपदेश दीजिए। पिता ने कहा—तथास्तु।

सोलहवाँ खण्ड

हे सौम्य, किसी आदमी को हाथ पकड़ कर लाया जाता है, और कहा जाता है, कि इसने कोई चीज उठाली है—चोरी की है। इसके लिए लोहा से तपाओ। यदि वह सचमुच चोर होता है, तो

अपनी आत्मा को झूठा बनाता है। वह झूठा झूठ से अपनी आत्मा को छिपा कर गर्म लोहे को पकड़ लेता है। वह जल जाता है। इसके बाद वह चोर मार दिया जाता था।

और यदि वह पकड़ा हुआ आदमी चोर नहीं होता तो उसी ईमानदारी से वह अपनी आत्मा को ईमानदार बनाता है। सत्य से संबंधित होकर सत्य से अपनी आत्मा को ढांक कर वह गर्म लोहे को पकड़ लेता है। वह नहीं जलता और छोड़ दिया जाता है।

जैसे वह सच्चा पुरुष वहाँ जलता नहीं, ऐसी आत्मा से पूर्ण यह जगत् सत्य है, यह आत्मा है। हे श्वेतकेतु, तू उसी का है। तब श्वेतकेतु ने पिता के दिए गए उपदेशों को जान लिया। जान लिया।

सातवाँ प्रपाठक

पहला खण्ड

कहा जाता है, कि नारद सनत्कुमार के पास जाकर बोले—भगवन्, मुझे शिक्षा दीजिए—यह कहकर उनके पास बैठ गए। सनत्कुमार ने कहा, जो कुछ तुम्हारा अध्ययन हो उसे पहले प्रकट कर मेरे पास बैठो। तब तुम्हें उससे आगे की शिक्षा दूँगा।

नारद बोले—भगवन्, मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को जानता हूँ। इतिहास, पुराण और वेदों के मुख्य विषय को जानता हूँ। शुश्रूषा विज्ञान (नर्सिंग) राशि (गणित) उत्पात विज्ञान (दैवे) विधि (अर्थ शास्त्र) तर्क शास्त्र (वाको वाक्य) नीतिशास्त्र,

निरुक्त, ब्रह्मविद्या, ज्योतिष, प्राणविद्या, धनुर्विद्या, सर्पविद्या, नृत्य, गीत, वाद्य शास्त्र—इन्हें जानता हूँ।

हे भगवन् मैं शब्दविद् हूँ आत्मविद् नहीं। आपही जैसे पुरुषों मैंने सुना है, कि आत्मविद् व्यक्ति शोक को पार कर जाते हैं। हे भगवन्, मैं बहुत दुखी हूँ। अतः आप मुझे शोक से पार कर दें। सनत्कुमार ने कहा—इसमें सन्देह नहीं जो कुछ तुमने अध्ययन किया है वह नाम ही हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये निश्चय ही नाम हैं। पाँचवाँ इतिहास पुराण वेद वेदों के मुख्य विषय हैं। शुश्रूषा विज्ञान, गणित, उत्पातविज्ञान, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति शास्त्र, निरुक्त, ब्रह्मविद्या, प्राणिशास्त्र, धनुर्विद्या, ज्योतिष, सर्प देवजन विद्या, वृत्त गीत वाद्य शास्त्र ये सब नाम ही हैं। हे नारद तुम उन्हें जानो?

अतएव जो नाम को ही सबसे महान् समझ कर इसकी उपासना करता है, तो नाम की जहाँ तक गति होती है वहीं तक उस उपासक की भी गति रहती है—जा नाम को बड़ा समझता है।

नारद ने पूछा भगवन्, नाम से भी कोई महान् होता है? सनत्कुमार ने कहा हाँ होता है।

नारद ने कहा—तो फिर भगवन् मुझे उसे बतलाइए।

दूसरा खण्ड

सनत्कुमार ने कहा—नाम से बड़ी वाणी है। वाणी ही ऋग्वेद को बतलाती है। यजुर्वेद सामवेद, अथर्ववेद तथा पाँचवें इतिहास, पुराण वेदों के मुख्य विषय, सुश्रूषा विज्ञान, गणित, उत्पातविद्या, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त,

ब्रह्मविद्या, प्राणिशास्त्र, धनुर्विद्या, ज्योतिष, सर्पदेवजन विद्या, नृत्त, गीत, वाद्य शास्त्र, वाणी ही है। द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंस्रक जन्तु, कीट—पतंग, चींटी आदि क्षुद्र जन्तु, धर्म, अधर्म, सत्य, झूठ, अच्छा-बुरा, प्रिय-अप्रिय—निश्चय यदि वाणी न होती तो न धर्म और न अधर्म जाना जाता। न सत्य न झूठ, न अच्छा, न बुरा, न प्रिय न अप्रिय जाना जाता। इसलिए वाणी की उपासना करो।

इस प्रकार वाणी को बड़ा समझ कर जो इसकी उपासना करता है, तो जहाँ तक वाणी की गति है वहाँ तक उसकी गति रहती है। जो वाणी को जान कर उसकी उपासना करता है।

नारद ने पूछा—भगवन्, वाणी से भी बड़ा कुछ है।

सनत्कुमार ने कहा—हाँ वाणी से भी बड़ा है।

नारद—तब भगवन् उसका मुझे उपदेश दें।

तीसरा खण्ड

मन ही वाणी से बढ़ कर है। जैसे मुट्ठी दो आंवलों, दो बेरों अथवा दो बहेड़ों का अनुभव करती है, उसी प्रकार मन, वाणी और नाम दोनों का अनुभव करती है। इसलिए जब कोई मन से यह मनन करता है कि मंत्रों को पढ़ूँ—तो पढ़ता है, कर्मों को करूँ तो करता है। पुत्रों और पशुओं का इच्छा करूँ तो इच्छा करता है। इसलोक और परलोक की इच्छा करूँ तो इच्छा करता है। मन ही आत्मा है, मन ही लोक है, मन ही बड़ा है, इसलिए मन की उपासना करो।

इस प्रकार जो मन को बड़ा जान कर उसकी उपासना करता है, तो मन की जहाँ तक गति होती है—वहीं तक उसकी भी गति होती है। जो मन को बड़ा जान कर उपासना करता है।

नारद्—भगवन्, मन से भी बड़ा कुछ और है ?

सनत्कुमार—हाँ मन से भी बड़ा है।

नारद्—भगवन्, मुझे उपदेश दें।

चौथा खण्ड

मन से बड़ा संकल्प है। जब मनुष्य संकल्प करता है, तभी वह मनन करता है और फिर वाणी को प्रेरित करता है। तभी उस वाणी को नाम की ओर प्रेरित करता है। नाम में मंत्र एक होते हैं और मंत्रों में कर्म। निश्चय ये मन, वाणी और नाम संकल्प रूप हैं और संकल्प में स्थित रहते हैं। द्युलोक और पृथिवी संकल्पमय हैं। वायु और आकाश संकल्पमय हैं। जल और तेज संकल्पमय हैं। उन्हीं के संकल्प से वर्ष संकल्पमयी होती है। अन्न के संकल्प से प्राण संकल्पमय होते हैं, प्राण के संकल्प से मंत्र संकल्पित होते हैं। मंत्रों के संकल्प से कर्म संकल्पमय होते हैं, कर्मो के संकल्प से लोक संकल्पमय होते हैं और लोकों के संकल्पमय होने से सभी संकल्पमय होते हैं। ऐसा यह संकल्प है। संकल्प की उपासना करो ?

जो संकल्प को महान् समझ कर इसकी उपासना करता है, वह दृढ़, प्रतिष्ठित जूक्लेश रहित होकर संकल्पमय लोकों को प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति संकल्प की गति के अनुसार ही अपनी गति रखते हैं। जो संकल्प को महान् समझ कर इसकी उपासना करता है।

नारद--संकल्प से भी बड़ा कुछ और है भगवन् !

सनत्कुमार--हाँ संकल्प से भी बड़ा होता है।

नारद--भगवन्, मुझे उसका उपदेश दें।

पाँचवाँ खण्ड

संकल्प से महान् चित्त हैं। क्योंकि संकल्प करने से पूर्व चिन्तन किया जाता है। तभी मनन किया जाता है तभी वाणी प्रेरित होती है और वह वाणी नाम से प्रेरित होती है। नाम में मंत्र एक होते हैं और मंत्रों में कर्म।

निश्चय:वे ये संकल्प आदि चित्त के आश्रय चित्त स्वरूप और चित्त ही में प्रतिष्ठित है। इसलिए कोई बड़ा विद्वान् अस्थिर चित्त होता है तो उसे नहीं के बराबर समझा जाता है। क्योंकि यह समझा जाता हैं, कि यदि यह पुरुष विद्वान् होता तो अस्थिर चित्त कदापि न होता। और यदि कोई अल्पज्ञ होकर भी चित्तवान् होता है, तो उसकी सभी लोग सेवा करते हैं। चित्त ही इनका आश्रय है, चित्त ही आत्मा है और चित्त ही प्रतिष्ठा है। इसलिए चित्त की उपासना करो।

इस प्रकार जानता हुआ जो चित्त की उपासना करता है, वह दृढ़, प्रतिष्ठित, क्लेश रहित, और संकल्पमय लोकों को प्राप्त करता है। चित्त की जहाँ तक पहुँच है, उसकी भी वहीं तक पहुँच हो जाती है। जो चित्त को बड़ा जान कर काम में लाता है।

नारद--भगवन्, चित्त से भी बड़ा कुछ है ?

सनत्कुमार--हाँ चित से भी बड़ा है।

नारद--भगवन् तो फिर मुझे उसका उपदेश दें।

छठा खण्ड

ध्यान ही चित्त से बड़ा है। पृथ्वी मानो ध्यान कर रही है, अन्तरिक्ष मानो ध्यानस्थ है। द्युलोक मानो ध्यान मग्न है जल मानो ध्यान संलग्न है। पर्वत मानो ध्यान निमग्न हैं। इसलिए मनुष्यों में जो यहाँ महत्त्व प्राप्त किया करते हैं, मानो वे ध्यान की प्राप्ति की एक कला हैं। और ध्यान रहित क्षुद्र पुरुष होते हैं, वे उपद्रवी चोर, पिशुन और उपवादी (खुशामदी) होते हैं। जो प्रभुता सम्पन्न होते हैं मानो वे ध्यान के एक अंश के प्रताप से ही हैं। इसलिए नारद ध्यान से काम लो।

इस प्रकार जो ध्यान को बड़ा समझ कर ध्यान की उपासना करता है, वह ध्यान की पहुँच की बराबर अपनी पहुँच बना लेता है। जो ध्यान की उपासना करता है।

नारद—भगवन् ध्यान से भी बड़ा कुछ है ?

सनत्कुमार—हाँ ध्यान से भी बड़ा अवश्य है।

नारद—भगवन्, मुझे उपदेश दें।

सातवाँ खण्ड

विज्ञान ही ध्यान से बड़ा है। विज्ञान से ही ऋग्वेद जाना जाता है। यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहास पुराण, वेदों के मुख्य शुश्रूषा विज्ञान, गणित, उत्पात विज्ञान, अर्थ शास्त्र, तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र, निरुक्त, ब्रह्मविद्या, प्राणि शास्त्र, ज्योतिष, सर्प विद्या, नृत्त गान विद्या, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव-मनुष्य पशु-पक्षी, तृण-वनस्पति, हिंस्रक जन्तु, कीट-पतंग, चींटी, धर्म-अधर्म, सत्य-झूठ, अच्छा-बुरा, प्रिय-अप्रिय, अन्न, रस, लोक और परलोक को विज्ञान से ही जाना जाता है। इसलिए विज्ञान की ही उपासना करो।

जो विज्ञान की उपासना करता है, वह विज्ञान वेत्ता होकर विज्ञान वाले लोकों को प्राप्त करता है। जहाँ तक विज्ञान की पहुँच है वहाँ तक विज्ञान के उपासक की भी पहुँच हो जाती है। जो विज्ञान को बड़ा जान कर उसकी उपासना करता है।

नारद—भगवन्, विज्ञान से भी कुछ बड़ा है।

सनत्कुमार—हाँ इससे भी बड़ा है।

नारद—भगवन्, उसका उपदेश दें।

आठवाँ खण्ड

विज्ञान से बड़ा बल है। प्रसिद्ध है, कि सौ बलहीन विज्ञान वेत्ताओं को एक बलवान् कँपा देता है। जो बलवान् होता है उसमें कार्य करने की क्षमता भी होती है। कार्य करने में समर्थ होने पर सेवा करने वाला होता है। सेवा करता हुआ वह विद्वानों का अन्तेवासी बन जाता है। उनके निकट बैठता हुआ वह देखने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला, काम करने में समर्थ और विशेषज्ञ बन जाता है। बल से पृथिवी ठहरती है। बल से अन्तरिक्ष, बल से द्युलोक, बल से पर्वत, बल से देव, मनुष्य, बल से पशु, पक्षी, तृण वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट-पतंग क्षुद्र जीव स्थित हैं। यहलोक बल से ही ठहरा हुआ है। इसलिए बल की उपासना करो।

जो कोई बल को महान् समझ कर उसकी उपासना करता है उसकी पहुँच बल की पहुँच तक हो जाती है। जो बल को बड़ा जान कर काम में लाता है।

नारद—भगवन्, बल से भी कुछ बड़ा है।

सनत्कुमार—हाँ बल से भी कुछ बढ़कर है।

नारद—भगवन्, उसका मुझे उपदेश दें।

नवाँ खण्ड

अन्न ही बल से बढ़कर है। इसलिए यदि मनुष्य दस दिन दस रात भोजन न करे और यदि वह जीवित रह जाए तो उसकी देखने, सुनने, मनन करने, समझने, विशेष ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। अन्न प्राप्त हो जाए तो वह द्रष्टा, श्रोता अनुमन्ता, बोद्धा, कर्त्ता और विज्ञाता हो जाता है। 'इसलिए अन्न की उपासना करनी चाहिए।

जो अन्न को बड़ा समझ कर उसका उपयोग करता है वह अन्न और पान वाले लोकों को प्राप्त करता है। जहाँ तक की पहुँच है वहीं तक उसकी भी पहूँच हो जाती है। जो अन्न का इस प्रकार उपयोग करता है।

नारद—भगवन्, अन्न से भी बढ़कर कुछ है?

सनत्कुमार— हाँ है।

नारद—भगवन्, मुझे उपदेश दें।

दसवाँ खण्ड

अन्न से बढ़कर जल है। इसलिए जब अच्छी वर्षा नहीं होती है, तो प्राण दुःखी होते हैं। अन्न कम पैदा होता है और अच्छी वृष्टि होने पर प्राण पुलकित होते हैं खूब अन्न पैदा होता है। जितने मूर्त्तमान पदार्थ हैं सब जलमय हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, देव, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट पतंग आदि जल ही की सब मूर्तियाँ हैं। इसलिए जल की उपासना करो।

जो जल को बड़ा मानकर इसकी उपासना करता है, वह समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है। और तृप्त होता है—जो जल को महान् समझता है।

नारद—भगवन्, जल से बढ़कर कुछ है।

सनत्कुमार—हाँ है।

नारद—भगवन्, मुझे उपदेश दें।

ग्यारहवाँ खण्ड

जल से बढ़कर तेज है। यही तेज वायु के साथ आकाश को तपाता है तब लोग कहा करते हैं—बहुत गर्मी पड़ रही है। जरूर पानी बरसेगा। तेज ही उसे दिखाकर फिर पानी बरसाता है। वही ऊपर जाने वाली और तिरछी गति वाली बिजली को प्रकट करता है तब लोग कहते हैं कि बिजली चमक रही है, बादल गरज रहे हैं। तेज ही उस दृश्य को दिखाकर जल उत्पन्न करता है। इसलिए तेज की उपासना करो।

जो तेज को महान् समझ कर इसकी उपासना करता है, वह तेजस्वी बनकर प्रकाशमय लोकों को प्राप्त करता है। जहाँ तक तेज की पहुँच होती है, वहीं तक उसकी भी पहुँच हो जाती है। जो तेज को महान् समझता है।

नारद—भगवन्, तेज से भी बढ़कर कुछ है।

सनत्कुमार—हाँ है?

नारद—भगवन्, मुझे उपदेश दें।

बारहवाँ खण्ड

तेज से बढ़कर आकाश है। आकाश ही में सूर्य, चन्द्र, बिजली और नक्षत्र हैं। आकाश के द्वारा किसी को पुकारा जाता है और आकाश के द्वारा ही सुना जाता है। आकाश में क्रीड़ा करता है

और आकाश में रमता नहीं। आकाश में उत्पन्न होता और आकाश को प्रकट करता। इसलिए आकाश की उपासना करो ?।

जो कोई आकाश को बड़ा समझ कर इसकी उपासना करता है, वह आकाश की भाँति बनकर अन्धकार, पीड़ा रहित, विस्तीर्ण लोगों को प्राप्त करता है। जहाँ तक आकाश की पहुँच होती है। वहाँ तक उसको भी पहुँच हो जाती है। आकाश को 'जो महान् समझता है।

नारद—भगवन्, आकाश से भी कुछ बढ़कर है।

सनत्कुमार—हाँ है।

नारद— मुझे उपदेश दें।

तेरहवाँ खण्ड

आकाश से बढ़कर स्मृति है। क्योंकि यदि स्मृति न रह जाए तो लोग न तो कुछ सुन सकेंगे, न विचार कर सकेंगे, न 'जान सकेंगे। स्मरण होते ही वे जान सकेंगे। स्मृति ही से मनुष्य पुत्रों को जानता है। पशुओं को पहचानता है। इसलिए स्मृति की उपासना करो ?

जो कोई स्मृति की उपासना करता है, तो वह जहाँ तक स्मृति की पहुँच होती है, वहाँ तक अपनी पहुँच कर लेता है। 'जो स्मृति को बड़ी समझ कर उपासना करता है।

नारद—भगवन्, स्मृति से भी बढ़कर कुछ है ?

सनत्कुमार—हाँ है।

नारद—भगवन्, मुझे उपदेश दें।

चौदहवाँ खण्ड

आशा ही स्मृति से बढ़कर है। आशा से उत्साहित मनुष्य स्मरण शील होकर मंत्रों को पढ़ता है। कर्मों को करता है। पुत्रों और पशुओं की इच्छा करता है। इसलोक और परलोक की कामना रखता है। इसलिए आशा को काम में लाओ ?

जो आशा को बड़ी समझ कर इसका उपयोग करता है, उसकी सभी कामनाएँ बढ़ती हैं। उसकी प्रार्थनाएँ पूरी होती हैं और जहाँ तक आशा की पहुँच होती है, वहाँ तक उसकी भी पहुँच हो जाती है।

नारद—भगवन्, आशा से भी बढ़कर कुछ है ?

सनत्कुमार—हाँ है।

नारद—भगवन्, उसका उपदेश मुझे दें।

पन्द्रहवाँ खण्ड

आशा से बढ़कर प्राण है। जैसे पहिये की धुरी में आरे जुड़े हुए रहते हैं। इसी प्रकार प्राण में सब पिरोये रहते हैं। प्राण प्राण से व्यवहार करता है। प्राण प्राणी को जीवन देता है। और प्राण के लिए देता है। प्राण ही पिता है, भ्राता है, माता है, बहिन है, आचार्य है और प्राण ही ब्राह्मण है।

यदि कोई पुरुष पिता, माता, भाई, बहिन, आचार्य या ब्राह्मण को कुछ अनुचित शब्द कहता है, तो 'तुझे धिक्कार है'—ऐसा ही कहते हैं। निश्चय तूने पिता, माता, भाई, बहिन, आचार्य और ब्राह्मण का घातक है।

यदि मरे हुए पिता, माता, भाई, बहिन आदि को शूल से इकट्ठा कर जला दिया जाता है, तो उस जलाने वाले को पिता, माता, बहिन आदि को मारने वाला कोई नहीं कहता।

निश्चित ही पिता, माता, भाई, बहिन आदि प्राण ही होता है। निश्चय ही प्राण की उपासना करने वाला इस प्रकार देखता 'मानता और जानता हुआ अतिवादी' (शीम मस्य इति अतिवादी)--सबसे परे वस्तु को प्रकट करने का जिसका स्वभाव हो—कहा जाता है। उसको यदि कहा जाय कि तू अतिवादी है, तो वह अपने को अतिवादी स्वीकार करे—छिपाए नहीं।

सोलहवाँ खण्ड

जो सत्य को सबसे बढ़कर कहता है—निश्चय ही वह अतिवादी है। इसलिए हे भगवन्, मैं अतिवादी बनूँ।

सनत्कुमार—तब तो सत्य को ही जानने की इच्छा रखनी चाहिए।

नारद—हे भगवन्, मैं सत्व की ही जिज्ञासा रखता हूँ।

सत्रहवाँ खण्ड

जब कोई बात भली-भाँति जानी जाती है, तब सत्य ही बोलता है। न जानता हुआ सत्य नहीं बोलता। जानता हुआ ही सत्य बोलता है।

सनत्कुमार—विज्ञान की ही जिज्ञासा रखनी चाहिए।

नारद—भगवन्, मैं विज्ञान नहीं की जिज्ञासा रखता हूँ।

अठारहवाँ खण्ड

जब मनुष्य मनन करता है, तभी जानता है। जो मनन नहीं करता है, वह नहीं जानता है मनन करने पर ही जानता है।

सनत्कुमार—इसलिए मनन करना ही जिज्ञासा है।

नारद—भगवन्, मैं मनन की ही जिज्ञासा रखता हूँ।

उन्नीसवाँ खण्ड

जब श्रद्धा की जाती है, तभी मनन होता है। श्रद्धा न रहने पर मनन नहीं हो सकता। इसलिए श्रद्धा ही जिज्ञासा करने योग्य है।

नारद—भगवन्, मैं श्रद्धा की जिज्ञासा करता हूँ।

बीसवाँ खण्ड

जब कोई निष्ठा रखता है, तभी वह श्रद्धा करता है। निष्ठा न रखने पर श्रद्धा नहीं हो सकती। निष्ठा करने पर ही श्रद्धा हो सकती है।

सनत्कुमार—इसलिए निष्ठा ही जिज्ञासा के योग्य है।

नारद—हे भगवन्, मैं निष्ठा की जिज्ञासा करता हूँ।

इक्कीसवाँ खण्ड

जब मनुष्य कुछ करता है, तभी निष्ठा करता है, कुछ न करने पर निष्ठा भी नहीं करता। करने पर ही निष्ठा करता है।

सनत्कुमार—इसलिए कृति की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

नारद—भगवन्, मैं कृति की ही जिज्ञासा करता हूँ।

बाईसवाँ खण्ड

निश्चय ही, जब मनुष्य सुख पाता है, तब कर्म करता है। बिना सुख प्राप्त किए कार्य नहीं करता सुख प्राप्त करने पर ही कार्य करता है।

सनत्कुमार—सुख की ही तुम्हें जिज्ञासा करनी चाहिए।

नारद—भगवन्, मैं सुख की जिज्ञासा करता हूँ।

तेईसवाँ खण्ड

वस्तुतः जो भूमा है, वही सुख है। क्षुद्र वस्तु में सुख नहीं है। भूमा ही सुख है। इसलिए भूमा की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

नारद—भगवन्, मैं भूमा की ही जिज्ञासा करता हूँ।

चौबीसवाँ खण्ड

जब मनुष्य न कुछ और देखता है, न कुछ और सुनता है, न कुछ और जानता है वह भूमा है। और जब कुछ और देखता है, कुछ और सुनता है; कुछ और जानता है, वह अल्प है। जो भूमा है, वह अमृत है। जो अल्प है वह मरने योग्य है।

नारद—भगवन्, वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है।

सनत्कुमार—न तो वह अपनी महिमा में और न किसी की महिमा में प्रतिष्ठित है।

इस संसार में गाय, घोड़े, हाथी, सोना, दास, भार्या, क्षेत्र और घर को महिमा कहते हैं। लेकिन मैं इसे महिमा नहीं कहता। क्योंकि इसमें अन्य अन्य में प्रतिष्ठित है।

पचीसवाँ खण्ड

वही 'भूमा नीचे है, वही ऊपर है, वही पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में है। वही यह सब है। वही उस भूमा का अहंकार आदेश है। मैं नीचे, ऊपर, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ।

अब यहां उस भूमा का आत्मा आदेश बताया जाता है— आत्मा ही, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सब कुछ है। जो बुद्धिमान इसे इस प्रकार देखकर, सुनकर, जानकर, मनन कर आत्मा में लीन होता है वह आत्मा की अधिपति होता है। उसकी सब लोकों में गति होती है। और जो इस शिक्षा के विरुद्ध जानते हैं, वे नाशवान् लोक को प्राप्त होते हैं। वे सभी लोकों में स्वेच्छा-गमन करते हैं।

छब्बीसवाँ खण्ड

निश्चय है, जो इस प्रकार देखता है, सुनता है, जानता है और .मनन करता है उसे आत्मा ही से सब कुछ प्राप्त होता है। आत्मा से प्राण, आशय आविर्भाव, तिरोभाव, अन्न, बल, विज्ञान, ध्यान चित्त, संकल्प मन, वाणी नाम मंत्र, कर्म—ये सब प्राप्त होते हैं।

निम्नांकित यह श्लोक' इस विषय में प्रमाण है—साक्षी मृत्यु को नहीं देखता है और न रोग और दुःखों को देखता है। प्रसिद्ध है, कि वह ब्रह्म का साक्षी सब को देखता है। वह सब प्रकार से सब को प्राप्त कर लेता है।

वह प्रारम्भ में एक ही था फिर तीन, पाँच, सात और नव प्रकार का होता है। फिर वह ग्यारह प्रकार का होता है, फिर एक

सौ दस प्रकार का फिर एक हजार प्रकार का और फिर बीस हजार प्रकार का हो जाता है।

आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण के शुद्ध होने पर भूमा की दृढ़ स्मृति होती है। और स्मृति में दृढ़ता होने पर हृदय की गाँठें खुल जाती हैं। भगवन् सनत्कुमार ने नारद को दिखा दिया कि उनके राग-द्वेष रूप दोष धुल गए, अन्धकार का आखिरी किनारा दिखा दिया। उस सनत्कुमार को लोग स्कन्द कहते हैं। स्कन्द कहते हैं।

आठवाँ प्रपाठक

पहला खण्ड

इस ब्रह्मपुर (शरीर) में जो सूक्ष्म कमल गृह है तथा इसमें जो सूक्ष्म अन्तर आकाश है—उसमें जो खोजने योग्य है, वही जिज्ञासा करने योग्य भी है।

यदि कोई आचार्य से पूछे कि इस शरीर में जो कमल गृह है उसके मध्यवर्ती जो सूक्ष्म आकाश है, उसमें खोजने योग्य क्या है ? तो आचार्य का उत्तर देना चाहिए कि—जितना यह बाहर दिखायी पड़ने वाला आकाश है, उतना ही यह हृदय के अन्दर का आकाश है। बाहरी आकाश के द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों अग्नि और वायु। सूर्य और चन्द्रमा विद्युत और नक्षत्र एवं इस आत्मा का इस लोक में जो कुछ है और जो कुछ नहीं है वह सब हृदय के इस आकाश में विद्यमान है।

यदि कोई आचार्य से फिर प्रश्न करे कि इस शरीर में यदि सब कुछ समाया हुआ है, समस्त प्राणी और समस्त कामनाएँ भी हैं तो फिर जब इस शरीर की वृद्धावस्था होती है तो शरीर अवश्य नष्ट हो जाता है तब फिर शेष क्या रह जाता है ?

इस पर उस आचार्य को यह उत्तर देना चाहिए—कि इस शरीर के वृद्ध हो जाने पर आत्मा नहीं वृद्ध होता है। इस शरीर के वध से आत्मा नहीं मरता। यह ब्रह्मपुर (शरीर) अविनाशी है—सत्य है। इसमें सभी कामनाएँ समायी हुई हैं। यह आत्मा पापरहित, बुढ़ापे से पृथक्, सत्य से अलग, शोक से खाली, खाने-पीने की इच्छा से शून्य, सत्यकाम और सत्य संकल्पमय है। जैसे प्रजाएँ राजा के अनुकूल चलती हैं, जिस प्रदेश, जिस जनपद (राज्य) जिस राज्य के भाग्य की कामना करने वाली होती हैं, उसी का वे उपभोग करती हैं।

जैसे यहाँ कर्म से प्राप्त लोक क्षीण हो जाते हैं वैसे परलोक में पुण्य कर्मों से उपार्जित भोग क्षीण हो जाते हैं। जो लोग आत्मा की खोज किए बिना और इन सत्य कामनाओं को जाने बिना चले जाते हैं, उनका सब लोकों में स्वेच्छा गमन नहीं होता और जो यहाँ से आत्मा तथा इन सत्य कामनाओं की खोज करके जाते हैं, उनका सभी लोकों में स्वच्छन्द गमन होता है।

दूसरा खण्ड

यदि वह पितृलोक की कामना रखता है, तो उसके संकल्प ही से उसके पिता उसके समीप उपस्थित होते हैं। उस पितृलोक से वह महत्त्व प्राप्त करता है। यदि वह मातृ लोक का इच्छुक होता है, तो उसके संकल्प ही से माताएँ उसके सामने उपस्थित हो जाती हैं। उन माताओं से वह महत्त्व को प्राप्त करता है। तथा यदि वह भ्रातृलोक की इच्छा रखता है, तो उसके संकल्प मात्र से भ्राता गण उपस्थित हो जाते हैं, उन भाइयों से सम्पन्न होकर वह महत्त्व को प्राप्त करता है।

यदि स्वसा लोक की इच्छा रखता है, तो उसके संकल्प मात्र से बहिनें उपस्थित होती हैं, और वह उनसे सम्पन्न होकर महत्त्व को प्राप्त करता है। यदि वह सखा लोक की इच्छा रखता है, तो उसके संकल्प मात्र से सखागण उपस्थित होते हैं। और वह उनसे सम्पन्न होकर महत्व को प्राप्त करता है।

यदि वह गन्धमाल्य लोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प मात्र से ही गन्ध और माल्य उपस्थित होती हैं। उनसे सम्पन्न होकर वह अपनी महिमा का अनुभव करता है। यदि वह अन्न पान लोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प मात्र से अन्न पान उपस्थित हो जाते हैं। उनसे सम्पन्न होकर वह महत्व को प्राप्त करता है।

यदि वह गीत-वादित्र लोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प मात्र से ही गाने और बाजे उपस्थित हो जाते हैं। उनसे सम्पन्न होकर वह महत्व को प्राप्त करता है। यदि वह स्त्री लोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प मात्र से स्त्रियाँ उपस्थित हो जाती हैं। उनसे वह महत्व को प्राप्त करता है। वह जिस जिस प्रदेश की कामना करता है। वे उसके संकल्प मात्र से ही पूरे हो जाते हैं। उनसे सम्पन्न होकर वह महिमा का अनुभव करता है।

तीसरा खण्ड

वे ये कामनाएँ सत्य होने पर भी झूठ से ढकी हुई हैं। हृदय में वर्तमान सत्य कामनाओं का झूठ ढकना है। इससे संबंधित जो मर कर यहाँ से चला जाता है उसको यहाँ देखने के लिए नहीं पाता।

परोक्ष में स्थित जीवित या मरे हुए सम्बन्धियों को मनुष्य बाह्य जगत्में स्वेच्छानुसार अपनी आँखों से नहीं देख सकता।

परन्तु हृदय में स्थित ब्रह्म की निकटता प्राप्त कर लेने पर उसकी अव्यक्त शक्तियाँ व्यक्त हो जाती हैं। शक्तियों के व्यक्त होने पर अनृत (असत्य) का परदा हट जाता है। यद्यपि ये सब कामनाएँ सत्य हैं लेकिन फिर भी अनृत से ढकी हुई हैं। जैसे खेत के अन्दर की हालत न समझने वाला किसान ऊपर ही ऊपर हलचलाता हुआ जमीन के नीचे गड़े हुए सोने के खजाने को नहीं जान पाता, वैसे ही ये सब प्रजाएँ दिन प्रति दिन ब्रह्म के उद्देश्य से जाती हुई भी ब्रह्म लोक को नहीं पाती हैं। क्योंकि अनृत से ढकी हुई हैं।

निश्चय यह आत्मा हृदय में है। उस हृदय शब्द का 'हृदि-अयम्' यही निरुक्त--निर्मचन है। हृदय में परमात्मा है इसलिए यह हृदय कहलाता है—ऐसा जानने वाला विद्वान् निश्चय स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

गुरू ने शिष्य को बताया कि यह जो निर्मल आत्मा शरीर को छोड़कर परम ज्योति को प्राप्त कर अपने असली रूप परमात्मा को चारों ओर से प्राप्त करता है—यही जिसको आत्मा ने प्राप्त किया है परमात्मा है। यही अमृत है, यही अभय है, यह ब्रह्म है, उस इस ब्रह्म का नाम सत्य है।

निश्चय वे ये तीन अक्षर हैं ? स, ति, यम् इन तीन अक्षरों से सत्य बनता है। यह जो सकार है वह अमृत है, और जो 'ति' है वह 'मर्त्य है तथा' जो 'यम्' अक्षर है वह स और ति दोनों का नियम करता है। इसलिए यम् कहलाता है। ऐसा जानने वाला निश्चय प्रतिदिन स्वर्ग को प्राप्त होता है।

चौथा खण्ड

आत्मा और परमात्मा दोनों समस्त लोकों की रक्षा के लिए पुल रूप होकर उन्हें धारण करते हैं। उस ईश्वर रूप सेतु को दिन

रात, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक तथा अच्छे बुरे कर्म नहीं लांघ सकते हैं। इस ब्रह्म प्राप्त जीव से समस्त पाप निवृत्त हो जाते हैं। क्योंकि ब्रह्मलोक पापरहित है। इसीलिए इस सेतु को पारकर अन्धा देखने वाला हो जाता है, घायल घाव रहित हो जाता है। रोगी नीरोग बन जाता है। इसीलिए इस सेतु को पारकर रात भी दिन ही हो जाता है—क्योंकि यह ब्रह्मलोक सदैव प्रकाशमय है।

इसलिए जो इस ब्रह्मलोक को ब्रह्मचर्य से प्राप्त करते हैं, उन्हीं का यह ब्रह्मलोक है। वे समस्त लोकों में स्वेच्छा गमन करते हैं।

पांचवाँ खण्ड

जो यज्ञ कहा जाता है, वही ब्रह्मचर्य है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से ब्रह्मज्ञ ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। जिसे 'इष्ट' कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से इष्ट परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। सत्त्रायण नाम का यज्ञ भी ब्रह्मचर्य है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से सर्वदा विद्यमान अविनाशी जीवात्मा की रक्षा पाता है। जिसे मौन कहा जाता है—वह भी ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से परमात्मा को जानकर मनन करता है।

जो अनाशकायन यज्ञ है—वह ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्म-प्राप्ति के लिए 'अर' और 'ण्य' दो समुद्र हैं। यहाँ से तीसरे द्यौलोक में 'एरंमदीय' सरोवर है। वहाँ अमृत टपकता हुआ एक पीपल का वृक्ष है। वहाँ एक अजेय ब्रह्म की पुरी है और प्रभु निर्मित एक हिरण्यमय है।

जो लोग ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए 'अर' और 'ण्य' नाम के इन दोनों समुद्रों को ब्रह्मचर्य से पार करते हैं—वही ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। और समस्त लोकों में उनकी स्वच्छन्दगति होती है।

छटाँ खण्ड

हृदय की नाड़ियां भूरे रंग वाले सूक्ष्म रज से पूर्ण हैं। सफेद, ले, पीले और लाल रंग वाले सूक्ष्म रस से पूर्ण हैं। निश्चय यह र्य भूरे, सफेद, नीले, पीले और लाल रंग का है।

जैसे समानान्तर में स्थित दो गांवों को स्पर्श करता हुआ उनके ाच से एक लम्बी चौड़ी सड़क जाती है, उसी प्रकार सूर्य की करणें शरीर सूर्य मंडल दोनों लोकों को जाती हैं। वे किरणें उस र्य से निकलती हैं और इन नाड़ियों में प्रविष्ट होती हैं। वे करणें इन नाड़ियों से निकलती हैं और सूर्य में प्रविष्ट होती हैं।

जब सोता हुआ आदमी अपने आप में लीन होकर सुषुप्ति गवस्था को प्राप्त होता है, कुछ स्वप्न भी नहीं देखता है—आनन्द ा अनुभव करता है। तब उसका जीवात्मा हृदय की इन्हीं ाड़ियों में प्रविष्ट रहता है। उसे कोई पाप स्पर्श नहीं करता य्योंकि वह तेज से युक्त होता है।

और जब वह व्यक्ति मृत्यु निकट आ जाने से दुर्बलता को प्राप्त ोता है, तब उसके चारों ओर बैठकर उसके परिवार वाले रहते हैं— ुझ को पहचानते हो? जब तक जीव शरीर से बाहर नहीं होता ाब तक वह जानता रहता है। जब वह शरीर से बाहर निकल ाता है। तब इन्हीं रश्मियों के द्वारा जो सूर्य से लेकर शरीर तक ैली रहती हैं, ऊपर चढ़ता है। वह ॐ का उच्चारण करता हुआ ऊपर ही को चढ़ता है। जितने समय तक मन क्षीण होता है, उतने समय तक में वह आदित्य में पहुँच कर सौरी दशा को प्राप्त होता है। निश्चय वह सौरी दशा ही ब्रह्म लोक का मुख्य द्वार है। वह द्वार ज्ञानियों के लिए खुला रहता है और अज्ञानियों के लिए बन्द रहता है।

इस सम्बन्ध में यह श्लोक प्रमाण है—

हृदय में १०१ नाड़ियाँ हैं, उनमें से एक मूर्धा की ओर निकली हुई है। उसी नाड़ी से जीव ऊपर की ओर जाकर अमृत तत्व को प्राप्त करता है। अन्य नाड़ियों के द्वारा यदि निकलता है, तो भिन्न गति को प्राप्त होता है।

सातवाँ खण्ड

कहा जाता है, कि प्रजापति ने एक बार कहा—कि जो परमात्मा पाप, जरा, मृत्यु, शोक, भूख, प्यास से रहित और सत्य संकल्पमय है, वह खोजने योग्य और जानने योग्य है। जो उसे खोजकर जान लेता है, वह सम्पूर्ण लोकों और समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है। प्रजापति के इन वचनों को सुनकर देवों और असुरों ने कहा—कि अच्छा है आत्मा की खोज करें। जिस आत्मा को खोजकर मनुष्य सब लोकों और सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। यह निश्चय कर देवों में इन्द्र और असुरों में से विरोचन प्रजापति के पास गए। वे दोनों आपस में कुछ भी न बोलते हुए हाथ में समिधा लिए हुए प्रजापति के समीप बैठ गए।

वे दोनों बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापति के पास रहे। प्रजापति ने उन दोनों से कहा—कि यहाँ रहते हुए तुम क्या चाहते हो? वे दोनों बोले—जो आत्मा पाप, जरा, मृत्यु, शोक, भूख, प्यास से रहित हैं और सत्य काम, सत्य संकल्पमय है, वह खोजने योग्य और जानने योग्य है जो उसे खोजकर जान लेता है वह समस्त लोकों और कामनाओं को पा लेता है। ऐसा आपका कहना है—जिसे विद्वान् लोग दुहराया करते हैं। उसको समझने, जानने के लिए हम यहाँ उपस्थित हुए हैं।

उन दोनों से प्रजापति ने कहा—जो यह पुरुष आँख में दिखायी देता है, वही आत्मा है। यह अमृत है, अभय है, इन्द्र और विरोचन बोले—भगवन् जो जल में दिखायी पड़ता है और जो दर्पण में दिखायी पड़ता है उनमें कौन आत्मा है। प्रजापति ने कहा—जो इन सब में दिखायी पड़ता है वही आत्मा है।

आठवाँ खण्ड

जल भरे हुए मिट्टी के पात्र में देखो यदि देखने के बाद अपने को न समझ सको तब मुझसे कहो। प्रजापति की बात मान कर इन्द्र और विरोचन मिट्टी के पात्र में जल भर कर उसमें देखने लगे तो प्रजापति ने कहा—क्या देखते हो? दोनों बोले—भगवन्, हम दोनों शिर से लेकर पैर तक अपने शरीर को देख रहे हैं।

प्रजापति ने कहा—तुम दोनों वस्त्रालंकार से सुसज्जित होकर जल भरे हुए शकोरे में अपने को देखो? ऐसा सुनकर उन दोनों ने वस्त्रालंकार से सुसज्जित होकर जल भरे शकोरे में अपने को देखा तब प्रजापति बोले—क्या देंख रहे हो?

उन दोनों ने कहा—भगवन्, हम दोनों ने यही देखा कि हम दोनों सुन्दर, स्वच्छ हैं। प्रजापति ने कहा—यही आत्मा है। यह अमृत, अभय और महान है। दोनों शान्त हृदय होकर चले गए।

उन दोनों को जाते हुए देखकर प्रजापति बोले—ये दोनों आत्मा को न पाकर, न जानकर जा रहे हैं। इनमें से जो देव या असुर इस उपनिषद् (देह ही आत्मा है) के मानने वाले होंगे वे पराजित होंगे। वह विरोचन शान्त हृदय होकर असुरों के पास पहुँचा और उन से बोला कि इसलोक में शरीर ही आत्मा है. शरीर

ही पूजा और सेवा के योग्य है। जो इस शरीर की पूजा सेवा करता है, वह इसलोक और परलोक को प्राप्त करता है।

इसलिए आज भी दान न देने वाले, श्रद्धा न रखने वाले और यज्ञन करने वालों को खेद के साथ असुर जाति का कहा जाता है। क्योंकि यह उपनिषद् असुरों की है। मरे हुए शरीर के शव को गन्ध-माल्य से तथा वस्त्रालंकार से सुसज्जित करते हैं। उनकी यह धारणा है, कि वे परलोक को जीत लेंगे।

नवाँ खण्ड

इसके विपरीत इन्द्र देवों के पास न जाकर आशंकित मन से सोचने लगा कि जिस प्रकार शरीर की सजावट से छाया पुरुष सुन्दर लगता है। इसी प्रकार इस शरीर के अन्धे, काने, कुबड़े, लूले, लंगड़े तथा छिन्न भिन्न होने से छाया पुरुष भद्दा, कुरुप और विकलांग होगा। इस शरीर के नष्ट हो जाने पर यह छाया पुरुष भी नष्ट हो जाता है। अतएव मैं इस उपनिषद् को कल्याण कारी नहीं समझता।

यह निश्चय कर इन्द्र हाथ में समिधा लेकर पुनः प्रजापति के पास गया प्रजापति ने कहा, प्रिय तुम तो विरोचन के साथ शान्त हृदय होकर चले गए थे, फिर क्यों वापस आ गए। इन्द्र बोला—भगवन्, मैंने सोचा है, कि जिस प्रकार इस शरीर के वस्त्रालंकार से सजे होने पर छाया पुरुष भी सुन्दर और स्वच्छ जान पड़ता है, उसी प्रकार इसके अन्धे, काने, कुबड़े, लूले, लंगड़े और विकलांग होने पर यह छाया पुरुष भी विकलांग हो सकता है। इसके नष्ट होने पर छाया पुरुष भी नष्ट हो सकता है। इसलिए मैं इस उपनिषद् को आसुरभावों वाला समझकर इसे कल्याणप्रद नहीं समझ रहा हूँ।

प्रजापति बोले—इन्द्र, जो तुम सोच रहे हो यही ठीक है। अतएव इसी आत्मा की व्याख्या तुम्हारे लिए फिर करूँगा। तुम ३२ वर्ष तक फिर यहाँ निवास करो। इन्द्र ३२ वर्ष तक प्रजापति के यहाँ रहा।

दसवाँ खण्ड

प्रजापति ने कहा—जो यह स्वप्नावस्था में अपनी अपनी महिमा का अनुभव करता है—यही आत्मा है। यह अमृत है, यह अभय है और महान् है। यह सुनकर इन्द्र शान्त हृदय होकर चला गया। लेकिन वह देवताओं के पास न जाकर पुनः सोचने लगा कि यद्यपि स्वप्नावस्था में शरीर अन्धा होता है तो भी वह स्वप्नात्मा अन्धा नहीं होता। यदि शरीर स्वप्न में काना होता है तो आत्मा काना नहीं होता। शरीर के दोष से निश्चय वह स्वप्नात्मा दूषित नहीं होता।

इस शरीर के वध से उसका वध नहीं होता, उसके काने होने पर वह काना नहीं होता। परन्तु इस स्वप्नावस्था का मानो कोई मार रहा है, कोई भगा रहा है मानो यह अप्रिय वेत्ता हो रहा है और मानो रो रहा है। मैं इसमें कल्याण नहीं देखता हूँ।

वह हाथ में समिधा लेकर फिर प्रजापति के पास आया। प्रजापति ने कहा प्रिय, तुम तो शान्त हृदय होकर चले गए थे अब किसलिए वापस आए हो। इन्द्र बोला—भगवन्, यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है, परन्तु वह स्वप्नात्मा अन्धा नहीं होता। यदि शरीर काना होता है तो वह आत्मा काना नहीं होता। यह आत्मा इस शरीर के दोष से कदापि दूषित नहीं होता।

इस शरीर के वध से वध नहीं होता। इसके काना होने से काना नहीं होता, परन्तु इस स्वप्नात्मा को मानो कोई मार रहा

है, भगा रहा है मानो यह अप्रियवेत्ता हो रहा है। और रो रहा है। मैं इसे कल्याणप्रद नहीं समझता। प्रजापति बोले-इन्द्र, तुम ठीक कह रहे हो, इसी आत्मा का व्याख्यान मैं फिर करूँगा। ३२ वर्ष तक तुम हो, यहाँ निवास करो ? इन्द्र ने प्रजापति के यहाँ ३२ वर्ष तक निवास किया।

ग्यारहवाँ खण्ड

तब प्रजापति बोले—जब यह सोचा हुआ प्रसन्न चित्र होकर आराम करता हुआ स्वप्न नहीं देखता है—यही आत्मा है। यह अमृत है, अभय है और महान् है। यह सुनकर इन्द्र शान्त हृदय से चला गया। लेकिन देवों के पास पहुँचने से पहले उसे यह शंका हुई कि यह सोचा हुआ आत्मा निश्चय रूप से अपने को यह नहीं जानता कि मैं कौन हूँ, और न इन भूतों को ही जानता है। मानो विनाश को प्राप्त हो जाता है। मैं इस शिक्षा को कल्याण प्रद नहीं समझता।

यह सोचकर वह हाथ में समिधा लिए हुए प्रजापति के पास पहुँचा। प्रजापति ने कहा—इन्द्र, तुम तो शान्त हृदय से गए थे। फिर क्यों लौट आए ? इन्द्र ने कहा—भगवन्, यह सोचा हुआ आत्मा ठीक ढग से अपने को नहीं जानता कि मैं कौन हूँ। और न उन भूतों को ही जानता है। मानो विनाश को प्राप्त हो गया है। मैं इसे कल्याण प्रद नहीं समझता।

प्रजापति ने कहा—इन्द्र, तुम ठीक कहते हो। सुषुप्तात्मा ऐसा ही है। मैं तुम्हें पुनः आत्मा का व्याख्यान बताऊँगा। इस आत्मा से भिन्न का व्याख्यान नहीं करूँगा। बस सिर्फ पाँच वर्ष तक तुम और यहाँ रहो ? वह इन्द्र पाँच वर्ष तक और वहाँ रहा। इस

प्रकार कुल मिलाकर १०१ वर्ष हो गए। इसीलिए यह कहा जाता है कि इन्द्र निश्चित रूप से १०१ वर्ष तक प्रजापति के पास रहे।

बारहवाँ खण्ड

प्रजापति ने इन्द्र से कहा—इन्द्र, यह शरीर निःसन्देह नश्वर है। मृत्यु से ग्रसा हुआ है। यह शरीर-अमर, शरीर-रहित जीवात्मा वास स्थान है। निश्चय शरीर के साथ जीवात्मा सुख और दुख से गृहीत है। शरीर में लिप्त हुए सुख और दुःख कभी नष्ट नहीं होते। शरीर से रहित होने पर सुख दुःख कभी स्पर्श नहीं होते।

वायु शरीर रहित है। बादल, बिजली और गर्जन ये शरीर रहित हैं। जैसे ये बादल आकाश से उठकर पर ज्योति (अपनी सत्ता) को प्राप्त कर अपने रूप से प्रकट होते हैं, उसी प्रकार यह जीवात्मा निर्मल होकर इस शरीर से छूट कर पर ज्योति को प्राप्त कर अपने रूप से प्रकट होता है। वह उत्तम पुरुष है। वहाँ वह जीव हँसता हुआ, प्रसन्न होता हुआ स्त्रियों, परिचितों, बन्धु-बान्धवों के साथ यानों में विहार करता है। वहाँ वह अपने पूर्व शरीर का स्मरण नहीं करता। हे इन्द्र. जैसे रथ में घोड़ा जुता रहता है उसी प्रकार यह जीव प्राण के साथ शरीर में जुटा रहता है।

जहाँ यह नेत्र आकाश (आँख का छिद्र) में जुड़ा रहता है। वहाँ आँख में रहने वाला पुरुष जीवात्मा यही है। उसके देखने के लिए नेत्र हैं। और जो 'इसे सूंघूँ, ऐसे जानता है, वहआत्मा है। गन्ध ग्रहण करने के लिए घ्राणेन्द्रिय है। और जो ऐसा जानता है, कि 'यह बोलूँ' वह आत्मा है। बोलने के लिए वाकइन्द्रिय है। और जो ऐसा जानता है। कि "मैं इसे सुनूँ" वह आत्मा है।

सुनने के लिए कान हैं। तथा जो ऐसा जानता है कि "मैं इसे मनन करूँ" वह आत्मा है। इस जीवात्मा का दिव्यनेत्र मन है। इसीसे यह कामनाओं को देखता हुआ आनन्द भोग करता है।

ब्रह्मलोक में जो मुक्त जीव हैं, वे इस परमात्मा की उपासना करते हैं। इसलिए उन्हें सब लोक और सब कामनाएँ प्राप्त होती हैं। वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त करता है। जो इस परमात्मा को खोज करके जान लेता है—ऐसा प्रजापति ने कहा।

तेरहवाँ खण्ड

श्याम (काला) से शबल (चितकबरा) को प्राप्त करता हूँ। शबल से श्याम को प्राप्त होता हूँ। घोड़ों की तरह बालों को झाड़-कर अथवा चन्द्रमा की तरह राहु के मुख से, पाप से छूटकर और शरीर को छोड़कर—कृतकृत्य होकर नित्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ। नित्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ।

चौदहवाँ खण्ड

निश्चय ही आकाश नामक ब्रह्म ही जगत् के वाह्य दृश्यों का प्रकाशक है। वे नाम और रूप जिसके अन्तर हैं—वह ब्रह्म है। वह अमृत है, वही परमात्मा है। मैं प्रजापति के आकाशमय गृह—ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ। मैं यशस्वी होऊँ। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के यश को प्राप्त होऊँ। श्वेतरक्तमय, दाँत रहित जननेन्द्रिय के श्वेत विन्दु (पिच्छल कोष) को प्राप्त करूँ। अर्थात मैं ऐसी योनि को प्राप्त करूँ जिससे आवागमन से छुटकारा मिल जाए।

पन्द्रहवाँ खण्ड

इस उपनिषद् को ब्रह्मा ने प्रजापतियों से कहा, प्रजापति ने

मनु से कहा और मनु ने समस्त प्रजाओं में कहा। जो आचार्य कुल में ब्रह्मचर्य पूर्वक पढ़कर उनकी शुश्रूषा करता हुआ संकीर्तन संस्कार करके कुटुम्ब के पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ, धार्मिक बनता हुआ, आत्मा में समस्त इन्द्रियों को स्थापित कर तीर्थों से अतिरिक्त भी प्राणियों में अहिंसा का भाव रखता हुआ। आयुपर्यंत ऐसा व्यवहार करता हुआ वह ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है। वह फिर वापस नहीं आता। फिर वापस नहीं आता।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(तीनों प्रकार के ताप शान्त हों)

११

बृहदारण्यक उपनिषद्

यह उपनिषद् शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग है। सभी उपनिषदों से यह उपनिषद् बड़ी है। आरण्य (जंगल) में लिखे जाने के कारण इसका नाम 'आरण्यक' पड़ा। पूरी उपनिषद् ों छह अध्याय हैं। अन्त के दो अध्याय 'खिल' (परिशिष्ट) ाने जाते हैं। चार अध्याय तक ही मूल उपनिषद् मानी जाती ै। इनमें ब्रह्म विद्या के गूढ़ तत्वों का समावेश है। ब्रह्म विद्या े अतिरिक्त कुछ भिन्न विषयों का भी वर्णन है।

शतपथ ब्राह्मण की माध्यन्दिन और काण्व दो शाखाएँ ्रचलित हैं। दोनों शाखाओं की उपनिषदें भी हैं, जिनमें कहीं ्हीं कुछ भेद है। माध्यन्दिनी शाखा का शतपथ और उसी ाखा की उपनिषद् का ही पहले अधिक प्रचार था। जगद्- ्गुरुशंकराचार्य ने पहले माध्यन्दिनी शाखा की उपनिषद् का ाष्य किया था, बाद में उन्होंने काण्व शाखा की उपनिषद् ा जब भाष्य किया तबसे उनके उपनिषद्-भाष्यों में काण्व- ाखा उपनिषद् ही सम्मिलित कर ली गयी। माध्यन्दिनी

शाखा मूल यजुर्वेद से पूर्ण संगति रखती है, उसमें कोई मिला-
वट या प्रक्षेप नहीं है। इसीलिए हमने माध्यन्दिनी शाखा
का इस उपनिषद् को ही स्वीकार किया है।

पहला अध्याय

शान्ति पाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

पहला ब्राह्मण

पहली कंडिका

यज्ञ सम्बन्धी अश्व (विराट् जगत्) का शिर उषा है, आँख सूर्य है। प्राण वायु है। खुला हुआ मुँह वैश्वानर अग्नि है। और उसी जानने योग्य ब्रह्माण्ड का आत्मा (धड़) संवत्सर है। द्युलोक पीठ है, अन्तरिक्ष पेट है। पृथिवी चरण तल है, दिशाएँ छाती और कन्धे हैं। अवान्तर दिशाएँ (ईशान आदि) दोनों ओर की पसलियाँ हैं। ऋतुएँ अंग हैं। मास और पक्ष अंगों के बीच के जोड़ हैं। दिन और रात दोनों पैर हैं। नक्षत्र हड्डियाँ हैं और बादल मांस हैं।

अधपचा भोजन बालू, नदियाँ गुदा—नाड़ियाँ हैं, पहाड़ कलेजा और फेफड़े हैं। औषधियाँ रोम हैं। नाभि से ऊपर का शरीर उदय होता हुआ सूर्य है। नाभि से नीचे का शरीर उतरता हुआ सूर्य है। बिजली का चमकना उसकी जमुहाई है। बादल का गरजना उसकी अँगड़ाई है। मेह का बरसना उसका मूतना है और उसकी वाणी ही जगत् का घोष है।

दूसरी कण्डिका

निश्चय पहले अश्व (विराट् रूप जगत्) की महिमा के रूप में दिन प्रकट हुआ उसका कारण पूर्व समुद्र (दिशा) में उदय होने वाला सूर्य है। इसके बाद रात प्रकट हुई। उसका कारण पश्चिम समुद्र (दिशा) में अस्त होने वाला सूर्य है। ये दोनों महिमाएँ अश्व (विराट् रूप जगत्) के दोनों ओर हुईं। यह जगत् हय (त्याग) होकर देवों को बाजी (भोग की शक्ति) होकर गन्धर्वों को अर्वा (हिंसा) होकर असुरों को और अश्व (भोजन) होकर मनुष्यों को लिए जारहा है। इस जगत् का बन्धु (रक्षक) समुद्र (ईश्वर) ही है और वही कारण भी है।

दूसरा ब्राह्मण

पहली कंडिका

सृष्टि से उत्पन्न होने से पहले यहाँ कुछ भी नहीं था। भूख रूप मृत्यु (ईश्वर) से ब्रह्माण्ड का पूर्व ढका हुआ था। क्योंकि भूख मृत्यु रूप परमात्मा ने अपने मन में यह संकल्प किया कि मैं प्रयत्नवाद् हो जाऊँ। ऐसा संकल्प कर उसने गति शून्य प्रकृति में गति का संचार किया। उस गति-संचार से जल पैदा हुआ। तो उसने यह समझ लिया कि निश्चय मेरे द्वारा किए गए गति-संचार से ही यह जल प्रकट हुआ है। यही ईश्वर का ईश्वरत्व है। जो इस प्रकार ईश्वर के ईश्वरत्व को जानता है, उसके लिए सुख होता है।

दूसरी कंडिका

निश्चय जल ईश्वर का विराट् रूप ही है। उसके झाग से पृथ्वी पैदा हुई। उसपर ईश्वर ने श्रम किया। उसके श्रम और तप से अग्नि रूप तेज उत्पन्न हुआ।

तीसरी कण्डिका

उस ईश्वर ने अपने विराट् रूप को तीन आदित्य, वायु और अग्नि इन भागों में विभक्त किया। उसका शिर पूर्व दिशा है। ईशान और आग्नेय कोण उसके दो हाथ हैं। पश्चिम दिशा उसकी पूछ है। वायव्य और नैऋत्यकोण उसकी दोनों जंघाएँ हैं। उत्तर और दक्षिण दिशाएँ उसके दोनों पार्श्व हैं। द्युलोक उसकी पीठ है। अन्तरिक्षलोक पेट है और पृथिवी छाती है। यह विराट् ब्रह्माण्ड में प्रतिष्ठित है। इसे जानने वाला जहाँ कहीं जाता है, वहीं प्रतिष्ठित होता है।

चौथी कण्डिका

ईश्वर ने अपनी दूसरी आत्मा प्रकट करने की इच्छा की तो उस परमात्मा ने मन के साथ वाणी को जोड़ दिया। उस मिथुनभाव से जो वीर्य निकला वह संवत्सर हुआ। इससे पहले संवत्सर नहीं था। इतने समय तक उसे परमात्मा ने अपने ही अन्दर धारण कर रखा था। जितना संवत्सर (सन्धिकाल) होता है, उतने समय के पीछे उस समय को उत्पन्न किया, फिर उसे विस्तीर्ण किया। इसके बाद संसार को प्रकाशित किया। वही वाणी हुई।

पाँचवीं कण्डिका

उस ईश्वर ने देखा कि यदि इस वाणी को मार डालूँगा तो निश्चय ही कुछ थोड़ा-सा अन्न पैदा कर सकूँगा। इसलिए उसने उस वाणी के द्वारा अपने गति रूप पुरुषार्थ से सब को उत्पन्न किया। जो कुछ ये ऋचाएं, यजु, साम छन्द, यज्ञ, प्रजा और पशु

हैं, इन सब में जिस जिसको उसने उत्पन्न किया, उन सब को खाने के लिए अपने अन्दर धारण किया। निश्चय वह सर्वभक्षक है। इसी से उसका नाम अदिति है। सर्वभक्षण ही ईश्वर का अदितित्व है। जो कोई ईश्वर के इस अदितित्व को जानता है, वह इन सब वस्तुओं का भोक्ता होता है और सभी भोग्य पदार्थ उसके लिए भोग्य बन जाते हैं।

छठी कण्डिका

उस ईश्वर ने यज्ञ से फिर यज्ञ करने की कामना करके श्रम और तप किया। उसके श्रम और तप करने पर यश और वीर्य की उत्पत्ति हुई। निश्चय प्राण ही यश और बल हैं। उस प्राण के उत्पन्न होने और बढ़ने पर शरीर का बढ़ना प्रारम्भ हुआ। उसका मन शरीर ही में था।

सातवीं कण्डिका (क)

उस ईश्वर ने यह कामना की कि मेरा यह विराट् शरीर जानने योग्य हो जाए, इसलिए इस ब्रह्माण्ड के साथ प्रयत्नवान् हो जाऊँ। उसके प्रयत्न करने पर ब्रह्माण्ड पूर्णता को प्राप्त हुआ और वह जानने योग्य भी हो गया। जानने योग्य ब्रह्माण्ड का यही अश्वमेधत्व—जानना है। जो कोई इस अश्व (ब्रह्माण्ड) को इस प्रकार जानता है, निश्चय वही जानने योग्य जगत् को जानता है। उस ब्रह्माण्ड को वह अवरोध (रुकावट) रहित समझता है। वह उस जगत् को कल्पान्त (प्रलयकाल) में अपने लिए संहार कर देता है। विराट् शरीर के इन्द्रिय रूप देवताओं के लिए ईश्वर ने यज्ञ-पशुओं (इन्द्रियों के विषयों) को समर्पित किया। इसलिए सब देवताओं के हितकर शुद्ध प्रजापति के उत्पन्न किए हुए यज्ञ (इन्द्रिय-विषय) को देवता लोग ग्रहण करते हैं।

सातवीं कण्डिका (ख)

यह अश्वमेध (जानने योग्य जगत्) है। जो यह प्रकाशित हो रहा है वह उस विराट् जगत् के संवत्सर की आत्मा (शरीर) है। यह अग्नि (ईश्वर) पूज्य है। उस ईश्वर का विराट् शरीर यह समस्त ब्रह्माण्ड है। अर्क (ईश्वर) और अश्व मेध (विराट् जगत्) ये दोनों जानने योग्य हैं। वह मृत्यु (ईश्वर) ही एक उपास्यदेव है। इस रहस्य को जानने वाला विद्वान् मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। ऐसे उपासक का मृत्यु ही शरीर होता है। और वह इन सूर्य आदि देवताओं के मध्य प्रमुख स्थान ग्रहण करता है।

तीसरा ब्राह्मण

पहली कण्डिका

प्रजापति की दो सन्तानें देव और असुर हैं। उनमें देव थोड़े और असुर अधिक थे। वे आपस में लोकों के सम्बन्ध में स्पर्धा करने लगे। देवता बोले—कि अच्छा हो, कि यज्ञ में उद्गीथ के द्वारा असुरों पर आक्रमण किया जाए।

दूसरी कण्डिका

ऐसा प्रसिद्ध है, कि वे देवगण (इन्द्रिय समूह) वाणी से बोले कि हमारे लिए तू उद्गीथ (श्रेष्ठ गान) का उद्गाता (गायक) बन कर गायन कर। 'तथेति' कहकर वाणी ने उनकी बात स्वीकार कर ली और वह उनके लिए उद्गीथ का गान करने लगी। वाणी के अन्दर जो भोग है, उसे उसने देवों (इन्द्रियों) के लिए गान किया और जो कल्याण बोलती है—उस उसने अपने लिए रखा। इतने में उन असुरों ने जान लिया कि ये देवता लोग निश्चय ही

इस उद्गाता के द्वारा हम पर आक्रमण करेंगे, इसलिए उन असुरों ने उस वाणी पर आक्रमण कर उसे पाप से बींध दिया।

इसलिए यह वाणी जो कुछ अनुचित बोलती है—वही वह पाप है।

तीसरी कण्डिका

कहा जाता है, कि इसके बाद घ्राण इन्द्रिय से प्राण बोले कि तू हमारे लिए उद्गीथ का गायन कर। घ्राण इन्द्रिय ने स्वीकार कर उद्गीथ का गायन किया। उसके अन्दर जो भोग है, उसे तो उसने देवों (अन्य इन्द्रियों) के लिए गाया और जो वह कल्याण सूँघती है उसे उसने अपने लिए रखा। उन असुरों ने जान लिया कि निश्चय इस उद्गाता के द्वारा हम पर देव लोग आक्रमण करेंगे, इसलिए उन्होंने घ्राता पर आक्रमण कर पाप से उसे बींध दिया। इसलिए घ्राण इन्द्रिय जो अनुचित सूँघती है वह वही पाप है।

चौथी कण्डिका

इसके बाद देवताओं (इन्द्रियों) ने आँख से कहा कि तू हमारे लिए उद्गीथ का गान कर। आँख ने स्वीकार कर लिया और उद्गीथ का गान किया तो आँख में जो भोग है उसे देवों के लिए गाया और जो कल्याण देखता है, उसे उसने अपने लिए रख लिया। उन असुरों ने जान लिया कि निश्चय इस उद्गाता के आक्रमण द्वारा देव लोग हम पर करेंगे। अतः उन्होंने आँख पर आक्रमण करके उसे पाप से बींध दिया। इसीलिए आँखें जो अनुचित देखा करती हैं, वही पाप है।

पाँचवीं कण्डिका

इसके अनन्तर उन्होंने श्रोत्र से कहा कि तू हमारे लिए उद्-

गीथ गायन कर। तथास्तु कह कर श्रोत्र ने उनके लिए उद्गीथ का गायन किया। श्रोत्र में जो भोग है उसे उसने, देवों (इन्द्रियों) के लिए गाया और जो कल्याण शब्द सुनना था उसे अपने लिए रख लिया। उन असुरों ने जान लिया कि ये श्रोत्र उद्गाता बन कर हम पर आक्रमण करेंगे इसलिए उन्होंने श्रोत्र पर आक्रमण कर उसे पाप से बींध दिया। इसलिए कान अपशब्द सुनता है— वह वही पाप है।

छठी कण्डिका

इसके बाद उन देवों (इन्द्रियों) ने मन से कहा तू हमारे लिए उद्गीथ का गान कर। तथास्तु कह कर मन ने उद्गीथ का गान गाया। मन में जो भोग है, उसे उसने देवों के लिए गाया और जो कल्याण संकल्प थे, उसे उसने अपने लिए रख लिया। उन असुरों ने जान लिया कि ये लोग इस मन द्वारा हम पर आक्रमण कर दिया और उसे पाप से बींध दिया, इसीलिए मन जो अनुचित संकल्प करता है वही वह पाप है।

इस प्रकार ये देवता (इन्द्रियाँ) पाप से छुए गए तथा बींधे गए हैं।

सातवीं कण्डिका

इन्द्रियों के हार जाने के बाद देवगण मुख में रहने वाले प्राण से बोले—कि तू हमारे लिए उद्गीथ का गायन कर। अच्छा कह कर प्राण उनके लिए उद्गीथ का गान करने लगा। उन असुरों ने जान लिया कि ये देवता इस प्राण के द्वारा निश्चय हम पर आक्रमण करेंगे। उन्होंने उस प्राण पर आक्रमण कर उसे पाप से बींधना चाहा। परन्तु जैसे मिट्टी का ढेला पत्थर पर गिर कर चूर-चूर हो

जाता है, उसी प्रकार वे असुर उस प्राण से टकरा कर ध्वस्त हो गए।

इस प्रकार जब असुर टकरा कर नष्ट हो गए। तब देवगण विजयी हुए। जो इस प्रकार देवासुर-संग्राम को जानता है वह अपने आप से विजयी होता है। उसके शत्रु स्वतः परास्त हो जाते हैं।

आठवीं कण्डिका

वे देवगण आपस में बोले—जिसने हमारी रक्षा की है, वह कहाँ है ? उनमें से एक ने कहा—वह यह मुख के भीतर ही है। इसीलिए प्राण 'अयास्य' (मुख में रहने वाला) कहा जाने लगा और अंगों का रस होने के कारण वह 'आंगिरस रस' भी कहा जाता है।

नवीं कण्डिका

निश्चय वह यह प्राण देवता दूर नाम वाला है। इसीलिए इससे मृत्यु दूर रहती है—ऐसा जो जानता है।

दसवीं कण्डिका

वह यह प्राण देवता इन इन्द्रियों के पाप रूप मृत्यु को मार कर जहाँ इन दिशाओं का अन्त है, वहाँ ले गया। वहीं इन इद्रियों के पापों को रख दिया इसलिए उस पुरुष के पास जो दिशा के अन्त में रहता है—पापी न हो जाए और उस दिशा के अन्त में भी न जाए। कहीं ऐसा न हो कि पाप रूपी मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ।

ग्यारहवीं कण्डिका

निश्चय उस प्राण ने इन्द्रियों की पाप रूपी मृत्यु को मार कर मृत्यु के पार पहुँचा दिया।

बारहवीं कण्डिका

प्राण ने वाणी को मृत्यु के पार पहुँचाया। मृत्यु से पार होकर वह वाणी अग्नि हो गयी। इसीलिए अग्नि पाप से निकल कर मृत्यु से परे चमक रहा है।

तेरहवीं कण्डिका

इसके बाद वह प्राण घ्राणेन्द्रिय को मृत्यु के पार ले गया। वह जब मृत्यु के बंधन से मुक्त हुआ तब वायु हो गया। वह वायु मृत्यु से परे पाप से मुक्त होकर बह रहा है।

चौदहवीं कण्डिका

फिर प्राण, चक्षु को ले गया। मृत्यु के बन्धन से छूटकर चक्षु आदित्य हो गया। वह आदित्य मृत्यु रूप पाप से मुक्त होकर प्रकाशित हो रहा है।

पन्द्रहवीं कण्डिका

इसके पश्चात् वह श्रोत्र को ले गया। मृत्युके बन्धन से छूटकर श्रोत्र दिशा हो गए। वे दिशाएँ मृत्यु रूप पाप से मुक्त हो गयीं।

सोलहवीं कण्डिका

इसके बाद वह प्राण मन को ले गया। मृत्यु के बन्धन से छूटा हुआ मन चन्द्रमा हो गया। वह यह चन्द्रमा पाप से निकल कर प्रकाशित हो रहा है। जो इस प्रकार जानता है उस तत्वज्ञानी को निश्चय ही यह प्राण देवता मृत्यु से पार कर देता है।

सत्रहवीं कण्डिका

इसके बाद उस प्राण ने अपने खाने योग्य अन्न का गायन किया। क्योंकि जो कुछ खाया जाता है, वह प्राण के द्वारा ही। यहाँ प्राण प्रतिष्ठित रहता है।

अठारहवीं कण्डिका

वे इन्द्रियाँ बोलीं—यह जो कुछ अन्न है, वह इतना ही है। हे प्राण, तूने इसे अपने लिए ही गाया है। अपने भोग के बाद इस अन्न में हमें भी हिस्सा दो। यह सुनकर प्राण बोला—तुम सभी सब ओर से मुझ में प्रवेश करो। 'तथास्तु' कहकर सभी इन्द्रियाँ प्राण में समाविष्ट हो गयीं। इसलिए इस प्राण के द्वारा जो खाया जाता है, उससे सभी इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं। इसी प्रकार इसमें सभी अवयव समाविष्ट रहते हैं। और वह प्राणविद् अपने सभी अंगों का पोषक, अगुवा, भोक्ता और स्वामी होता है। जो इस प्रकार इस रहस्य को जानता है। आश्चर्य है कि अपने अंगों में से जो कोई इस प्रकार के रहस्यवेत्ता के प्रति अवरोध उत्पन्न करना चाहता है—निश्चय ही वह पोषण करने योग्य भार्या आदि के लिए लिए पोषक नहीं बन पाता। जो कोई इस प्राणविद् के अनुकूल आचरण करता है। वह अपने कुटुम्ब तथा पोषण करने योग्य व्यक्तियों के पोषण करने में पूर्ण समर्थ होता है।

उन्नीसवीं कण्डिका

मुख में रहने वाला प्राण आङ्गिरस है। क्योंकि वह अंगों का रस है। निश्चय प्राण अंगों का रस है, क्योंकि प्राण अंगों का रस है। इसलिए जिस किसी अंग से प्राण निकल जाता है, वही वह सूख जाता है। निश्चय है, कि यह प्राण अंगों का रस आङ्गि-रस है।

बीसवीं कण्डिका

यही प्राण वृहस्पति है। निश्चय ही वाणी बृहती है, उस बृहती का पति होने के कारण यह प्राण वृहस्पति कहलाता है।

इक्कीसवीं कण्डिका

यही प्राण ब्रह्मणस्पति है। वाणी का नाम ब्रह्म है, उसका पति यह प्राण है, इसलिए यह ब्रह्मणस्पति भी कहा जाता है।

बाईसवीं कण्डिका

यही प्राण साम है। वाणी ही 'सा' है और प्राण 'अम' है। 'सा' और 'अम' मिल कर साम होता है—यही साम का समत्व है। अथवा जिस लिए यह प्राण भुनगे (प्लुषि) के समान, मच्छर (मशक) के शरीर के समान, हाथी के शरीर के समान तीनों लोकों के समान, इन सब के समान है—इसीलिए यह साम है। जो कोई इसे जानता है, वह साम के सायुज्य—समानता और सालोकता को प्राप्त करता है।

तेईसवीं कण्डिका

यह प्राण ही उद्गीथ है। यही उत् है। क्योंकि प्राण ही से सब कुछ थमा (उत्तब्ध) हुआ है। वाणी ही गीत (गीथा) है। उत् (प्राण) और गीथा (वाणी) दोनों मिलकर उद्गीत हो जाता है।

चौबीसवीं कण्डिका

इस विषय में यह एक आख्यायिका है, कि चैकतानि के पुत्र ब्रह्मदत्त ने सोमरस को पीते हुए कहा था—कि मुख में रहने वाले और अंगों के रस इस प्राण का ज्ञाता मैंने यदि प्राण से भिन्न

अन्य इन्द्रियों से उद्गीथ का गान किया हो तो राजा सोम (सोम रस) मेरे मूर्धा को गिरा दे। क्योंकि उसने वाणी और प्राण से गायन किया था।

पचीसवीं कण्डिका

कहा जाता है, कि इस साम के धन को जो जानता है, निश्चित वह धनवान् होता है। उसके कण्ठ की मधुरता ही उसका धन है। इसलिए ऋत्विज् का कार्य करने वाले स्वर की मधुरता की इच्छा करें। उस मधुर स्वर से ऋत्विज् का कार्य करें। यज्ञ में मधुर स्वर वाले ऋत्विज् को लोग देखना ही चाहते हैं। जिसके पास धन होता है उसे लोग देखने की इच्छा करते ही हैं। जो कोई सामने इस धन को जानता है, निश्चय उसके पास धन होता है।

छब्बीसवीं कण्डिका

निश्चय है कि जो कोई इस साम (प्राण) के सोने को जान् लेता है, उसके पास सोना होता है। उसका सोना-स्वर ही है। जो इस प्रकार साम के सुवर्ण को जानता है, उसके पास निश्चय सोना होता है।

सत्ताइसवीं कण्डिका

कहा जाता है, कि जो कोई इस साम (प्राण) के आश्रय को जानता है, वह प्रतिष्ठित होता है। निश्चय ही उसकी वाणी ही आश्रय है। क्योंकि यह प्राण वाणी ही में आश्रित रहता है। निश्चित है, कि यह गाया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह अन्न में प्रतिष्ठित है।

अट्ठाइसवीं कण्डिका

अब यहाँ से पवमान सूक्तों की जप विधि बतायी जाती है। यह निश्चित है कि प्रस्तोता नाम का ऋत्विज् यज्ञ में सामगान का आरंभ करता है। जिस समय वह प्रस्ताव विधि का आरंभ करे उस समय इन्हें जपना चाहिए—

(१) असतो मा सद्‌गमय—असत् से मुझे सत् की ओर ले चलो ?

(२) तमसो मा ज्योतिर्गमय—अन्धकार से मुझे ज्योति की ओर ले चलो ?

(३) मृत्योर्माऽमृतं गमय—मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो ?

जब वह कहता है कि 'असतो मा सद्‌गमय'—इसमें मृत्यु ही असत् है और अमृत सत् है। तात्पर्य यह कि मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो। अर्थात् अमर कर दो। और उसके तमसो मा ज्योतिर्गमय इस कथा में मृत्यु ही अन्धकार है और ज्योति ही अमृत है। अर्थात् मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो ? मुझे अमर बना दो। तथा मृत्योर्माऽमृतं गमय उसके इस कथन का तात्पर्य है कि मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो। इसमें कुछ छिपा हुआ नहीं है और जो अन्य स्तोत्र हैं, उनमें उद्‌गाता अपने लिए खाने योग्य अन्नों का गायन करे। अर्थात् उन मन्त्रों के कारण वह जो कामना करे। उसके लिए वर मांगे। इस प्रकार जानता हुआ उद्‌गाता अपने लिए और यजमान के लिए जो इच्छा रखता है उसका गायन करता है। यह विद्या लोकों को जीतने वाली है। जो कोई इस साम को जानता है, उस तत्त्व ज्ञानी से सब लोगों के सुधरने की आशा हो सकती है।

चौथा ब्राह्मण

पहली कण्डिका

प्रारंभ में पुरुष के समान यह आत्मा ही था। उसने चारों ओर देख कर अपने से अलग किसी को नहीं देखा। 'मैं हूँ'—ऐसा उसने सर्व प्रथम कहा। इसलिए उसका नाम अहम् (मैं) हुआ इसलिए अब भी पुकारे जाने पर 'अहमयम् (मैं यह हूँ) ऐसा पहले कह कर तब अन्य नाम कहता है जो उसका होता है। उसने सभी पापों को पहले से जला रखा है। इसीलिए वह पुरुष (पुरः—पहले, उषः जला रखा है) कहलाता है। जो इसे इस प्रकार जानता है वह उसे जला देता है—जो इससे पहले श्रेष्ठ होना चाहता है।

दूसरी कण्डिका

वह पुरुष के समान जीव डरने लगा, इसलिए अकेले डरता है। यह डरा हुआ जीवात्मा विचार करने लगा कि जब मुझसे भिन्न कोई दूसरा नहीं है। फिर किससे मैं डर रहा हूँ—ऐसा सोचते ही उसका डर मिट गया। वह किससे डरता है, निश्चय ही उसे भय होता है।

तीसरी कण्डिका

निश्चय वह जीवात्मा प्रसन्न नहीं हुआ। इसीलिए उसने अकेले की अप्रसन्नता को दूर करने के लिए दूसरे की इच्छा की। वह जीव इतना ही था जितना स्त्री और पुरुष मिला कर होते हैं। पुरुष के समान जीव ने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त किया। तब पति और पत्नी दो हुए। इसीलिए आत्मा का यह शरीर अर्ध वृंगल (आधे दाने) के समान है। ऐसा याज्ञवल्क्य

ने कहा। इसी इस पुरुष के आगे का आकाश स्त्री के साथ सम्मिलित हुआ तभी मनुष्य पैदा हुए।

चौथी कण्डिका

कहा जाता है, कि वह स्त्री विचार करने लगी कि अपने ही में मुझे उत्पन्न कर यह पुरुष मेरे साथ कैसे संभोग करता है। 'अच्छा हो कि मैं छिप जाऊँ'—यह सोचकर वह गाय हो गयी और वह पुरुष भी बैल हो गया। उसी गाय के साथ वह बैल संभोग करने लगा। उससे गाय और बैल पैदा हुए। इसके बाद वह स्त्री घोड़ी बन गयी और वह पुरुष घोड़ा हो गया। फिर वह गदही बन गयी वह पुरुष गदहा बन गया। और उसके साथ संभोग करने लगा। उससे एक खुर वाली पशु जाति उत्पन्न हुई। इसके बाद वह बकरी हो गयी तो दूसरा बकरा, वह भेड़ी बनी तो दूसरा भेड़ गया। उसके साथ वह संभोग करने लगा उससे बकरी और भेड़ की जाति उत्पन्न हुई। उसी प्रकार चींटी पर्यन्त जीवों की जितती जोड़ियाँ हैं—सभी का निर्माण हुआ।

पाँचवीं कण्डिका

पुरुष के समान उस जीवात्मा ने समझा कि निश्चय ही मैं सृष्टि हूँ। क्यों कि मैंने ही सबकी रचना की है। ऐसा समझाने पर नह सृष्टि हो गया। जो इस प्रकार जानता है वह इस सृष्टि में प्रसिद्धि को प्राप्त करता है।

छठी कण्डिका

इसके बाद उसने मन्थन किया। उसने मुख रूप योनि (स्थान) और हाथों के लिए अग्नि पैदा की। इसीलिए मुख और हाथ की हथेलियाँ रोम-रहित हैं। क्योंकि अग्नि की जगह भीतर से रोम-

रहित हुआ करती हैं। जो लोग यह कहा करते हैं कि 'इसका यज्ञ करो इसका यज्ञ करो—एक एक देव का यज्ञ करो, वे यही जानते हैं कि इसी एक देव (ईश्वर) की सब सृष्टि है। निश्चय यही सब देवों का देव है।

इसके अलावा जो कुछ रसमय गीला पदार्थ है, उसको उसने वीर्य (बीज) से पैदा किया—वह सोम है। निश्चय यह सब जगत् इतना ही है, जितना अन्न और उसका भोक्ता है। सोम ही अन्न और अन्न का भोक्ता है। यही ब्रह्म की महान् सृष्टि है।

जो श्रेय था उससे देवताओं की रचना की—अर्थात् मर्त्य होकर अमृतों की रचना की। इसी से यह सृष्टि महान् है। जो इस प्रकार जानता है वह प्रजापति की इस महान् सृष्टि में प्रसिद्ध होता है।

सातवीं कण्डिका

कहा जाता है कि प्रारम्भ में सभी पदार्थ बिना नाम के थे। उसके बाद नाम और रूप ही से पदार्थ प्रकट हुआ। जिस नाम और रूप से जो पदार्थ प्रारम्भ में प्रकट हुआ वही आज भी उसी नाम और रूप से प्रकट होता है। यह जीवात्मा इस शरीर में नखों के अग्रभाग तक प्रविष्ट है। यह जीव शरीर में उसी प्रकार प्रच्छन्न रहता है, जैसे सुरधाम (छुरेहणी या किसवत) में छूरा, अग्नि कुण्ड में आग। इसीलिए इसे कोई देख नहीं पाता। क्योंकि मनुष्य अपूर्ण है। वह श्वास लेता हुआ प्राण नाम वाला होता है। बोलने से 'वाक्', देखने से 'चक्षु', सुनने से 'श्रोत्र', और मनन करने से 'मन' नामवाला होता है। इस जीव के सभी कर्म नामके ही हैं। इसलिए जो एक-एक को आत्मा समझ कर उसकी सेवा करता है वह नासमझ है। क्योंकि जीव एक-एक

से तो अपूर्ण है। इसलिए 'आत्मा' ऐसा जानकर उसकी उपासना करनी चाहिए। क्योंकि इसमें सभी एकत्र होते हैं। यह जीव खोज करने योग्य है। आत्मा का वास सभी में है। इसीसे आत्म-विज्ञान होता है। जैसे पैरों की निशानी देखकर व्यक्ति अभीष्ट व्यक्ति को पा लेता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति और यश को प्राप्त करता है।

आठवीं कण्डिका

अन्तरतम में स्थित यह आत्मा पुत्र से प्रिय, धन से प्रिय अन्य सभी से अधिक प्रिय है। जो व्यक्ति अन्तरात्मा से भिन्न किसी अन्य को प्रीति करता हो उससे आत्मज्ञानी यह कहे कि तू अपने प्रिय को खोदेगा और यदि आत्मा ही को सर्वाधिक प्रिय समझेगा तो उसी प्रकार तू भी समर्थ हो जाएगा।' जो कोई आत्मा ही को परम प्रिय समझकर उसकी उपासना करता है, वह अमर हो जाता है।

नवीं कण्डिका

कुछ लोग ऐसा मानते हैं, कि ब्रह्मविद्या से सब कुछ प्राप्त कर लेंगे। लेकिन क्या किसी ने उस ब्रह्म को जान लिया है, जिससे सब कुछ उसे प्राप्त हो गया है।

दसवीं कण्डिका

नि:सन्देह प्रारंभ में केवल एक ब्रह्म ही था। उसने अपने ही को जाना कि मैं ब्रह्म हूँ। उसी से सबका विस्तार हुआ। देवों में जो जाग उठे वही ब्रह्म हो गए। ऋषियों और मनुष्यों में जो जाग उठे वे ब्रह्म हो गए। इस प्रसिद्ध विज्ञान को जानते हुए ऋषि वामदेव ने कहा—कि मैं मनु हुआ, मैं सूर्य हुआ इस विज्ञान

को जो आज भी जानता है और यह समझता है कि मैं ब्रह्म हूँ, वह ब्रह्म हो जाता है। उसका अहित देवता भी नहीं कर सकते हैं। निश्चय वह देवताओं का आत्मा हो जाता है। वह दूसरा है और मैं दूसरा हूँ ऐसा जानकर जो अन्य देवों की उपासना करता है, वह नहीं जानता है। वह देवताओं में पशु जैसा है। वैसे अनेक पशु मनुष्यों का भरण-पोषण करते हैं। उसी प्रकार अनेक अज्ञानी पुरुष देवताओं का पोषण करते हैं। जैसे किसी व्यक्ति का एक पशु ले लिया जाय तो उसे अच्छा नहीं लगता और फिर यदि अनेक ले लिये जाएँ तो कहना ही क्या है। इसी प्रकार इन देवताओं को यह रुचिकर नहीं प्रतीत होता कि कोई मनुष्य ईश्वर को जान ले।

ग्यारहवीं कण्डिका

प्रारम्भ में एक ही ब्रह्म (ब्राह्मण वर्ण) था। अकेला होने से वह विशेष वृद्धि को न प्राप्त हुआ तब उसने श्रेय रूप क्षत्र की रचना की। अर्थात् देवताओं में इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, मेघ, यम, मृत्यु और ईशान आदि जो क्षत्रिय हैं—उन्हें उत्पन्न किया। अतः क्षत्रिय से श्रेष्ठ कोई नहीं है। इसीलिए राजसूय-यज्ञ में ब्राह्मण नीचे बैठ कर क्षत्रिय की उपासना करता है। वह ब्राह्मण क्षत्रिय ही में अपने यश को स्थापित करता है। यह जो ब्राह्मण क्षत्रिय की उत्पत्ति का कारण है। इसीलिए यद्यपि राजा उत्कृष्टता को प्राप्त करता है, तथापि राजसूय यज्ञ के अन्त में अपनी उत्पत्ति के कारण ब्राह्मण ही के समीप नीचे बैठता है। जो कोई इस ब्राह्मण का निरादर करता है वह अपने ही कारण (उत्पत्ति स्थान) की हिंसा करता है। वह उसी प्रकार घोर पापी होता है। जैसे कोई अपने श्रेष्ठ को मार कर पापी बनता है।

बारहवीं कण्डिका

वह ब्रह्म (ब्राह्मण वर्ण) क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न करने के बाद भी जब वृद्धि न प्राप्त कर सका, तो उसने वैश्य जाति की रचना की। वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और मरुत् इत्यादि जो ये देवगण हैं—गणशः कहे जाते हैं—उन्हें उत्पन्न किया।

तेरहवीं कण्डिका

किन्तु फिर भी वह ब्रह्म (ब्राह्मण वर्ण) वृद्धि को न प्राप्त हुआ तब उसने शूद्र वर्ण की रचना की। पूषा शूद्र वर्ण है यह पृथिवी पूषा है, क्योंकि जितना कुछ भी है सब पोषण यही करती है।

चौदहवीं कण्डिका

फिर भी जब, वह ब्रह्म वृद्धि न कर सका तो उसने श्रेय रूपा धर्म की रचना की। यह धर्म क्षत्रिय पर भी शासन और नियंत्रण करता है। अतः धर्म से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। जैसे राजा की सहायता प्राप्त कर प्रबल शत्रु को भी जीतने का सामर्थ्य हो जाता है, उसी प्रकार धर्म के द्वारा निर्बल पुरुष भी बलवान् को जीतने की इच्छा रखता है। यह जो धर्म है, निश्चय ही सत्य है। इसीलिए सत्य बोलने वाले के सम्बन्ध में कहा जाता है—यह धर्म बोल रहा है। तथा धर्म की बात बोलने वाले को कहा जाता है कि यह सत्य बोल रहा है। क्योंकि ये दोनों यही धर्म ही हैं।

पन्द्रहवीं कण्डिका

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों को पैदा करने वाला देवों में अग्नि रूप से ब्रह्मा हुआ। तथा मनुष्यों में ब्राह्मण हुआ। क्षत्रिय से क्षत्रिय हुआ। वैश्य से वैश्य और शूद्र से शूद्र

हुआ। इसलिए अग्नि ही में कर्म करके देवताओं के बीच कर्मफल की इच्छा करते हैं। क्योंकि अग्नि और ब्राह्मण इन्हीं दो रूपों से ही ब्रह्म व्यक्त हुआ है। जो कोई बिना आत्म दर्शन के ही इसलोक से चला जाता है, उसका वह अनजाना हुआ आत्म लोक वैसे ही पालन नहीं करता जैसे बिना अध्ययन किया हुआ वेद अथवा बिना अनुष्ठान किया हुआ कोई काम। इस प्रकार आत्म दर्शन-रहित व्यक्ति इसलोक में कोई पुण्य कार्य भी करता है तो भी अन्त में उसका वह कर्म क्षीण हो जाता है। अतः आत्म लोक की उपासना करनी चाहिए। जो पुरुष आत्म लोक की उपासना करता है, उसके कर्म क्षीण नहीं होते। इस आत्मा से मनुष्य जो भी इच्छा करता है उसकी सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं।

सोलहवीं कण्डिका

यह आत्मा समस्त जीवों का आश्रय है। वह जो हवन और यज्ञ करता है, उससे देवताओं का भोग्य होता है। जो स्वाध्याय करता है, उससे ऋषियों का, जो पितरों के लिए पिण्डदान करता है, सन्तान की इच्छा करता है, उससे पितरों का, जो मनुष्यों को वास स्थान और भोजन देता है, उससे मनुष्यों का। और जो पशुओं को घास और जल देता है, उससे पशुओं का भोग्य होता है। इसके घर में कुत्ते, बिल्ली आदि श्वापद, पक्षी और चींटी तक जितने जीव, जन्तु हैं सभी के आश्रित होकर जीवन धारण करते हैं। उससे यह उनका भोग्य होता है। जिस प्रकार लोग अपने शरीर के अविनाश की इच्छा रखते हैं, वैसे ही इस प्रकार जानने वाले का अविनाश समस्त प्राणी चाहते हैं। निश्चय यह विषय जाना गया और इस पर विचार किया गया है।

सत्रहवीं कण्डिका

प्रारम्भ में केवल यही आत्मा ही अकेला था। उसने इच्छा की कि मेरे लिए पत्नी हो जाय तो सन्तान उत्पन्न करूँ। इसके

बाद मेरे पास धन हो जाए तो उसके द्वारा पुरुषार्थ के कार्य करूँ। बस ऐसी इतनी ही कामनाएँ मनुष्यों में भी हुआ करती हैं। चाहता हुआ और न चाहता हुआ भी इससे अधिक नहीं पा सकता। अब भी अकेला आदमी ऐसी ही कामना करता है, कि मेरे स्त्री हो, फिर मैं सन्तान उत्पन्न करूँ। तथा मेरे धन हों तो मैं उससे कर्म करूँ। वह जब तक इन में से एक को भी नहीं प्राप्त करता तब तक अपने को अपूर्ण समझता है। उसकी पूर्णता इस प्रकार होती है—मन ही इसका आत्मा है। वाणी स्त्री है। प्राण सन्तान है और नेत्र मानुष धन है। क्योंकि वह नेत्र से ही गाय आदि मानुष धन को देखता है। श्रोत्र दैवधन है। क्योंकि श्रोत्रसे ही वह दैव-धन को सुनता है आत्मा—शरीर—ही इसका कर्म हैं, क्योंकि आत्मा ही से यह कर्म करता है। यह यज्ञ पाँच से बना हुआ है। पाँच से बना हुआ पुरुष है। यह सब ही पाँच से बना हुआ है। जो कुछ इस संसार में है—जो ऐसा जानता है, वह इस को पा लेता है।